परिवार

उपन्यासकार
यज्ञदत्त शर्मा

प्रकाशक
साहित्य प्रकाशन

'सुनीता' से 'मैला आंचल' और 'परिवार' तक... !

हिन्दी का शायद यह पहला उपन्यास है जिसका विषय, अपने व्यापकतम अर्थ में, परिवार है। यों हिन्दी में 'सामाजिक' और 'पारिवारिक' उपन्यासों की कमी नहीं है, लेकिन इनकी 'पारिवारिकता' या 'सामाजिकता' एक खास किस्म की होती है। सच तो यह है कि इन उपन्यासों में जो कुछ होता है, उसे 'पारिवारिकता' या 'सामाजिकता' की कोटि में रखना ही गलत होगा। हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉक्टर रामविलास ने इन उपन्यासों की कोटि और परम्परा के लिए बहुत ही उपयुक्त और सटीक नाम तजवीज किया है: 'साड़ी-जम्पर-उतार, कोटि' या 'साड़ी-जम्पर-उतार-परम्परा' !

'साड़ी-जम्पर-उतार-परम्परा' के लेखक परिवार को एक घेरे के रूप में देखते हैं, जिसका 'भीतर' और 'बाहर' होता है। इस का परिपाक करने के लिए ये लेखक इस घेरे को तोड़ते हैं, या घेरे के भीतर का जीव, खास तौर से नारी, घेरे को तोड़कर बाहर निकलती है और 'एक' से 'अनेक' की ओर बढ़ती है, या बाहर का कोई जीव, खास तौर से पुरुष, घेरे को लाँघ कर भीतर प्रवेश करता है, और..........

जो भी हो, दोनों ही सूरतों में नारी की शामत आती है—साड़ी-जम्पर से उसे विहीन कर दिया जाता है। घर में यह काम पति करता है, और बाहर कोई और !

अगर इतना ही होता तो भी कोई बात नहीं थी। 'साड़ी-जम्पर उतार'-कला के आचार्य जैनेन्द्र इस क्रिया को दार्शनिकता और गम्भीर चिन्तन की झीनी चादर में लपेट कर पेश करते हैं; और यशपाल तथा

अज्ञेय क्रांति और सामाजिक विद्रोह का बिगुल बजाकर। खम ठोंक कर यशपाल जी ऐलान करते हैं :

"यदि स्त्री किसी को धोखा न देकर अपने हृदय की तृप्ति के लिए घन्टे-भर प्रेम करना चाहती है, तो वह कुलटा है और यदि वह अपने जीवन और अपनी संतान के जीवन-निर्वाह का कोई दूसरा उपाय न देख या समाज के भय से अपना शरीर जन्म-भर किसी पुरुष की आवश्यकता के लिए दे देती है तो वह सती है।"

नदी के द्वीप की फिलासफी का स्रोत भी इसीसे मिलता-जुलता है, जिसमें नारी पड़ाव, सराय या टैक्सी का रूप धारण कर सामने आती है। जैनेन्द्र जी इसी चीज को आवरणों या परत के भीतर परत का रूप देकर पेश करते हैं और सत्य की खोज में सभी आवरणों तथा परतों को, जिनमें साड़ी-चोली-जम्पर सभी कुछ शामिल हैं, मसीहाई अन्दाज में उतारना शुरू करते हैं। उन्हीं के शब्दों में :

"दुनिया में कई दुनिया हैं और आदमी में कई आदमी। असल में चेतना में पर्त-पर-पर्त हैं।"

लेकिन, जैसा कि हम सभी जानते हैं, जैनेन्द्र जी दुनिया का चित्रण तो करते नहीं, चित्रण करते हैं वह अत्यन्त सीमित मात्रा में व्यक्तियों का, और इस चित्रण का लक्ष्य होता है आवरण या पर्त उतारना। नतीजा यह कि सुनीता निरावरण होती है, उसका पति खुद इसका अवसर प्रदान करता है। यही क्रिया, आगे चलकर, अन्य उपन्यासों में भी उभरती है। जैसे 'सुखदा' में। अपने स्वामी को लक्ष्य करके वह कहती है :

"तुम मेरे स्वामी हो, लेकिन तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, क्यों? नाराज होकर मुझे खुली छोड़ देना चाहते हो कि कोई धूर्त आए और ......"

धूर्तता का यह काम—दार्शनिक की भाषा में पर्त-पर-पर्त उतार कर सत्य का दर्शन करने की यह क्रिया—सुनीता में हरिप्रसन्न ने सम्पन्न

की थी, और 'सुखदा', 'विवर्त' तथा 'व्यतीत' में अन्य पात्र करते हैं, और इन पात्रों का आचार-विचार, उनकी चाल-ढाल और तौर-तरीके, शिकागो गैंगस्टरिज्म की याद दिलाते हैं। शराब, मोटर, रिवाल्वर, डाका डालकर हीरोइन को भगाना, रेल गाड़ियाँ उलटना आदि स्टण्टों से लैस !

इस दिशा में जैनेन्द्र जी काफी आगे बढ़े हैं। 'विवर्त' में कालेज-यूनिवर्सिटी के प्रोफैसरों और छात्रों का चित्रण है, जो चाँदनी रात में लड़कियों के साथ नौका-विहार करते हैं। 'व्यतीत' में पुतलीघर के मजदूर कलुआ का चित्रण है, जो ताड़ी पीता है, अपनी लड़की से पेशा कराता है और इस व्यापार में पूरी 'ईमानदारी' का परिचय देता है। ईमनदारी का मतलब यह है कि वह अथवा उसकी लड़की 'हराम' का नहीं खाते। लड़की जिससे पैसा लेती है, उसे अपना तन जरूर देती है, लेकिन कभी-कभी—

"ऐसा होता है कि तन नहीं देता काम, तब किसी को लौटालती हूँ। जिसका पैसा लिया......"

'साड़ी-जम्पर-उतार' कला कहाँ-से-कहाँ पहुँचती या पहुँच सकती है, इसका यह एक उदाहरण मात्र है। करुण रस का परिपाक करने के लिए कितना बढ़िया तरीका अपनाया गया है। अगर पुतलीघर के मजदूर की बेटी पैसे के बल पर तन के साथ खेलवाड़ करने वालों की मरम्मत करना शुरू कर दे तो ....

लेकिन जैनेन्द्र जी, और साड़ी-जम्पर सम्प्रदाय के अन्य लेखक, अपने उपन्यासों की दुनियाँ से ऐसे पात्र-पात्रियों को दूर ही रखते हैं। वे चुन-चुन कर ऐसे पात्र बटोरते हैं जो इस चीर-हरण-लीला में सहायक हों, बाधक नहीं।

इस परम्परा के उपन्यासों का जिक्र करते समय अनायास ही रविबाबू के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'घर और बाहर' का ध्यान हो आता है। लेकिन 'घर और बाहर' शीर्षक के अन्तर्गत रविबाबू जिस समस्या को

पेश करते हैं; वह 'साड़ी जम्पर'-उतार कला से कहीं अधिक व्यापक, कहीं अधिक गहरी और कहीं अधिक सामाजिकता लिए है। उसमें और इनमें वही अन्तर है जो कि एक वेगमयी धारा और बन्द पोखर के पानी अथवा क्रान्तिकारी दल के उन दो सदस्यों में होता है जिनमें से एक वन्देमातरम् की आवाज के साथ सूली पर झूल जाता है और दूसरा वन्देमातरम् को तलाक देकर वन्देप्रियाम् और वन्दे मोहिनीम के आँचल में मुँह छिपाता और सरकारी मुखबिर बन जाता है, या माफी माँग 'जेल से छूटकर बाहर आता और सामाजिक विद्रोह के नाम पर साड़ी-जम्पर-उतार' कला का अभ्यास करता है।

रवि बाबू के उपन्यास में पात्रों की स्वल्पता नहीं, बहुलता होती है, जीवन की व्यापकता को—उसके समग्र रूप में—वह ग्रहण करते हैं, और इस व्यापकता के साथ ताल-मेल बैठाने में वह जीवन की सार्थकता देखते हैं। वह जानते-समझते और रह-रह कर, विभिन्न रूपों में, इस सत्य को उभार कर रखते हैं कि :

"जिसे सृष्टि करनी है, उसे अपने चारों ओर के जीवन को लेकर सृष्टि करनी होगी, नहीं तो सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा।"

अथवा :

"अपने अस्तित्व का परिचय स्वयं अपने में नहीं मिलता। उसके लिए सदा बाहर की खोज करनी पड़ती है।"

या फिर :

"अकेले मनुष्य के समान अद्भुत और कोई वस्तु नहीं है। जिसके सब आत्मीय एक-एक करके मर गए हों, वह भी अकेला नहीं होता, मृत्यु की आड़ में भी उसे संग मिल जाता है, पर जिसके सब आत्मीय निकट होने पर भी दूर चले गए हों, ऐसा मनुष्य पूर्ण संसार के साथ से अलग जा पड़ता है, और उसे देखकर तारों के शरीर में भी काँटे चुभने लगते हैं।"

और भी अधिक स्पष्ट शब्दों में :

"समस्त संसार की असंख्यता भी मनुष्य का दिल न बहला सके, जो यहाँ भी संग के लिए भटकता हो, उसकी संगहीनता कितनी भयानक है !"

सार-तत्व यह कि :

"हमारी आत्मा का विश्व के साथ स्वर मिलने पर जो संगीत उठता है, वह कितना उदार, कितना गम्भीर और कितना अनिवर्चनीय तथा सुन्दर होता है ।"

यही कारण है जो रवि बाबू का कैनवास कभी छोटा नहीं होता —छोटा हो नहीं सकता । पात्रों की बहुलता और भाषा तथा भावों की प्रचुरता उनकी लेखनी को स्मृद्ध बनाती है । इसके प्रतिकूल 'साड़ी-जम्पर-उतार' कला के लेखक सूने और निर्जन कोनों-स्थलों की खोज करते हैं, पात्रों की बहुलता और वाणी का प्रयोग उन्हें बाधा मालूम होता है ।

इसकी क्लासिक मिसाल के रूप में जैनेन्द्र जी के उस स्कैच का जिक्र किया जा सकता है जिसमें वह सोच-विचार अथवा चिन्तन का जन्म चित्रित करते हैं । पर्त-पर-पर्त उतारते हुए वह अतीत के उस आदिम युग में पहुँचते हैं जब कि वाणी का प्रयोग शुरू नहीं हुआ था । एक आदिम नर और एक मादा को वह पेश करते हैं । नर बाहर के कामों में, शिकार आदि में, इतना व्यस्त रहता है कि वह घर की ओर—मादा की ओर—नजर नहीं उठा पाता । एक दिन जब वह लौटता है और देखता है कि मादा निश्चल हुई पड़ी है, तब काम का ऐसा बुखार उसके सिर पर सवार होता है कि उसके स्तनों और गालों को वह काटता-नोंचता है, उसे एक दम लहू-लुहान कर देता है, हालांकि मृत शरीर के लहू-लुहान होने की बात समझ में नहीं आती !

प्रेम का यह 'आदम खोरी रूप' साड़ी-जम्पर-उतार सम्प्रदाय की विशेषता है । सूना जंगल, अंधेरी रात, एक बजे का पहर,—चीर-हरण

और गालों-छातियों को नोंचने-काटने के लिए इससे बढ़िया समय और क्या होगा ? लेटी हुई सुनीता को देख कर हरिप्रसन्न इस नारी को दोनों मुट्ठियों में पकड़ कर जोरों से मसल डालना और उसके बदन की एक-एक बूँद निचोड़ डालना चाहता है।

इसी प्रकार 'दुनिया के विद्रोहियो एक हो जाओ' का नारा लगाने वाला अज्ञेय का शेखर घोंघे से उसी समय बाहर निकलता है जब वह भूखा होता है या जब कोई प्रणयी खोजता है। प्रणयी की इस खोज का सबसे नंगा चित्र मिलता है 'नदी के द्वीप' में जो एकान्त, देह की गरमाई और चुनचुनाहट, रोमांच और सिकुड़ते कुचों आदि केलि-क्रीड़ा के लक्षणों भरा है और हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक भगवतशरण उपाध्याय के शब्दों में: "द्वीप-द्वीप, मिथुन-मिथुन, उपन्यास बढ़ता है।"

उपाध्याय जी ने प्रणय की इस भूख को भूख न मान कर वासना और कामुकता का 'पेटूपन' माना है, जो नारी को समूची हड़प जाना चाहता है।

इस सम्प्रदाय के अन्य लेखकों में भी प्रणय का यही आदमखोरी रूप दिखाई देता है। अश्क का एक पात्र चेतन उसे—नारी को—अपने आलिंगन में लेकर इतना दबाना चाहता है कि उसका दम निकल जाए और यशपाल का पात्र केवल चन्द नारी के होठों को खा जाना चाहता है! यहाँ तक कि 'मैला आँचल' जैसा विशिष्ट उपन्यास भी [लेखक, फनीश्वर नाथ 'रेणु'] आदम खोरी प्रणय के इस चहबच्चे से न केवल यह कि अपने को बचा नहीं सका है, बल्कि उसमें हिर-फिर कर डुबकियाँ लगाता दिखाई देता है।

इस उपन्यास का एक पात्र है बावनदास जिसे गाँधी जी जानते हैं, नेहरू जी जानते हैं, और राजेन्द्र बाबू भी पहचानते हैं। एक-दम अवतारी पुरुष, गाँधी और काँग्रेस का पक्का भक्त। एक दिन चन्दनपट्टी आश्रम में तारावती—एक काँग्रेस कार्यकर्त्री—बिछावन पर आराम कर रही थी। फागुन की हवा से हिलते-डोलते पर्दे की फाँक में से बावन दास

भीतर झाँकता है—"पलंग पर अलसाई सोई जवान औरत। बिखरे हुए घुँघराले बाल। छाती पर से सरकी हुई साड़ी। खद्दर की खुली हुई अंगियाँ...कोकटी खादी का बटन.... !"

'कोकटी खादी का बटन !'—कितनी निराली उपमा है ? कांग्रेस में काम करने वाली मादा की छाती का 'बटन' कोकटी खादी का होना ही चाहिए। देख कर बावन दास के पैर थरथाराने लगते हैं, वह आगे बढ़ना चाहता है और—

"वह इस औरत के कपड़े को फाड़ कर चित्थी-चित्थी कर देना चाहता है, वह अपने तेज़ नाखूनों से उसकी देह को चीर-फाड़ डालेगा, वह एक चीख सुनना चाहता है, वह अपने जबड़ों में पकड़कर उसे झकझोरेगा..."

यहाँ हम व्यभिचारी महन्तों का जिक्र नहीं करेंगे। उन लोगों का भी हम जिक्र नहीं करेंगे जो, ठीक गाँधी जी के सराध के दिन, होटिल बंगला में मुर्ग मुसल्लम खाते तथा बदन को गरमाने के लिए दो टाँगों वाली मुर्गियों—रेफ्युजिनों—को पकड़ लाने की जुगत लगाते हैं। उन्हें छोड़िए। सुश्लिंग पार्टी, (सोशलिस्ट पार्टी) का कालीचरण चर्खा सण्टर की मंगला से 'लटपटाया' है, कौमनीस्ट डाक्टर तहसीलदार की लड़की की बाँह में 'जेक्सन' (सूई) लगाते-लगाते उत ग्याभन कर देता है, एक और काँग्रेसी लक्ष्मी दासिन से 'सतसंग' करता है, सहदेव मिसिर फुलिया से फँसा है, नोखे की साली राम लगन के बेटे से फंसी है, हरगौरी खास अपनी मौसेरी बहन से फंसा है,—गर्ज़ यह कि सभी किसी-न-किसी से फंसे हैं और इस फंसा-फंसी का क्लाइमैक्स प्रकट होता है उस समय जब इस उपन्यास का एक पात्र खलासी कहता है :

"दुनिया-भर के लोगों की गरमी की बीमारी आराम करें हम, और हमारी घर वाली इस रोग से भोगे........।"

यह उपन्यास क्या है, अच्छा-खासा 'तड़बन्ना' है। तड़बन्ना —अर्थात ताड़ी का वन :

"साल-भर के झगड़ों के फैसले तड़बन्ना की बैठक में ही तय होते हैं और मिट्टी के चुक्कड़ों (ताड़ी पीने के कुल्हड़) की तरह दिल भी यहीं टूटते हैं। शादी-ब्याह के दुलहे-दुलहिन की जोड़ियाँ भी यही मिलाई जाती हैं, और किसी की बीवी को भगाने का प्रोग्राम भी यहीं बनता है।"

इतना ही नहीं, बल्कि इसी तड़बन्ने में "नशा होने पर किरान्ती गीत खूब जमता है......"बतौनी बता के, कमर ललचा के !"

किरान्ती का रंग लाल होता है, इसलिए—

"लाल ओढ़ना ओढ़ कर गाड़ी पर चढ़ने जाओ तो ...गाड़ी रुक जाएगी और ओढ़ना जप्पत हो जाएगा"... "हमल गाँव हाट के पास एक लाल चादर वाले को देखकर उनका कलेजा धुक-धुका उठा...भले आदमी ने लाल चादर की पगड़ी क्यों बाँध ली है"......और सबसे अन्त में, कोकटी खादी के बटन के ही वजन पर—"क्या है, लाल सलूका ? खबरदार ! झंडा और लाल सलूका में क्या फरक है ?"

'परिवार' उपन्यास लाल सलूका मार्का इस क्रांति से, प्रणय की इस आदमखोरी भूख और फंसा फंसी से, मुक्त है। सच तो यह है कि प्रस्तुत उपन्यास का लेखक इस मामले में बिलकुल कोरा है। ढाई सौ पन्ने पढ़ने पर एक ऐसा स्थल आता है जहाँ इस उपन्यास का एक नर पात्र एक मादा पात्री का चुम्बन करता है। लेकिन लेखक ने इस प्रसंग को योंही, बिना किसी रंगीनी के, दो-चार पंक्तियों में निबटा दिया है।

इस उपन्यास की एक और मादा पात्री विवाह के बाद, एक मास के भीतर, विधवा हो जाती है। आदमखोरी प्रणय का सूत्र पकड़ कर उससे मन चाहा छिनाला कराया जा सकता था। लेकिन वह है कि "भारतीय आदर्शवाद की सूली पर अपना सीना टिका देती है", लाल सलूका पहन कर 'किरान्ती' नहीं करती !

और यह अकारण, योंही अपने-आप अथवा किसी आकस्मिक ढंग से, नहीं हो गया है। मैला आँचल के लेखक ने गाँव को कविवर पंत की नजर से देखा है—भारत माता ग्रामवासिनी....धूल-भरा (दूध-भरा नहीं) मैला-सा आँचल वाली नजर से। मलेरिया सैण्टर के डाक्टर ने टैस्ट-टयूबों में रक्त भर रक्खे हैं, प्रयोग करने के लिए : "वह जानना चाहता है, देखना चाहता है कि इन इन्सानों और जानवरों की रक्त-कणिका में कितना विभेद है, कितना सामंजस्य है ?"

इस प्रयोग की 'वैज्ञानिकता'—पन्त मार्का वैज्ञानिकता—को छोड़िए। जिस चीज को डाक्टर, और उपन्यास लेखक, उभार कर रखता है वह है :

"यहाँ इन्सान हैं कहाँ ?—अभी पहला काम है, जानवर को इन्सान बनाना।"

बार-बार, विभिन्न रूपों में, यह बात उभर कर आती है कि "आज हर आदमी के भीतर भूखा टामी अधीर हो चुका है।" उपन्यास के शुरू में, मध्य में, अन्त में एक जोतशी पात्र की यह भविष्य वाणी रेंगती दिखाई देती है कि "गांव का अमंगल होगा...चील कौवा उड़ते दिखाई देंगे।" आखीर में, मानो चित्र को पूर्ण करने के लिए, लेखक ऐटम बम के अंधकार को और खींच लाता है और बरगद के एक पेड़ के क्लोजअप के साथ—जिस में कांग्रेस, सुशलिंग, या कौमनीस्ट पार्टी का झंडा नहीं, बल्कि चेथरिया पीर (चीथड़ा पीर) की मानता में दो धज्जियाँ फहरा रही हैं—इस उपन्यास का अन्त होता है !

एक बात और। इधर हिंदी के कुछ लेखकों और आलोचकों ने एक नया अजूबा खड़ा किया है। खास तौर से 'मैला आँचल' को लेकर। यों सभी उपन्यास आँचलिक होते हैं, या वे फिर कुछ नहीं होते—केवल भावना शरीरी होते हैं जिनके बारे में यह कहना मुश्किल होता है कि वे इसी दुनिया के हैं अथवा किसी और के, और यह कि लेखक के दिमाग से अलग उनका कोई अस्तित्व है भी या नहीं। मैला आंचल के

बारे में सबसे मजेदार बात यह है कि इसे उस कोटि के लेखकों और आलोचकों ने भी उछालना शुरु किया है जो साहित्य को देश-काल-विहीन मानते हैं और आँचलिकता से जिनका उतना ही वास्ता होता है जितना कि गधे का सींगों से !

और यह अकारण ही नहीं है। इसका सबसे बड़ा कारण तो यही है कि उपन्यास बुरा नहीं है, बल्कि अच्छा है, और यह कि मक्खियाँ वहीं भिनभिनाती हैं जहाँ कुछ मिठास होती है। इस उपन्यास में भी मिठास है, अच्छाई है। झाड़ी-जम्पर-उतार परम्परा की एक कड़ी होते हुए भी यह उनसे कुछ भिन्न है। गाँव के गीतों, नाचों और वाद्य-यंत्रों का पृष्ठ-संगीत इस उपन्यास का मुख्य आकर्षण है। स्थानिक बोली के प्रयोग भी अच्छे मालूम होते हैं; हालाँकि रह-रह कर यह आशंका भी सिर उठाती है कि कहीं यह उपन्यास डाक्टर रघुवीरा का जनपदीय संस्करण बन कर न रह जाए !

जो हो, ग्राम्य-गीतों और नृत्यों का यह आकर्षण भी संकुचित-सीमित—और किसी हद तक विकृत होकर हमारे सामने आता है। इस में अच्छाई है, लेकिन ऐसी नहीं कि उसे हल्दी की गाँठ मान कर पसर हट्टा सजाया जा सके।

लेकिन हिन्दी के आलोचक प्रवर—एक खास किस्म के आलोचक प्रवर—इस उपन्यास को हल्दी की गाँठ बनाकर पसर हट्टा सजाने पर तुले हैं। 'मैला आँचल' को फहराते हुए ऐलान कर रहे हैं :

"प्रेमचन्द के बाद अगर किसी उपन्यास का स्थान है तो इसका !"

यह है उन लेखकों को मारने के लिए जो प्रेमचन्द के बाद देश और समाज का चित्रण करने में जुटे हैं। नागार्जुन का 'बलचनमा' इनकी नजर से गायब हो गया, ओमप्रकाश शर्मा का 'साँझ का सूरज' इन्हें नहीं दिखाई दिया,—रुद्र का 'बहती गंगा', सत्यार्थी का 'रथ के पहिए', अमृतराय का 'बीज', हर्षनाथ का 'करमू और जगनी', हित वल्लभ गौतम का 'प्रदीप', गर्ज यह कि एक ही झपाके में सब खतम हो गए।

यह तो हुई प्रेमचन्द के बाद वाले लेखकों की बात, लेकिन खुद प्रेमचन्द पर जब ये आलोचक प्रवर लिखते हैं तो उन्हें भी नहीं छोड़ते, यह बात दूसरी है कि प्रेमचन्द पर सीधा आक्रमण करने का साहस न होने पर वे अगल-बगल से दोलत्तियाँ झाड़ते हैं।

'परिवार' भी एक आंचलिक उपन्यास है। लेकिन इस उपन्यास का लेखक, एक क्षण के लिए भी, अपने गाँव के निवासियों को जानवर नहीं समझता, न ही इस गाँव का मैला आँचल के रूप में चित्रण करता है। उसकी समझ और उसकी दृष्टि उस रोमाण्टिक युवक की दृष्टि नहीं है जो शहरी जीवन से उकता कर मैला आँचल के जानवर-निवासियों को आदमी बनाना चाहता है। नहीं, वह उन्हें जानवर नहीं समझता, उनमें अगाध विश्वास रखता है, पिछड़ा हुआ नहीं बल्कि उन्हें अपने से भी बड़ा और सशक्त मानकर उन्हें प्रणाम करता है।

प्रस्तुत उपन्यास आदमखोरी उपन्यासों की परम्परा विहीन और छिन्न-नाल परम्परा से सर्वथा भिन्न है। इसका कैनवास जीवन की भाँति व्यापक, गहन और जटिल है। इसके पात्र भी उन वासना शरीरी पात्रों से भिन्न हैं जो अपने रक्त को—अगर रक्त नाम की चीज उनके शरीर में है तो—गरमाने के लिए हर नारी को अंगीठी समझ उसकी ओर लपकते और उसकी गोद में पहुँच कर स्वास्थ्य-लाभ करते हैं।

इस उपन्यास के सभी पात्र—भले भी और बुरे भी—सबल और सशक्त हैं और, कदम-कदम पर, उस समय भी जबकि वे गिरी हुई अवस्था में होते हैं, उनकी यह शक्ति और सबलता छिपाए नहीं छिपती। ये उन पात्रों से सर्वथा भिन्न हैं, जिन्हें रवि बाबू के ही शब्दों में, 'बुझे हुए अंगारे' (अथवा 'गर्म राख') कहा जा सकता है और जिनके सहारे, "घर-बार का काम-काज चलाना तो दूर, एक उपन्यास तक की रचना नहीं की जा सकती।"

यह कुछ गिने-चुने पात्रों, साड़ी-जम्पर उतार लेखकों की भाषा में कुछ 'नर' और 'मादाओं' की नहीं, एक भरे-पूरे और सुसम्बद्ध परिवार

की कहानी है। इतना ही नहीं, बल्कि कहना चाहिए कि यह एक ऐसे गाँव की कहानी है जिसका प्रारम्भ ही एक परिवार से होता है।

इस गाँव का नाम है सरावा,—अर्थात सुर-आवा और सच, एक जमाना था जब इस गाँव में देवता निवास करते थे, सादगी और भाई-चारे यहाँ का राज्य था, इन्सानियत के सामने सभी बातें हेच थीं।

लेकिन जमाने ने पलटा खाया सादगी और भाई चारे का वह दौर खत्म हो गया, खेती और जमीन पर साहूकारे ने अपने पंजे गड़ाए, गुंडों और एक दूसरे को आपस में लड़ाने वाले कानूनदानों का जोर बढ़ा, गाँव का सामूहिक जीवन धूल में मिल गया और नौबत यहाँ तक पहुँची कि एक पट्टी में भी-अपने आप बँटवारा कर लेना सम्भव न रहा।

इसी गाँव में, गंगा पार से आकर बसा चौधरी आभाराम का परिवार "जिनकी लाठी में कानून बोलता था, राम झाँकता था।" उनके पाँच बेटे थे—सभी सबल और हट्टे-कट्टे, सबल और हट्टी कट्टी लाठियों से लैस। जब गाँव में आते हैं तो रास्ते में मिलने वाले मवेशियों को हाँक लाते हैं,—ठिकाने पर पहुँचते-न-पहुँचते सौ गायों का रेवड़ हो जाता है।

चौधरी आभाराम का परिवार फूलता-फलता और आगे बढ़ता है। सबल लाठियों के साथ-साथ शिक्षा का, स्वामी दयानन्द का, पोप लीलाओं के खिलाफ़ संघर्ष का, परिवार में प्रवेश होता है, और बावजूद इसके कि सरावा गाँव जो कभी सुरों का आवा था—साहुकारों, गुंडों और मुकदमेबाजों का आवा बन जाता है—यह परिवार अपनी ईमानदारी की ठनक को कायम रखता और रखना चाहता है।

लेकिन, सभी साधनों और सदिच्छाओं से लैस होने पर भी, परिवार के कन्ने कटते जाते हैं, इस तरह कटते जाते हैं कि कर्ता का पता नहीं चलता। परिवार के दरवाजे, जो कभी खुले रहते थे—अपनों के लिए नहीं, बल्कि परायों के लिए भी—एक-एक करके बन्द हो जाते हैं, कोशिश की जाती है कि एक भी छेद उसमें बाकी न

रहे। ईमानदारी बेईमानी से गले मिलती है, धर्म अधर्म का दामन पकड़ता है, आदर्श अनादर्श का और सदाचार अनाचार का !

गाँवके हर परिवार की भाँति इस परिवार का भी पुश्तैनी पेशा खेती करना था। शिक्षा का प्रवेश होने पर यह धंधा बदला। लेकिन न तो हर कोई कोई पढ़ पाता है; पढ़ने के बाद न ही हर किसी को नौकरी मिलती है, नौकरी मिलने के बाद भी सौ जोखों जान को लगी रहती हैं और अंत में, "जिसका और कोई सहारा नहीं होता उसे धरती माता संभालती है।"

इस परिवार के साथ भी ऐसा ही होता है—कोई शुरू से ही धरती-माता का सहारा लेता है, कोई बाद में आता है। पहले वालों की बाद वालों से टक्कर होती है : लाठियाँ टूटती हैं, सिर फूटते हैं, मुकदमे चलते हैं, झूठ के सिर पर सच और सच के सिर पर झूठ सवार होता है।

अग्निदत्त, जो कभी इस परिवार की लौ पर न्यौछावर होने वाला परवाना था, सबसे बाद में आता है। रेलवे की नौकरी से छूट कर जब वह गाँव में आता है तो चौधरी लोगों की बाछें खिल जाती हैं,—सोचते हैं, सोने का पंछी आ गया, न्यौलियाँ बाँधे हुए। वे गुनताड़ा लगाते हैं : अगर इन लोगों में आपस में फौजदारी हो गई और दोनों फरीकों के सिर फूट गए तो खूब पौ बारह होंगे। दूसरे फरीक के लोग भी इसी तरह गुनताड़े लगाते हैं—वे जानते थे कि ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत (अग्नि दत्त के सगे-सम्बन्धी) के पास रुपयों की न्यौलियाँ नहीं हैं, लेकिन जब फँस जायेंगे तो चाहे बहुओं के जेवर बेचने पड़ें, रुपये तो जुटाने ही होंगे।

और इन दोनों फरीकों को लड़ाने वाले चौधरी जब आपस में मिलते हैं तो मूछों पर ताव देते हुए कहते हैं :

"यही होगा चाचा ! तुम निसाखातिर रहो। बस, फिर तुम उधर से मुकदमे की बागडोर संभालना और हम लोग इधर से संभालेंगे। इन

पढ़े-लिखों की गरदनें अब बिना पढ़े-लिखों के हाथ में आई हैं। इन्हें ऐसा नचाना है कि बच्चा जिन्दगी भर याद रखें।"

सार-रूप में अगर स्वयं लेखक के शब्दों में कहना चाहें तो :

"जब यह सरावा गाँव आबाद हुआ था तो इसमें एक ही परिवार था। इस परिवार की पाँच पट्टी बनीं और उन पट्टियों में कई सौ परिवारों ने जन्म लिया। कितने सगे भाइयों ने आपसी बंटवारे के साथ जुदा होकर अपना चूल्हा और अपनी तवा-परातें लेकर पुराने मकानों में दीवारें खींचलीं। और कितने परिवार आपसी निपटारा न करके अदालती मुहर्रिरों, वकीलों, पटवारियों, गवाहों और इंसाफ के मालिक मुंसिफ तथा जजों की भेंट चढ़ गये। कितने मकानों में बंटवारे की दीवारें खिंचीं और कितने परिवारों के लावल्द होने पर वे दीवारें फिर मिस्मार कर दी गईं, इसका एक लम्बा-चौड़ा इतिहास बन गया है जो सरावे के पटल पर उसकी खंडहर इमारतों में आज भी साफ-साफ लिखा हुआ है। कस्बे का हर मकान उसके इतिहास की पुरानी कहानी से बना एक रोचक और शिक्षाप्रद उपन्यास है जिसमें यथार्थ के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।"

इतना ही नहीं, बल्कि कुछ और भी—

"हर परिवार के पेट से एक नया सम्मिलित परिवार निकलता चला गया और हर नया परिवार पुराने परिवार के बूढ़े ढाँचे पर मुस्करा कर बोला—खत्म करो अपने दकियानूसी तौर तरीकों को; हमें आगे बढ़ने दो और खामखा के लिए हमारी उन्नति के मार्ग में काहिलों की भीड़ जमा करने की कोशिश न करो। हमें नई इमारत बानानी है। हम पुरानी बिला हवादार इमारत में अपने को बन्द करके नहीं रख सकते।"

बस, इतना ही, अब आप उपन्यास को पढ़ें।

—नरोत्तम नागर।

परिवार

: १ :

हिन्दुस्तान की सर ज़मीन पर सरावा भी एक क़स्बा है। उत्तर प्रदेश के ज़िला मेरठ में, तहसील हापुड़ में, वही हापुड़ जो अनाज की विख्यात मण्डी है,—हापुड़ से पाँच कोस पश्चिम की ओर, कच्चा रास्ता तै करके। क़स्बा चारों ओर पाँच-पाँच चार-चार कोस पर रेल की लाइनों तथा पक्की सड़कों से घिरा था, लेकिन उसके अपने सिवाने को छूती हुई न कोई पक्की सड़क ही जाती थी और न कोई रेलवे लाइन ही।

अजीबोग़रीब क़स्बा है, ऐसा क़स्बा जो शहर बनते-बनते रह गया; जिसके वातावरण ने कभी अच्छे दिन देखे थे, जिसकी तहज़ीब काफ़ी पुरानी है, जिसका बोल-चाल का तरीक़ा काफ़ी सुसंस्कृत है। किसी ज़माने में जब ज़मीन के कुछ अच्छे पैदावार वाले हिस्से छाँट कर इन्सान ने अपने बसने का ठौर-ठिकाना ढूंडा होगा और कुछ गिने-चुने ज़मीन के टुकड़े रहने के लिए पसन्द किये होंगे, तो उनमें सरावे की जमीन का भी नम्बर आया और यहाँ इन्सानी बस्ती बसायी गई।

गाँव की ज़मीन हमवार है, अच्छी पैदा देने वाली है; क्या गेहूँ, क्या चना, क्या मटर, क्या मकी, क्या धान, क्या कपास, क्या ईख और उरद, अरहर, मूंग, तिल, सरसों, तरा, ज्वार, इत्यादि के अतिरिक्त

सब्ज़ियों में आलू, अरवी, घीया, टिंडा तथा बेल वाले फलों में ख़रबूजा, तरबूज, ककड़ी, इत्यादि भी होते हैं। पुराने बाग़ातों से गाँव घिरा हुआ था। कहावत मशहूर थी कि सरावा उसकी जड़ोंमें पहुँचने पर ही दिखलाई देता है। क़लमी आमों तथा देसी आमों के बाग़, आड़ू, नींबू शहतूत वगैरह भी होते है। जंगल में पक्के बने हुए पुराने ज़माने के कुएं थे। आबपासी का पुराना ज़रिया यही था। अंग्रेज़ी सल्तनत के ज़माने में पहले नहरी पानी का एक बम्बा इधर आया और बाद में बिजली का कुँआ भी चालू हुआ।

क़स्बे का बहुत पुराना इतिहास तो भगवान् ही जाने, परन्तु कहने वाले कहते हैं कि यह आर्य लोगों का बसाया हुआ ग्राम है। सरावे के पास ही चार मील की दूरी पर 'खरखोदा' नाम का एक ग्राम है, मेरठ-हापुड़ की सड़क पर आजाने के कारण वह अच्छा ख़ासा क़स्बा हो गया है, पुलिस का थाना भी सरावे से वहीं चला गया है। कहते हैं यह नगर ख़रदूषण का बसाया हुआ था और उसी समय का 'सरावा' भी है, अर्थात् 'सुर-आवा' यानी ऋषि-मुनियों के यहाँ आकर बस जाने का स्थान। भाषा-वैज्ञानिक 'सरावे' के इस रूप को गलत साबित नहीं कर सकते, परन्तु वहाँ के रहने वालों ने इसे ग़लत साबित करने की क़सम खाई हुई है।

क़स्बे में हिन्दू भी रहते हैं, मुसलमान भी। हिन्दुओं में विशेषता तगा जाति की है जो अधिक सुसंस्कृत रूप से अपने को गर्व के साथ दान-त्यागी ब्राह्मण कहकर पुकारती है। इस जाति के लोग अपना विकास राजा जनमेजय के यज्ञ से मानते हैं। कहते हैं राजा जनमेजय का सर्प-यज्ञ इसी जाति के पुर्खों ने कराया था और फिर उस यज्ञ को सम्पन्न कराने की दक्षिणा-स्वरूप जब उन्होंने कुछ लेने से इन्कार कर दिया तो राजा जनमेजय ने चालाकी से एक पान, जिसमें दान स्वरूप सौ गाँव लिख दिये गये थे, इन्हें खिला दिया। इस प्रकार इन्हें सौ गाँवों की मीदारी मिली और तभी से ये लोग बराबर खेती पेशा ही अपनाकर

पुश्त-दर पुश्त चलते आ रहे हैं। रहन-सहन में ये लोग अधिकांश देहाती ही होते हैं और खेती इनका आम पेशा है। इसीलिए इस जाति का कोई बच्चा यदि गाँव से कमाने के लिए शहर जाता भी है तो उसकी दृष्टि जिन्दगी के आखिरी सहारे के लिए गाँव और गाँव की जमीन पर ही टिकी रहती है, क्योंकि वह जमीन को ही अपनी इज्जत और स्थायी सम्पत्ति समझता है। आज जमींदारी समाप्त होने पर इस विचारधारा में कुछ तबदीली आये-तो-आये।

मुसलमानों में कुछ तालीमयाफ्ता ऊँचे दर्जे के मुसलमान थे, ऊँची क़ौमों के कहलाने वाले और कुछ इन्हीं तगों में से मुसलमानी जमाने में मुसलमान बने मुसलमान, जो गाड़े कहलाते हैं। इनके मुसल-मान बनने की कहानी भी बड़ी दिलचस्प है। यों है तो वह मुसलमानों द्वारा गाँव के जन-बच्चे को एक सिरे से दूसरे सिरे तक तलवार के घाट उतार देने की बात है, परन्तु बात इतनी पुरानी हो गई है कि आज कत्लेआम कहने पर भी रोमांच नहीं हो आता। मुग़लिया सल्तनत के जमाने की बात है, कि सरावे का बच्चा-बच्चा शेखों द्वारा क़त्ल करके गाँव पर क़ब्जा कर लिया गया। इत्तफाक की बात कि गाँव की एक बहूरानी अपने मैके गनेशपुर, गई हुई थीं और वह गर्भवती थी। वहाँ उस बहू के दो जौड़वाँ लड़कों ने जन्म लिया और अपने नाना के यहाँ ही ये लड़के पले। एक दिन इन्होंने अपनी माँ से अपने गांव का नाम पूछा तो माँ ने उन्हें सरावे के विषय में बतलाया। साथ ही वह दर्दनाक कहानी भी सुनाई जिसमें सरावे न जाकर उनके यहाँ रहने का राज छुपा हुआ था।

इसी बीच एक दिन एक सूफ़ी फ़कीर शाहअमर गनेशपुर से गुजरा। प्रेम के राग में पगे हुए इस फ़कीर ने रात को गाँव के लोगों के बीच चौपाल पर बैठ कर अपने मधुर कंठ से एक क़व्वाली सुनाई। लोग झूम उठे इस क़व्वाली को सुनकर। जो लोग वहाँ क़व्वाली सुनने के लिए एकत्रित हुए थे, उनमें उन दो लड़कों का नाना

भी था। नाना उस फ़कीर को पहुँचा हुआ आलिम-फ़ाज़िल और परमात्मा में विश्वास रखने वाला नेकनीयत इन्सान समझ कर और यह सोचकर कि शायद उसके द्वारा ही उनकी लड़की तथा धेवतों का कोई उद्धार हो सके, सरावे के क़त्लेआम की पूरी कहानी कह सुनाई। उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई, जब उसने अपनी बेटी के बेवा होने और उसके पूरे खान्दान की तबाही का हाल सुनाया।

सूफ़ी फ़कीर शाहअमर भी इन्सानों के इस क़त्लेआम की कहानी सुन कर रो पड़ा। उसके दिल में प्रेम की पीर जाग उठी और इन्साफ़ के लिए वह उन दोनों लड़कों को अपने साथ लेकर शाहजहाँ के दरबार में दिल्ली पहुंचा। बादशाह ने लड़कों की पूरी कहानी सुनी और क़ाज़ी के पास उन्हें फ़ैसले के लिए भेज दिया। क़ाज़ी को भी यह गाथा सुन कर दया आई और उसने निश्चय किया कि लड़कों को उनका गाँव मिल जाना चाहिए; परन्तु इस हुक्म के देने में उसके सामने धार्मिक कठिनाई आकर खड़ी होगई। धर्म ने इन्सानियत का गला दबोच कर कहा, 'क्या खूब, तुमने भी खूब सोचा क़ाज़ी जी! भला कहीं इस प्रकार कब्ज़ा किए हुए माल को लौटाया जा सकता है? यदि लौटाने की ही बात है तो क्यों नहीं मुग़लिया सल्तनत अपना बिस्तर-बोरिया गोल करके खैबर दर्रे से हिन्दुस्तान के बाहर होजाती? इस्लाम को फैलाने के लिए हम लोग यहाँ आये हैं। इस्लाम के रास्ते में आने वाली हर रुकावट को हम तलवार से साफ़ करते आ रहे हैं। यह ठीक है कि ये लोग उस गाँव के क़दीम बाशिन्दे हैं, लेकिन सचाई यह है कि आज उस पर मुसलमानों का अधिकार है।' यह सोचते-सोचते तुरन्त ही क़ाज़ी के दिमाग़ में धर्म-परिवर्तन की बात आगई और उन्होंने अपना प्रस्ताव इन दो नौजवान लड़कों के सामने रख दिया।

सरावे के इन दोनों लड़कों के सामने धर्म बदल कर अपना गाँव प्राप्त करने का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। दोनों भाइयों ने आपस में सलाह की और बड़े भाई ने जिन्दगी की जरूरतों के सामने धर्म-परिवर्तन को बेसूद

और काज़ी का बेहूदा दिल-बहलावा समझ कर मंजूर कर लिया। सरावा उसे मिल गया। उन शेखों को भी, जिन्होंने गाँव पर कब्जा कर लिया था, सरकारे वक्त ने नाखुश करना मुनासिब नहीं समझा। उन्हें कुछ ज़मीनें, मिल्कें, अर्थात् बिला लगान की माफ़ी शुदा ज़मीनें, जिन पर सरकार कोई लगान नहीं लेती, दे दी गईं।

दोनों भाई सरावे में आकर बस गये। बड़े के एक और छोटे के चार लड़के पैदा हुए। बड़े भाई ने अपने मरने से पूर्व ही तमाम गाँव को पाँच बराबर भागों में बाँट दिया। एक-एक भाग हर लड़के को मिला। यह बंटवारा करते समय वह अपने को काज़ी से नेक इन्सान और इन्साफ़पसन्द बड़ा भाई समझ रहा था। ये पाँचों भाग आज भी सरावे की पांच पट्टिया हैं, जिनमें पाँच खान्दान पनप रहे हैं, एक मुसलमानों का तथा चार हिन्दुओं के। शेखों के मकानात सब से प्रथक् गाँव के उत्तर पश्चिम की ओर हैं। पक्की हवेलियाँ हैं, लखौरी घिसी हुई ईंटों की बनी हुई, आलीशान इमारतें।

सादगी का ज़माना खत्म हुआ। दाव पेंच का ज़माना आया। बड़े भाई ने मुसलमानित पर भाई के प्रेम को तरजीह दी थी। उसने न सरकारी क़ानूनों की शरण ली और न धार्मिक मान्यताओं और पाबन्दियों की। उसने इन्सानी क़ानून की कसौटी पर जब परखा तो यही ठीक पाया कि अपनी और अपने भाई की सन्तानों में सारी जायदाद को बराबर-बराबर बाँट दिया जाये। सभी को जरूरत थी ज़मीन की, सभी खेती करते थे, और सभी एक जैसे इन्सान थे। मुश्तर्का खान्दान की जायदाद का यह समाजवादी विभाजन उन पाँच पट्टियों तक ही सीमित रह गया। धर्म और खान्दानी स्वार्थ का पंजा कड़ा हो चला। इन पट्टियों ने प्रथक् प्रथक् अपनी बुनियादें क़ायम कीं और उन पर अपने परिवारों को फैलाना प्रारम्भ कर दिया। गाँव का सामूहिक रूप यहीं पर समाप्त होगया।

क़स्बे में अब शेख आबाद थे, तगे आबाद थे और इनके अलावा

अन्य कारीगिर जाति के लोग, लुहार, बढई, माली, चमार, भंगी और यहाँ तक कि अन्त में कुछ फ़क़ीर भी आकर आबाद होगय। दूकानदारी करने वाले बनिये, सुनार, अत्तार, हलवाई, पसारी, पटवे, जुलाहे, धुने इत्यादि भी आ बसे। जिजमानी करने वाले ब्राह्मणों के भी घर थे। इसी बीच जब क़स्बा खुशहाली की तरफ़ बढ़ा तो कुछ खत्री जाति के लोग भी यहाँ आकर बस गये। इन लोगों का पेशा साहुकारा था।

धीरे-धीरे एक समय गाँव ने वह भी देखा कि जब साहुकारा खेती पर छा गया। एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे की जमीनें कर्ज़ के लगाव में साहुकारों के हाथों में चली गईं और उनकी रियासतें बन गईं। जमीदार काश्तकारों में बदल गये, लेकिन यह सबके साथ नहीं हुआ। कुछ लोग अपनी जायदादें बचाये भी रहे। इसी खत्री जाति में एक महाशय राजा दिलेराम के नाम से भी प्रसिद्धि पा चुके हैं। अंग्रेजी सल्तनत के जमाने में उन्हें राजा साहेब का खिताब मिला था। रुपया देकर उन्होंने वह खिताब खरीदा था। यह बहुत पुरानी बात नहीं है। कहते हैं राजा दिलेराम आदमी नहीं देवता था। गाँव ही क्या, आस पास के देहातों पर भी उसका असर था। नेक नीयत इन्सान था और ग़रीबों की मदद करना अपना फ़र्ज़ समझता था। क़स्बे की शान थी उसके जमाने में। क़स्बे का अपना तो कच्चा और पक्का बाजार था ही, साथ में हफ्तेवार एक पैंठ लगती थी, जिसमें शहर के व्यापारी भी आया करते थे। राजा दिलेराम का अपना क़िला था, था कच्चा ही, लेकिन उसे हर आदमी गर्व से क़िला कहकर पुकारता था। यह जो ऊँचा टीला दिखलाई देता है, ठीक इसी के ऊपर बना था। गाँव के चारों ओर अंग्रेजी सरकार के नोटिस लगे हैं कि उस जमीन पर कोई भी खुदाई का काम सरकार की इजाजत के बिना नहीं हो सकता। सरकार का ख़याल है कि उस जमीन के नीचे कोई प्राचीन खजाना है या पुरानी ऐतिहासिक इमारत।

मतलब यह कि क़स्बा ऐतिहासिक है, सरकारी प्रमाण प्राप्त

है। क़स्बे के रहने वालों की तालीम के बारे में तो कुछ पूछो ही नहीं। ताजेरात हिन्द के क़ानून, गाँव में ऐसे कम लोग हैं जिन्हें हिफ़्ज याद न हों। क़ानून का एक-से-एक माहिर गाँव में बसता है। मुख़्तयार, वकील या बैरिस्टर से पहिले उनकी ही अक्ल पर गाँव खेलता है; यानी हर आपसी झगड़े के बाद जरूरतमन्द मुक़दमेबाज़ को उनका साथ पकड़ना होता है। इन अक्लमन्द रहनुमाओं का सिर्फ़ यही काम नहीं है। यदि गाँव के वातावरण में इन्हें कोई ऐसी गुंजाइश दिखलाई देती है कि मुक़दमा हो सकता है, तो ये उस गुंजाइश का ज्ञान उस फ़रीक़ को कराते हैं। इनकी नेकनीयती में भी कोई कमी नहीं होती। ये दूसरे फ़रीक़ को भी दाव बचाने और जवाबी हमला करने का मार्ग सुझाते हैं। दोनों के ही ये हमदर्द हैं, दोनों का भला चाहते हैं। लड़ाई झगड़ा नहीं चाहते, लेकिन इन्साफ़-पसन्द होने के नाते कोई ग़ैरइन्साफ़ी देख कर भी इनका खून खौलने लगता है। गाँव में दर्जे चार तक का मदरसा था। इसलिए तालीम की कमी नहीं, हर आदमी आलिम-फ़ाजिल था, मुन्शी था। शहर की बारीकी किसी-न-किसी रूप में यहाँ के रहने वालों में देखने को मिलती है, शिक्षा में, बोल चाल में, वस्त्राभूषणों में, खान-पान में, रहन-सहन में। साधारणतया गांव का चलन मोटा नहीं बारीक है।

: २ :

जिस जमाने की मैं अब बात शुरू करने लगा हूँ उस समय राजा दिलेराम के सम्बन्धी खत्री लोग भी गाँव से कूच कर चुके थे। ये लोग क़स्बे के लोगों से जियादा आराम पसन्द, इज्जतदार, साहुकार और रियासतदार होगये थे। इनका जीवन-स्तर गाँव वालों से काफ़ी ऊपर उठ चुका था। इन लोगों में तालीम थी और व्यापारी माद्दा भी। शहर तरक्की कर रहे थे। गाँव की जायदादों की अपेक्षा शहरी जायदादों की क़ीमतें बढ़ने लगी थीं। समय की प्रगति से पीछे ये लोग नहीं रहे। गाँव की जायदादें उनकी रियासतें बन गईं और उनका लगान उघाने का काम कारिन्दों के सुपुर्द कर दिया गया।

क़स्बे में खत्री लोगों का प्रधान व्यवसाय साहुकारा था। सब लेन-देन जवान पर चलता था। यानी पुश्त-दर-पुश्त तक कर्जा यों ही चलता जाता था। बाप मरते समय अपने बेटे से कह जाता था कि कितना उसे किसी से लेना है और कितना उसे किसी को देना है। बस यही दस्तावेज़ थी, येही अदालती काग़ज़ात। लेकिन यह ज़माना खत्री लोगों के शहरों में आबाद होते ही बदलना शुरू होगया। शहरों में बसने के बाद खत्रियों का सम्बन्ध गाँव वालों से ढीला होना शुरू हुआ तो दस्तावेज़ों का सम्बन्ध कड़ा करना पड़ा। सब ज़बानी कर्जों के काग़ज़ात दस्तावेज़ों में बदल दिये गये। जो ईमानदार लोग थे उन्होंने अपनी ईमानदारी की ठनक में स्टाम्प लिख दिये और जिनके मनों में साहुकारों की भाषा में बदी आई वे कुछ आनाकानी करके उनके शिकंजे से भाग निकले।

जिस परिवार की मैं बात लेकर आपके सामने आरहा हूँ उसमें ईमानदारी की ठनक थी, इसीलिए उसके पुर्खों ने चारसौ रुपये के सूद-दर-सूद से बने ढाई हज़ार रुपये के कर्जे पर इस तरह हस्ताक्षर कर दिये, मानो किसी मूर्ख ईमानदार ने जान-बूझ कर ज़हर का प्याला अपने तथा अपने परिवार के हलक़ में उडेल लिया हो।

इस परिवार को सरावे में लाकर आबाद करने वाला व्यक्ति चौधरी आभाराम था। उसके पुर्खा अपनी सरावे की जायदाद छोड़ कर कभी दो-चार पीढ़ी पहिले गंगा पार किसी गाँव में चले गये थे। सरावे में उनके हिस्से की जमीन पर कुछ पड़ौसियों में झगड़ा हुआ और उनमें से एक फ़रीक़ ने चौधरी आभाराम को अपना फैसला करने के लिए बुला लिया। चौधरी आभाराम सरावे में बसने की नीयत से न आकर, उनका फैसला कराने की नीयत से आये थे। लेकिन यहाँ आने पर दूसरे फ़रीक की बातों से तैश खाकर यहीं बस गये। दूसरे फ़रीक ने उनके आत्म-अभिमान को ठेस पहुँचाई; यह कहकर ठेस पहुँचाई कि उनके झगड़े के बीच में आभाराम का क्या मतलब? मतलब आख़िर चौधरी आभाराम का नहीं था तो और किसका था? ज़मीन उसकी थी। वह छोड़

गया था, यह दूसरी बात थी, परन्तु क़दीमी हक़ उस पर उसी का था। उसके पुर्खाओं ने किसी दिन उस बंजड़ ज़मीन को तोड़ कर ज़राखेज़ बनाया था, इस योग्य बनाना था कि उस पर जिंस पैदा हो सके। आज यह झगड़ा उस जिंस के लिए ही तो था और उस जिंस पर उसका क़ानूनी हक़ था।

चौधरी आभाराम ने इतने दिन बाद गंगा-पार से इधर लौट कर देखा तो गाँव की ज़मीन की क़ीमतें बढ़ चुकी थीं। फिर गंगा पार में उसका ख़ान्दान भी इतना बड़ा हो गया था कि उसका वहाँ समाना मुश्किल जान पड़ने लगा था। सरावे में उसे इस ज़िद-बहस का बहाना मिल गया। आभाराम दिल खोल कर अपनी जायदाद पर दुबारा कब्ज़ा करने के लिए आमादा होगया।

गाँव में एक अखाड़ा जुट गया। मुक़दमे की नींव पड़ गई। वे दोनों फ़रीक़, जिनमें उस ज़मीन पर झगड़ा था, इस नई आपत्ति का सामना करने के लिए मिलकर एक होगये। आभाराम आज उस पट्टी वालों के लिए दुश्मन था, ग़ैर था, जब कि कभी उसके दादा-परदादा कोई दो व्यक्ति नहीं थे, एक ही रहा होगा। व्यक्तिगत सम्पत्ति के मोह की भावना से हर इन्सान पागल था। वही लोभ आभाराम के दिल में भी झलक रहा था और वही उन दोनों फ़रीक़ों के मन में भी; लेकिन बात आकर आख़िर 'हक़' पर रुक रही थी।

'कैसा हक़?'

'क़ानूनी हक़, अदालती हक़,।'

यानी ज़माना यहाँ तक बदला कि एक पट्टी में भी आपसी बटवारा अपने आप कर लेना सम्भव न रहा। यहाँ मैं यही कहूँगा कि क़स्बे के चरित्र पर रामायण का प्रभाव काम न करके, महाभारत का प्रभाव काम कर रहा था। मिल कर तरक्की करने की बात की ओर किसी का ध्यान न जाकर एक दूसरे के हिस्से में से काट-छाँट करने की आदत बन गयी थी, और इसीलिए गाँव का जो व्यक्ति इस कार्य में अधिक

निपुण था वही गाँव का चौधरी कहलाता था । चौधरी जमाने के तरीके निकाले हुए थे अक्लमन्द लोगों ने । चौधरी आभाराम भी किसी से कम अक्लवाला इन्सान नही था । भय खाता था और क्रम के चलता था गाँव के बीचों-बीच । सब की सुनना और अपने मन की करना उसका उसूल था । उसने गाव मे आते ही गाँव के आदमियों को परखा और उन्हीं लोगों को साथ रखा, और उन्ही का भरोसा किया, कि जिन पर उसे विश्वास था । उसने अपने मोहरे खुद गढ़ कर तैयार किये; दूसरों के गढ़े हुए मोहरों पर चालें नही चली ।

आभाराम के पाँच हट्टे-कट्टे बेटे थे, एक से एक गजब का लाठी का धनी । ऐसे छबीले जवान थे कि जिनकी लाठी का मारा पानी न मांगे । एक ही लाठी मे किरया-करम हो । उन्हे भी आभाराम ने गंगा-पार मे सरावे बुलाया और फिर गांव के एक किनारे पर अपना छप्पर डाल कर एक कच्चा कोठा बना लिया । पास ही खलिहाने के दूसरी ओर एक अहाता मवेशियों के लिए घेर लिया और उसमे अपना सौ गायों का दल लाकर खोल दिया । यह दल उनके पाँचों बेटे गंगापार से आते समय रास्ते मे मिलने वाले मवेशियों को इकट्ठा करके अपनी लाठियों के दम पर ही सरावे मे लाये थे । उस समय उनकी लाठियों में क़ानून बोलता था, राम झाँकता था ।

क़स्बे पर रौब पड़ा इस ठाट-बाट का । यहाँ के साहूकारों पर भी रौब पड़ा, बाजार के बनिये-बाटओं पर भी रौब पड़ा, और क़स्बे के कमीन तो इस ठाट-बाट को देख कर चकाचौंध ही रह गये । जब चौधरी आभाराम की सौ गायें सुबह के समय जंगल में चुगने के लिए निकलती थीं और उनके पीछे-पीछे आभाराम का लजीला जवान बेटा समरजीत-सिंह निकलता था तो गाँव भर की नजरें उस पर पल जाती थीं । अपने ढंग का अनोखा ही जवान था समरजीतसिंह भी । गाँव में पहलवानी का डंका बजा दिया उसने । अपने ज़माने का, आस-पास के देहात में, वह अकेला ही जवान था । एक रौब जम गया उसका पास बैठने-उठने

वाले लोगों पर। लोग दाद देने लगे थे उसकी जीदारी की। वह उस्ताद था गाँव के अखाड़े का।

इस तरह गाँव में अपनी ताक़त से दखल लेकर चौधरी आभाराम ने कलक्टर के दरबार में अर्जी पेश की, और सरकार से इन्साफ़ माँगा। अंग्रेज़ी तहत का यह प्रारम्भिक काल था। पटवारियों के रजिस्टर बने नहीं थे। कहीं पर कोई इन्द्राज नहीं मिलता था। चौधरी आभाराम को अर्जी देने के बाद अपने बयान की पुष्टि में प्रमाण देने की आवश्यकता हुई। सरकार ने उनसे प्रमाण माँगा तो प्रमाण में उन्होंने अपने भाट का बहीखाता पेश कर दिया। इसी बहीखाते के आधार पर चौधरी आभाराम मुक़दमा जीते। इस बड़े काम को कन्धों पर उठाने से पहिले चौधरी आभाराम ने अपने कुछ अच्छे साथी बना लिये थे। जहाँ पहलवानी अखाड़े में कुछ शागिर्द पैदा हो गये थे वहाँ दूसरी ओर एक खत्री साहुकार से भी उनकी मेल-मुहब्बत हो गई थी और उसने अपना याराना निभाने का सबूत भी पेश कर दिया था। चौधरी आभाराम के मुक़दमे में चार सौ रुपया उस जमाने में खर्च हुआ और यह सब-का-सब रुपया इस साहुकार दोस्त ने ही खर्च किया। कोई दस्तावेज़ नहीं लिखी गई, कभी जबान पर रुपये का नाम नहीं आया।

दोनों मित्रों का देहावसान होगया।

: २ :

चौधरी आभाराम के पाँच बेटे थे। विवाह उनमें से केवल दो का ही हुआ। चौधरी आभाराम ने अपने मुखालिफों और उनके मददगारों के दिलों को ठेस पहुँचाई थी और उनके मान को अपनी ताक़त और अक्लमन्दी से दला था, इसलिए उनके मन में भी जलन थी, एक कसमसाहट भी।

इन पाँचों भाइयों का जमाना यों ही खाते-कमाते निकल गया। न तो ये साहुकार का कर्जा ही अदा कर सके और न कोई दूसरी ह

तरक्की की। पहलवानी का शौक खांदान को इस बीच में और लग गया था। उसमें भी काफ़ी खर्च बैठ जाता था, लेकिन उसे बन्द भी नहीं कर सकते थे क्योंकि उसी के कारण क़स्बे के मुख़ालिफ़ लोग ज़रा डरते थे और उन पर रौब रहता था।

यहाँ एक मज़ेदार बात समझ में आ गई, उसका भी उल्लेख करता चलूँ। वास्तव में जब पहले-पहल पहलवानी का शौक पैदा हुआ तो इसका मतलब यह समझना चाहिए कि खाने को सबसे अच्छा और करने को डण्ड, बैठक, कसरत और फिर बस उसके बाद आँखें मीच कर सो जाना। बस यही कार्यक्रम है एक सच्चे पहलवान का।

लेकिन यह निभाना किसी ग़रीब परिवार के बच्चे के लिए भला कैसे सम्भव था? उसे तो उस कार्य के योग्य शरीर बनाने में खर्च होने वाले धन के मिलने का कोई साधन ही दिखलाई नहीं देता। पहिले ज़माने में जब ये पहलवान राज्य की ओर से पाले जाते थे तो ये देश की सुरक्षित जन-शक्ति का काम देते थे। इन पर राज्य को गर्व होता था। लेकिन यह सब मैं रामायण के ज़माने की बात कर रहा हूँ। आज फ़ौज और पुलिस की मौजूदगी में रामायण का समाज पनप रहा था, विदेशी राज्य था, जान पूछ कर भी इस फोड़े को पकने के लिए ही नहीं सारे शरीर को गला डालने के लिए छोड़ दिया गया था।

इस ज़माने के पहलवान ने पेट के लिए चोरी करनी प्रारम्भ कर दी। इस तरह के पहलवान चोर बने। कुछ गुण्डे भी कहलाये और उन्हें पालना प्रारम्भ कर दिया चौधरी लोगों ने। यह खेल सब पेट के लिए था। कुछ चौधरी लोग गाँवों की नाक बनकर अपना सम्बन्ध सरकारी अफ़सरों से क़ायम करने पर जुटे थे। काम कुछ कठिन नहीं निकला। काफ़ी मज़ा आया इस काम के करने में भी।

गाँव में दो किस्म के चौधरी पनपे। एक वे जिन्होंने इस तरह के लोगों को साथ रखकर पुलिस पर भी अपना रौब ग़ालिब रखा और

दूसरे वे जो सरकारी दाव पेचो को समझ कर उनमे फंसते हुए गाँव के नासमझ लोगो को देख कर हसते और उनसे लाभ उठाते रहे। सरकारी पुलिस इन दोनो की यार बनी रही। इस तरह उसने एक ओर गुंडा कहे जाने वाले तब्के का भी हमदद बना रहना पसन्द किया और दूसरी ओर उन क़ानूनी लोगो का भी जो ऊपर नीचे के अफ़सरो मे घूमते रहते थे, उन्हे घी के कनस्तर पहुँचाते रहते थे, और डाली देते रहते थे, तथा कभी-कभी उनके शिकार का भी प्रबन्ध कर देते थे।

एक दिन वह भी आया जब चौधरी आभाराम के चार पुत्र इस दुनियां मे न रहे। पहलवानी परिवार पर भार हो गयी। समरजीतसिह का लड़का अपने बाप दादो की लकीर पर चलना चाहता था। वह भी अलग हो गया।

दूसरे के तीन बेटे एक मुट्ठी मे थे। मुट्ठी में क्या, अभी कीड़े-मकौड़े ही थे। बड़ा लड़का अठारह वर्ष का रहा होगा। उसकी एक बहिन भी थी, शादी करने के लिए। चचा-ताऊ मे से केवल एक ताऊ बचे थे।

ताऊ के सामने परिवार की इज्जत का सवाल था। समरजीतसिह के लड़के के लक्षण उन्हें अच्छे नही लगते थे। दूसरे के लड़के होनहार थे। ये उनकी इज्जत भी करते थे और उनकी देख-भाल भी। ये तीन भाई थे चतुरसिह, शक्तिसिह और अग्निदत्त। चतुरसिह इनमे सबसे बड़ा था। जब पूरे मुश्तर्का परिवार की बागडोर उसके हाथो मे आई तो उसकी उम्र लगभग अठारह वर्ष की थी। बच्चा ही था यह भी, लेकिन हिम्मत वाला बच्चा था, उसकी नसो मे दौड़ने वाले रक्त के अन्दर साहस लहरे मारता था। शुरू से ही तालीम की तरफ़ ध्यान था उसका और उसके विचारों मे समय की हर प्रगति को पकड़ने की क्षमता थी।

मुश्तर्का खान्दान की बागडोरें हाथों में आने पर एक सतर्क कोचवान की तरह इस सहसी लड़के ने चारों ओर देखा। घर की ज़मीन

पर खेती होती ही थी। उसका इन्तजाम इसने अपने बिचले भाई शक्तिसिंह के हाथों में छोड़ा और खुद बाहर से रुपया कमाने की बात सोची। गाँव के स्कूल में दर्जा चार तक उर्दू की शिक्षा उसने पाई थी। फिर प्राइवेट पढ़कर मिडिल पास किया और गाँव के स्कूल में लग-भग सात रुपया माहीना पर मुलाजमत करली। खानदान की गाडी को चलाने में घर की आय के साथ यह एक अतिरिक्त आय थी, जिसका असर घर के आदमियों के पहनावे पर स्पष्ट दिखलाई दिया। स्कूल-मास्टर के कपड़े धुले हुए और साफ रहने लगे।

चतुरसिंह का छोटा भाई अग्निदत्त तालीम पा रहा था। उसने भी दर्जा चार पास किया। इसी बीच में चतुरसिंह ने आगरे के नार्मल स्कूल में जाकर नार्मल पास किया। नार्मल करते ही उसे गेरल टाउन-स्कूल में असिस्टेन्ट टीचर की जगह मिल गई और वेतन भी लगभग पच्चीस रुपये होगया। पच्चीस रुपये का वेतन एक बड़ी रकम थी। हर महीने इतने रुपये नकद मिल जाना सारे प्रान्त में एक तहलका था। लोग-बागों ने अपनी आँखों से देखा कि चतुरसिंह का परिवार ऊपर को उठा। कुछ लोगों को इस परिवार की तरक्की देखकर अफ़सोस हुआ और मन में जलन पैदा हुई, लेकिन चतुरसिंह को इसकी कोई चिंता नहीं थी, वह अपने रास्ते पर चल रहा था, एक अक्लमन्द इन्सान की तरह,—एक बहादुर इन्सान की तरह।

चतुरसिंह जब पढ़े लिखे लोगों के सम्पर्क में आया तो देश में आर्य समाज का रंग जमने लगा था। समाज-सुधार की भावना को लेकर स्वामी दयानन्द ने हिन्दू-धर्म की मान्यताओं पर जो नश्तर चलाया उसकी समय के प्रगतिशील लोगों ने दाद दी और यह समझा कि वाक़ई वह हिन्दू धर्म का पुनरुद्धार करने के लिए भगवान् द्वारा भेजे गये अवतार हैं।

इसी बीच चतुरसिंह चतुरसिंह न रहकर मुंशी चतुरसिंह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अब वह टाउन-स्कूल का हेडमास्टर हो गया था। पढ़ने वाले

बच्चों में उसके प्रति बड़ा आदर-भाव था। ग़रीब बच्चों की फ़ीस माफ़ करना और कभी-कभी तो उनके राशन तक का भी प्रबन्ध करना यह अपना फ़र्ज़ समझता था। केवल एक ही दुर्गुण था विद्यार्थियों की दृष्टि में हेडमास्टर साहब का कि वह उन्हें मार बड़ी करारी लगाते थे। उनके हाथ में रहने वाले मोटे सोटे को देखकर शहतान-से-शहतान बच्चों को भी थरथरी आने लगती थी।

एक दिन वह भी आया जब चतुरसिंह के ताऊ भी इस असार संसार से कूच कर गये। मरने से पूर्व ही उन्होंने अपने तथा अपने दो अन्य भाइयों की जायदाद चतुरसिंह के नाम करा दी थी। इस जायदाद के साथ एक कर्ज़ भी था, यह वही कर्ज़ था, चौधरी आभाराम के ज़माने; वाला, जिसकी अदायगी की ओर आभाराम के मरने के पश्चात् कभी ध्यान ही नहीं दिया गया था और जो चार सौ रुपये से बढ़कर ढाई हज़ार रुपये तक पहुँच गया था।

: ४ :

चतुरसिंह का छोटा भाई शक्तिसिंह साधारण उर्दू जानता था। स्वास्थ्य उसका आम तौर पर ख़राब रहता था। इसकी वजह यह थी कि वह कभी दवा खाते हुए भी परहेज़ नहीं कर सकता था। शौकीन मिज़ाज आदमी था, चार पसलियों का इन्सान, मामूली वज़न, लेकिन उसकी आवाज़ में ग़ज़ब की कड़क थी। बदन छरहरा होने के कारण काफ़ी फुर्तीला था।

शक्तिसिंह गाँव में रहा। उसने गाँव के ही तौर तरीक़ों को अपनाया। कुछ ऐसे इन्सानों से मेल बना रखा कि जो उसकी गुप्त शक्ति के रूप में काम करते थे। गाँव के मुख़ालिफ़ लोग शक्तिसिंह की इन हरकतों से भय खाते थे।

गाँव में क़ानून का शिकंजा उतना कड़ा नहीं होता जितना शहरों में होता है। जहाँ तहज़ीब जितनी अधिक कहलाती है वहाँ क़ानूनी बंदिशें भी उतनी ही अधिक होती हैं। लेकिन गाँवों में क़ानून के बाद भी

किसी और ताक़त की आवश्यकता रहती है; और वह ताकत शक्तिसिंह के पास थी।

अब अपने छोटे भाई को भी चतुरसिंह ने पढ़ने से रोक कर काम पर लगाने की बात सोची। दर्जा नौ मे पढ़ाई छोड़कर वह भी स्कूल-मास्टर होगया और डेढ़ वर्ष मास्टरी करने के पश्चात् वह ग़ाज़ियाबाद में रेलवे के कैरिज विभाग के अन्दर क्लर्क बन गया। अठारह रुपये माहवार की आमदनी होने लगी। पच्चीस रुपया महावार की चतुरसिंह को आय थी और अठारह रुपये ये मिल गये। परिवार का रंग पलट गया। चतुरसिंह के शक्तिसिंह और अग्निदत्त दो मज़बूत बाज़ू थे और वह खुद भी अच्छी खासी कमाई करने वाला इन्सान था।

शक्तिसिंह को गर्व था अपने छोटे और बड़े भाई की आय पर। वह छोटे को प्यार और बड़े की इज्ज़त करता था। इज्ज़त इस घर में कमाल की थी। चतुरसिंह धर्मावतार समझा जाता था: आर्य समाजी पूजा-पाठी, धर्म का ठेकेदार। जहाँ भी जाता था, उसका हवन-कुण्ड उसकी संस्कार-विधि, उसकी सामग्री, समिधाएँ, अग्नि प्रज्वलित करने को काफ़ूर, मूँज का आसन, पूजा करते समय बाँधने का तौलिया, चन्दन घिसने का हुर्सा, आँचवन के पात्र, ये सब साथ चलते थे। कहीं भी वह मेहमानदारी में जाते थे, तो उनका यह साज-बाज साथ जाता था और जिसके यहाँ ठहर कर एक बार वह यज्ञ कर आते थे, वह तो जीवन भर के लिए उनका भक्त हो जाता था, उनका आदर करने लगता था, नत मस्तक हो जाता था।

चतुरसिंह ने बिरादरी में नाम किया। सभा सोसाइटियों में उन्हें बुलाया जाने लगा। गाँव-गाँव पंचायतें हुई और अधिक लम्बा क़दम उठाने से पहले दसे और बीसे तगों को एक बना देने का प्रश्न सामने आया। स्वामी श्रद्धानन्द वाला शुद्धी का डंका तो पीछे बजा, पहिले यही अन्दरूनी पर्दा फाड़ डालने की बात चली और चतुरसिंह इस विचार-

धारा के प्रवाह से अपने को न बचा सके, वह निकले इस सुधारवादी धारा में। समय की विचारधारा से आगे बढ़ी हुई यह विचारधारा थी, उसके साथ चलना और उसके भावी प्रभाव को समझना सरल काम न था। हाँ उसका विरोध करना उस समय सरल और स्वार्थपूर्ण था। इस प्रकार बिरादरी के तरक्की पसंद लोग एक तरफ़ और पुरानी लीक पर आँख मींच कर चलने वाले लोग दूसरी तरफ़ हो गये।

चतुरसिंह आँखें मींच कर पुरानी लकीर पर चलने वाला इन्सान नहीं था। वह तरक्की पसन्द था। बिरादरी की दसे-बीसे वाली; एक दूसरे को छोटा समझने वाली विचारधारा का वह अन्त कर देना चाहता था। इसी प्रकार के चन्द बिरादरी के और भी व्यक्ति थे। यह तब्का पढ़े-लिखे लोगों का था।

बिरादरी के पढ़े-लिखे लोगों ने मिलकर बिरादरी की सभाएँ बनाई और इस प्रकार तरक्कीपसंद विचारों को आम बिरादरी के लोगों तक पहुँचाया। ज़िला सहारनपुर मुज्जफ़र नगर, मेरठ, बुलन्दशहर, बिजनौर, इत्यादि ज़िलों में तरक्कीपसन्द सभाओं की धूम मची। चतुरसिंह की बिरादरी विशेष रूप से इन्हीं ज़िलों में आबाद है।

चतुरसिंह बिरादरी की सभा के सम्मानित अतिथि बन गये। बिरादरी के पढ़े-लिखे लोगों में पारस्परिक सम्पर्क स्थापित हुए। चतुरसिंह का बिरादरी में नाम हुआ, और उनके आस-पास के पूरे परिवार तथा सम्बन्धियों की स्थिति पर उसका प्रभाव पड़ा। चतुरसिंह के इस उभार को भी कुछ लोगों ने भारी मन से तथा कुछ ने अपने को संभाल कर देखा।

चतुरसिंह जिस-जिस गाँव में भी अपना प्रगतिशील संदेश लेकर जाता था वहाँ-वहाँ उसका मन-मोहक आर्यसमाजी, घोर कट्टर रूढ़िवादी स्वरूप भी साथ चलता था। सभा जुट जाती थी, परन्तु चतुरसिंह संध्या-हवन इत्यादि की क्रियायों को पूर्ण करके ही वहाँ पहुँचते थे। बिरादरी के लोगों को जब उन की बाट देखते दस-पाँच मिनट

हो जाते थे, तो वह मस्तक पर चन्दन दिये बड़ी फुर्ती के साथ सभा-भवन में प्रवेश करते थे। उनका करतल ध्वनि से स्वागत होता था। नौजवान लोग इनकी विचारधारा का समर्थन करते थे।

मिडिल स्कूल के हेडमास्टर चारसौ विद्यार्थी और बीस टीचर उनके नीचे काम करते हैं। मेरठ आर्य समाज के वह प्रधान हैं।

बिरादरी में एकाकी स्थान बना लिया है।

उनके बच्चे भी तालीम पा रहे हैं।

छोटा भाई भी अच्छी-खासी आमदनी कर रहा है।

ये चतुरसिंह की बुलन्दी के दिन थे। पूरा परिवार उसकी मुट्ठी में था। उसका पूरा रस निचोड़ कर वह तीनों भाइयों की तीन प्यालियाँ भी भर सकता था और केवल अपनी ही प्याली में भी सारा रस उंडेल सकता था। उसकी ईमानदारी में दोनों भाइयों को कोई शक नहीं था। फरमाबरदारी में यदि कहा जाय कि भरत और लक्ष्मण के समान भाई उसे मिले थे, तो कुछ अनुचित न होगा।

चतुरसिंह को भी अभिमान था अपने भाइयों पर। एक, जो गाँव में रहता था, वह वहाँ परिवार की इज्जत को बना कर रखता था। चतुरसिंह की इज्जत में क्या मजाल जो कोई एक शब्द भी कह जाय। एक मस्ताना जीव था वह भी। परिवार कर्ज़ से दबा है, उसकी हड्डी-पसलियाँ कर्ज़े के बोझे में दब कर चूर-चूर हो जाना चाहती हैं, इसका ख़याल करने की उसे ज़रूरत नहीं थी। बड़ा भाई था उसके सिर पर इन अहम बातों पर विचार करने के लिए। वह स्वंय एक रंगीन आदमी था। हल्का मोटा इश्क भी वह लड़ा लेता था इधर-उधर। चौधरी था वह। कुछ पहलवानी क़िस्म के आदमी भी जी-जान से उसका साथ देते थे, कुछ तगा-मुसलमान, जिनकी माली हालत बड़ी नाज़ुक थी, एक घर अहारों का भी था, जो चौधरी का साथ देता था। इस तरह डंडे की ताक़त चौधरी के पास काफ़ी थी। बाहर के मामले सुलझाने के

लिए उसके दो पढ़े लिखे भाई थे । हर महीने नक़द रूपया आता था, खेती भी खूब हो रही थी । मौज थी हर प्रकार की घर में । फिर भला क्या डर था शक्तिसिंह को ? वह पाव भर का आदमी गाँव भर पर भारी पड़ता था । आस-पास के सभी चोर उसका दबदबा मानते थे । यदि उसका कोई गाँव का दुश्मन उसका, कोई मवेशी खुलवादे तो चौथे ही दिन मवेशी अपने थान पर लौट आता था, परन्तु क्या मजाल जो चौधरी शक्तिसिंह के खुलवाये हुए मवेशी का कोई पता लगा सके । उनका खुलवाया हुआ मवेशी पाताल लोक को चला जाता था ।

शक्तिसिंह का मकान गाँव के दक्खिन-पूर्व में है । वहाँ से उसका कुआ, जिसके आस पास उसकी ज़मीन थी, लगभग दो फ़र्लांग है । बीच में कुछ फ़कीरों की झोंपड़ियाँ पड़ी हैं, जिनके बीच में से होकर कुए पर जाना होता है । ये सभी लोग चौधरी शक्तिसिंह को उनके मसखरेपन, दरियादिली और बहादुरी के कारण प्यार करते थे । लाख कोई इन्हें फुसलाये या बरगलाये परन्तु इनका शक्तिसिंह से अटूट स्नेह था । गाँव के अधिकांश लोग उसे प्यार करते थे और वह भी सभी के दुख-दर्द में शामिल होता था ।

लेकिन बिरादरी की कुछ पुरानी नाकें, यह भूलकर कि वह भी अपना ही एक भाई है, जो उठ रहा है, तुम्हारी संख्या बढ़ा कर तुम्हें बहुमत में ला रहा है, फिर उस से हसद कैसी, जलन कैसी,—चौधरी शक्तिसिंह की शक्ल देख कर ज़रा और भी तिरछी हो जाती थीं । उनके मस्तकों पर सिलवटें पड़ जाती थीं । शक्तिसिंह उन्हें देख कर मुस्कुराता था और उनके सीने पर नमक सा मलकर छोड़ जाता था ।

क़स्बे की वे नाकें अवसर की ताक में लगी थीं कि कब कोई अवसर मिले और कब वे शक्तिसिंह को नीचा दिखलायें । उनके सौभाग्य से वह अवसर भी आगया ।

चतुरसिंह बिरादरी के दसे-बीसे की समस्या को सुलझाने में बिरादरी के पढ़े-लिखे प्रगतिशील विचारों वाले लोगों का खुलकर साथ दे रहा था। हुक्का वह पीता ही नहीं था, परन्तु निवाड़ी कस्बे की सभा में बिरादरी के बीच उसने दस्से तगों के साथ हुक्के को मुँह से लगाया और गुड़गुड़ा कर एक कश खींचा।

यह बात छिपी हुई न रह सकी। बात हवा की लहरों पर तैरती हुई आनन-फ़ानन में सरावे के अन्दर जा घुसी। लोगों में कानाफ़ूसी शुरू हुई। छोटे लोगों में उसे समझने और सही या ग़लत की राय क़ायम करने का माद्दा नहीं था। लेकिन उन बड़ी-बड़ी नाकों ने इस अवसर को हाथ से खो देना अपनी नादानी समझा; और नादानी वह कर नहीं सकते थे क्योंकि वे अक्लमन्द और दाना इन्सान थे। अपनी अक्ल से ही तो वे इस बुलन्दी पर पहुँचे थे। साधारण दस-दस पाँच-पाँच की नौकरियों से रियासतें बनालीं, क्या यह कुछ कम अक्ल का चमत्कार था?

दस्से तगों को बिरादरी में नहीं मिलाया जा सकता। आज यदि दस्सों को मिला लिया तो कल आर्यसमाज वाले गाड़ों (तगा मुसलमानों) को भी अपने में मिला कर रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहेंगे। बड़ी-बड़ी नाकों के लिए यह बात असम्भव थी। भगवान् ने ऊँचे-नीचे घर में जन्म दिया है। भगवान् के नियमों का उलंघन करने वाला इन्सान बिरादरी में रहने के क़ाबिल नहीं था। फ़तवा दे दिया गया कि चतुरसिंह के परिवार का हुक्का-पानी बन्द, अर्थात् न कोई उन्हें अपना हुक्का पिलाये और न ही कोई अपने बर्तन में उन्हें पानी दे।

चतुरसिंह जो कुछ भी करते थे उसका असर उनके पूरे खान्दान पर पड़ता था। अग्निदत्त क्योंकि शहर में रहता था इसलिए उसे कम परेशानी हुई, लेकिन इस प्रगतिशीलता का शक्तसिंह पर काफ़ी असर पड़ा। गाँव में शक्तिसिंह का हुक्का पाना बन्द हो गया।

चतुरसिंह तो हुक्का पीता ही नहीं था। शक्तिसिंह हुक्का पीता था। इसलिए इस घटना का सबसे अधिक प्रभाव उसी पर पड़ा। लेकिन शक्तिसिंह ने ऐसा करने वालों को मूर्ख समझकर और अपने बड़े भाई के काम में विश्वास करके किसी की कोई चिन्ता नहीं की। वह मस्त ही रहा अपनी मस्ती में।

शक्तिसिंह अपना हुक्का भर कर अपने चबूतरे की फ़सील पर बैठता और शान से हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ रास्ता चलने वालों पर धुआँ फेंकता था, न उसके सीने में ख़म था, न दिमाग़ में, और न विचारों में ही। उसका इरादा मजबूत था, वह अपने पितातुल्य बड़े भाई के काम से पैदा होने वाले गाँव के असर का सीना खोल कर मुक़ाबिला कर रहा था और एक दिन सब ने देखा कि वह गाँव भर से मजबूत निकला।

उन्हीं दिनों दूर-दूर तक भारत के नगरों और क़स्बों में ताऊन (प्लेग) का प्रकोप हुआ। सरावा भी इस प्रकोप का शिकार हो गया। पैसे वाले लोग अपनी जान बचाकर क़स्बे से बाहर जा बसे, परन्तु बेचारे ग़रीब लोग कहाँ जा सकते थे ?

चौधरी शक्तिसिंह अकेला ही था अपने मकान में। वह भागा नहीं गाँव से। गाँव के भाग्य के साथ उसने अपने भाग्य को नत्थी कर दिया। क़स्बे में ज़ोर की मरी फैली। ऐसा मालूम देता था कि तमाम क़स्बा एक खरबूजों की फ़ालेज़ है और उसमें से रोज़ सुबह दस-पांच पक कर एक ओर जमीन पर लुढ़क जाते हैं। क़स्बे की वे नाकें अपने प्राण बचा कर गाँव से विदा हो चुकी थीं। लाशें क़स्बे में सड़ने लगीं। उन्हें मुर्दघाट तक पहुँचाने तक का भी कोई प्रबन्ध नहीं था। ईंधन नहीं था उनकी अंतेष्ठिक क्रिया करने के लिए।

शक्तिसिंह ने क़स्बे की यह दशा देखी तो उससे रहा नहीं गया। उसने एक बैल-ताँगा मुर्दा लाशों को मुर्दघाट तक ले जाने के लिए जुड़वाया और अपने बाग़ के पास से बबूल के जंगल को कटवाकर उन लाशों के जलाने का प्रबन्ध किया।

क़स्बे के लोगों ने शक्तिसिंह को पहिचाना। बिरादरी की बंदिशें आप-से-आप छिन्न-भिन्न होने लगीं। शक्तिसिंह का फिर वही दबदबा था। उसके चबूतरे पर बैठकर उसके हुक्के को बिरादरी का हर आदमी पीता था और सभी लोग उसके पास बैठकर पहिले की ही तरह उसकी चिलमें भरते थे।

: ५ :

अग्निदत्त रेलवे में मुलाज़िम हो गया, मानो खान्दान और सब रिश्तेदारों के लिए रेल एक मुफ़्त की सवारी मिल गई। रेल की सब चीज़ें अग्निदत्त की अपनी चीज़ें थीं और वह उनमें से अपनी आवश्यकता के अनुसार इस्तेमाल कर सकता था, अपने घर भेज सकता था और रिश्तेदारों को भी उनका लाभ पहुँचा सकता था।

साहब को अग्निदत्त का काम पसंद आया। वह फुर्तीला नौजवान था। हर काम को चुटकियों में करता था। साहब ने काम की ओर से बिलकुल आँखें बन्द कर लीं और उसका काम अब केवल अग्निदत्त के तय्यार किए काग़ज़ों पर हस्ताक्षर भर करना होता था।

अग्निदत्त का इंचार्ज मिलिट्री का रिटायर्ड अंग्रेज़ था। उसके सामने क़ायदा एक बड़ी चीज़ थी। किसी भी बात को उसके पास तक बाबू के द्वारा ही आना चाहिए। वह बाबू के अतिरिक्त अन्य किसी से बात करना पसन्द नहीं करता। अपना रौब-दौब क़ायम रखने के लिए वह आम आदमियों से कैसे मिले ?

इस समय अग्निदत्त ही साहब था। उसका हुकम चलने लगा। उसके दफ़्तर के सामने चपरासी बैठता था। उसकी अर्दली के लिए स्टाफ़ के आदमी खड़े रहते थे। उसकी इजाज़त के बिना कोई आदमी, यदि पाँच मिनट भी लेट हुआ, तो काम पर नहीं जा सकता था। हर आदमी की बात को साहब तक पहुँचने का अग्निदत्त ही एक रास्ता था, और वहाँ वह बात उस आदमी की न पहुँच कर, अग्निदत्त की ही बात

पहुँच पाती थी। इस राज से भी स्टाफ़ का कोई भी आदमी अनभिज्ञ नहीं था।

देखते-ही-देखते अग्निदत्त भी एक भारी आदमी बन गया। यह ठीक था कि स्टाफ़ में उससे अधिक वेतन पाने वाले मुलाज़िम भी थे; परन्तु साहब की कुंजी सिर्फ़ उसी के पास थी। उस ताले को खोलने का, जिसके अन्दर हकूमत की ताक़त छुपी हुई थी, केवल अग्निदत्त को ही अधिकार था।

अग्निदत्त की इस स्थिति का ज्ञान जब तक अग्निदत्त तक ही सीमित रहा तब तक अग्निदत्त की आय चालीस रुपया महावार से आगे न बढ़ सकी। यह उसकी दिल्ली की नौकरी का ज़माना था, यह उसके जीवन के उभार का ज़माना था, यह उसके विकास का ज़माना था।

घर उसने छोड़ दिया था। परदेस की नौकरी थी, लेकिन थी दबदबे की। दो सौ आदमियों का स्टाफ़ उसके नीचे काम करता था। वह हैड क्लर्क था रेल के कैरिज विभाग का। साहब उसका था, पूरा अमला उसका गुलाम था और छोटे नौकर उसके अपने नौकर थे। किसी की क्या मजाल जो सामने आँख उठाकर भी देख ले। बाबू अग्निदत्त जिधर से भी निकल जाता था कुलियों, फ़िटरों, क्लीनरों, मेहतरों, कारपेन्टरों, लोहारों, नम्बर-टेकरों के सलाम झुकते चले जाते थे। ट्रेन-एक्ज़ामिनर्स भी जो सामने पड़ जाते थे उन्हें हाथ जोड़कर महाशय टाइम नमस्कार झुकाते थे। अग्निदत्त की आत्मा प्रसन्न हो जाती थी।

अग्निदत्त का एक लड़का था और वह भी चतुरसिंह के पास मेरठ में रहता था। इस लड़के का जन्म भी चतुरसिंह के ही पास हुआ था। मेरठ में अग्निदत्त उस समय तार का काम सीख रहा था। जब जन्म हुआ था तो बच्चे की माता............।

अब जाने दीजिए उन क़िस्सों को, वे बहुत पुराने हैं। लेकिन उन

पुराने क़िस्सों में कितनी बड़ी तबाही का राज छुपा था, काश अग्निदत्त उस समय समझने के क़ाबिल होता, तो एक बड़ा भारी परिवार तबाही से बच जाता और यदि परिवार भी न बचता तो कम-से-कम वह तो बच ही जाता। अपने आप को किसी आने वाले तूफ़ान का धक्का सहने से बचा लेना भी एक काम है, कोई पाप नहीं, बड़े भाई की हुकुम उदूली नहीं।

अभी कुछ ही दिन बीते अग्निदत्त ने एक आदमी को कुलियों में भर्ती किया था। नाम उसका अलबेलसिंह था और वह था भी एक अलबेला जवान ही। मस्ती में झूम कर चलने वाला हट्टा-कट्टा पहलवान था। बाबू से याराना हो गया उसका। याराना इस माने में कि उसने एक दिन संध्या-समय बाबू से आकर अकेले में कहा, "बाबूजी, ज़िन्दगी के ये दिन क्या इन्हीं चालीस रपूलियों में ही काट दोगे ? कहीं तनखाहों में भी भला किसी का पूरा पटा है। अगर ऊपर की आमदनी न हो तो जानते हो ये सब अफ़सर भूखों मरने लगें, भूखों ?"

अग्निदत्त की नजर भी उस ओर जानी प्रारम्भ हो गयी थी क्योंकि उसके दिमाग़ में अपने खान्दान का कर्ज़ा उतारने की बात चौबीसों घंटे चक्कर लगाती रहती थी। कभी-कभी वह सोचता था कि इस चालीस रुपये की नौकरी में तो रुपये का सूद भी पूरा नहीं होता। भला फिर मूल कैसे दिया जायेगा ? लेकिन फिर भी व्यवहार में अग्निदत्त सतर्क था। सोच-समझ कर बातें करता था। उसने अलबेलसिंह के मुँह की ओर देख कर कहा, "भाई, अलबेलसिंह मैं कोई भी खतरे का काम करना पसंद नहीं करता। रूखी-सूखी जो भाग्य में लिखी है खानी मुझे मंजूर है, लेकिन बदनामी मंजूर नहीं।" परन्तु इतना कह कर भी उन्होंने आशा भरी दृष्टि से अलबेलसिंह की तरफ़ देखा और चाहा कि वह कोई ऐसा मार्ग सुझाये कि जिसमें खतरा भी न हो और आय भी बढ़ जाये।

"बदनामी !" अलबेलसिंह हँस पड़ा अग्निदत्त की यह बात सुनकर। "बदनामी तो बाबूजी, अब है कि हाथ में आमदनी का ज़रिया भी

भगवान् ने दिया और फिर भी कोई फ़ायदा नहीं उठा सके । सच जानिए कई बाबू लोग हँसते हैं आपकी नादानी पर। कहते हैं 'क्या देहाती मूर्ख के हाथों में यह अवसर आया है कि न कुछ आप ही लाभ उठाता है और न अन्य किसी को ही लाभ उठाने देता है ।"

यह कह कर अलबेलसिंह ने एक गहरी चोट कर दी अग्निदत्त के दिल और दिमाग़ पर । वह अन्दर-ही-अन्दर तिलमिला उठा । उसे अपनी बुद्धि और कर्मण्यता पर क्षोभ हुआ । उसने अलबेलसिंह के अन्दर एक बुद्धिमान व्यक्ति की प्रतिमूर्ति देखी और विश्वास किया कि वह उसके लिए लाभकर व्यक्ति सिद्ध होगा ।

आज अलबेलसिंह बहुत रात गये तक बाबू जी के पास बैठा रहा । बहुत खुल-खुल कर बातें हुईं । बातों के दौरान में कई बार अलबेलसिंह ने छाती ठोंकी और बाबू जी मुस्कराये । अलबेलसिंह पर उन्हें विश्वास हो चला । आमदनी बढ़ाना वह चाहते ही थे, और कौन नहीं चाहता ? क्योंकि दुनिया का आनन्द लूटने की यही तो एक चीज है । उन्होंने अलबेलसिंह को अपने नाम का उपयोग करने की खुली छुट्टी दे दी । यह छुट्टी देते हुए उनका दिल ज़रा काँपा, परन्तु उन्हें अपने साहब के डिसिप्लिन और अपने प्रति विश्वास पर भरोसा था और जानते थे कि उस शतरंज के मोहरे को वह जिस दिशा में भी खिसकाना चाहेंगे खिसका सकेंगे । फिर क्या था ? अलबेलसिंह ने दूसरे ही दिन चार सौदे बनाये ।

नई भर्ती होने वाली थी । भर्ती का पूरा काम बाबू के हाथ में रहता था । जिन-जिन के नाम बाबू साहब के सामने पेश कर देता था, साहब उन्हें भर्ती कर लेता था । सौदा तीस-तीस रुपये में बना और अलबेलसिंह ने आज रात के झुटपुटे में अस्सी रुपये के नोट लाकर अग्निदत्त के हाथों में रख दिये । एक दिन में दो महीने का वेतन, वह दंग रह गये अलबेलसिंह की क़ाबलियत पर । उनके क़ाँपते हुए दिल ने कहा, "अलबेलसिंह वाक़ई एक क़ाबिल आदमी है ।"

अपना हिस्सा अलबेलसिंह ने चालीस रुपया अलग बचा लिया था ।

परन्तु अग्निदत्त को इसका पता नहीं था। उसने अलबेलसिंह को दस रुपये दिये, इनाम के बतौर। लेकिन आज जब अग्निदत्त ने ये रुपये जेब में रखे तो उनके हाथ काँप रहे थे। दिल को कोई दबोच रहा था। उसे लग रहा था कि वह कुछ ग़लत काम कर रहा है। उसे वह सब कुछ नहीं करना चाहिए। परन्तु तुरन्त ही उसे अपने खांदान के कर्जे का ध्यान आ गया और उस भयानक भूत से मुक्ति पाने तथा अपने खांदान का पुनरुद्धार करने का उसके पास इसके अतिरिक्त और कोई ज़रिया ही नहीं था। वह अपने परिवार के इर्द-गिर्द पड़ी कर्ज़ की ज़ंजीर को जल्द-से-जल्द काट डालना चाहता था। धीरे-धीरे यह महसूस करने का माद्दा अपने आप न जाने कहाँ चला गया। अलबेलसिंह रुपया लाता है और वह इस तरह से ले लेते हैं, मानो उनका कोई हक हिसाब है। वह भी उनकी अपनी ही मेहनत का पैसा है। वह काम कराते हैं साहब से तो क्या वह नौकर हैं किसी के बाप के जो उसका काम मुफ्त करायें ? साहब से काम कराना बाबू अग्निदत्त का ही दम है। अपने दम और बूते का वह इनाम ले रहे हैं ; कोई रिश्वत नहीं ले रहे किसी से।

और फिर जब काम कराने वाला खुशी से दे जाता है तो वह भला उसमें वह क्या करें ? उसके ठीक विपरीत यदि वह किसी का भेजा हुआ तोफ़ा नामंजूर कर देते हैं तो वह परेशान होता है, हताश होता है, दुखी होता है और यह समझता है कि बाबू उस पर नाराज हो गये। खामखा किसी को दुखी करना बाबू अग्निदत्त को पसंद नहीं। वह हरदिल-अज़ीज़ बनकर रहना चाहते हैं। चार पैसे किसी से लेते हैं तो उसका दिल दुखाकर नहीं, उसका काम करके लेते हैं। इसे वह बुरा नहीं समझते।

अग्निदत्त पर भी अपने बड़े भाई चतुरसिंह का असर है। वह भी आर्य-समाजी हैं। हुक्का वह नहीं पीते। कभी-कभी पान खाने का शौक कुछ ज़रूर है, लेकिन वह शायद ही उन्हें कभी अपने पैसे का खरीद कर खाना होता है। उन्हें सिग्रेट पिलाने वाले लोगों की भी कमी नहीं, क्योंकि हेड-क्लर्क होने के नाते पूरे डिपार्टमेन्ट के कर्मचारियों का उनसे काम

पड़ता है। उनकी खुशी से उन्हें लाभ न सही परन्तु उनकी नाखुशी से उन्हें हानि अवश्य हो सकती है। जो सीधी-सादी छोटी अक्ल के लोग हैं वे भय खाते हैं बाबू से, जो मूर्ख और नाकारा हैं परन्तु किसी तरह भर्ती हो गए हैं, वे बाबू को खुश रखना अपनी नौकरी की सलामती के लिए ज़रूरी समझते हैं और जलने तथा मौका पाकर डंक मारने वालों की भी कमी नहीं है डिपार्टमेन्ट में। परन्तु उन्हें अग्निदत्त भी खूब ताड़ता है और उनके मद-मर्दन करने की पूरी शक्ति वह अपने में रखता है। वे लोग अग्निदत्त को विषले सर्प की तरह देखते हैं।

अग्निदत्त की आय बढ़ रही है। खर्च कुछ है नहीं। एक लड़का है, सो वह भी बड़े भाई साहब के पास रहता है। अग्निदत्त और उसकी पत्नी दिल्ली में रहते हैं। चतुरसिंह पर दोनों का पूरा-पूरा भरोसा है और दोनों ही खान्दान की इज्ज़त को अपनी इज्ज़त समझते हैं। कमाई शुरू हुई। आमदनी के ज़रिये बनाने की बात है। पहिला आमदनी का ज़रिया नौकरी बना और फिर उसकी शाखा-दर-शाखाएँ फूटनी शुरू हुईं। अलबेलसिंह वाली शाखा का काम अच्छा खासा चालू हो गया; अच्छी खासी आय होने लगी। दूसरा ज़रिया बना रेल के दफ्तर में आनेवाले सामान में से बेचकर पैसा पैदा करना या उसे अपनी जिन्दगी की आवश्यकताओं में इस्तेमाल करना। इन दो बातों में से अग्निदत्त ने पहिली बात को न अपनाकर अपने को केवल दूसरी बात तक ही सीमित रखा। रेलवे की चीजों को अपने रिश्तेदारों को जी खोल कर बाँटा, साहब से खुशी-खुशी पूछ कर बाँटा, और अपने हुक्म से भी बाँटा।

अग्निदत्त की स्त्री रेलवे के कपड़ों को काट-पीट कर इस्तेमाल में लाई, रेलवे की अँगीठी पर रेलवे का कोयला जला कर खाना बनाया। रेल के पहियों में तेल के अन्दर भिगो कर लगने वाली सूत की पिंदियों को उधेड़ कर उस सूत से कपड़ा बुनवाया और वह स्वयं पहिनने के अतिरिक्त चतुरसिंह के पास भी भेजा। रेलवे की वर्दियों में से छांट कर इस्तेमाल के कपड़े बनाये। उसकी सराहना भी हुई। दफ्तर के मिट्टी के

तेल के कनस्तर तो चतुरसिंह की ससुराल तक पहुँचे। साथ ही अग्निदत्त की स्त्री ने अपने भाई तथा बहिनों की भी, जैसा कुछ वह कर सकती थी, मदद करने की कोशिश की। वह किसी के काम से पीछे नहीं हटी। एक दया-वृत्ति है उसके दिल में और सचमुच ही वह बड़ी उदार है। अपने जीवन की जरूरी आवश्कताओं की पूर्ति की सीमा से आगे बढ़कर ऐल-फैल में कभी एक पैसा खर्च करना उसने पसंद नहीं किया। उसके जीवन में सादगी है; सादगी यहां तक कि कभी घी-चुपड़ी रोटी भी वह नहीं खाती।

अग्निदत्त दिल्ली में मुग़लसराय के अन्दर रेलवे क्वार्टरों में एक-कुलियों के मकान में रहता था। जरा सी कोठरी, सामने दो खाट का चौक, बस यही था पूरा मकान। एक लाइन थी ऐसे क्वार्टरों की। क्वार्टर के बाहर एक पक्का कुआ था जिसका पानी पीने के काम आता था। एक पीपल का छायादार वृक्ष था। छुट्टी के दिन वहाँ खटिया डालकर बैठा जाता था।

अग्निदत्त का अब दरबार लगने लगा था। संध्या-समय उसकी खाट क्वार्टर के बाहर छिड़काव हुई ज़मीन पर बिछी मिलती थी और अलबेल-सिंह उसके इर्द-गिर्द टहलता हुआ। अग्निदत्त की यह देखते ही तबियत खुश हो जाती थी। फिर दूर से ही अलबेलसिंह उन्हें आर्य-समाजी नमस्कार करता था, क्योंकि वह जानता था कि बाबूजी इस नमस्कार से खुश होते हैं। वह उन्हें इधर-उधर बातों में महाशय जी शब्द से सम्बो-धित करता था और यह नाम उस समय आर्यसमाजी क्षेत्र में बड़े सम्मान का सूचक माना जाता था। "यह तुमने बहुत अच्छा किया अलबेलसिंह! सफ़ाई मुझे बहुत पसंद है। तुमने तो मुहल्ले का रंग ही बदल दिया।" अग्निदत्त सफ़ाई देखकर बोला।

"जी बाबू जी, कल जब मैं यहाँ आया तो देखा कि बड़ी गंदगी है। रात को ही मैंने कलवा भंगी और जुम्मा शक्के के कान गरम कर दिये। बस यह समझिये कि डूटी लगा दी है दोनों की।"

बाबू जी को प्रसन्नता हुई। उनका दबदबा अब पूरे स्टाफ़ पर छाता चला जा रहा था । कुछ बाबू, जो ट्रेन एग्ज़ामिनर्स थे और अग्निदत्त से अधिक तनखा लेने पर भी उस ठाट से नहीं रह पाते थे, उन्हें जलन होती थी, लेकिन अधिकांश हां-में-हां मिलाने वाले ही थे । अग्निदत्त का साधारण व्यवहार सब की भलाई का ही होता था । किसी को खामखा सताने की उसकी नीयत कभी भी नहीं रहती थी । रिश्वत वह लेता ज़रूर था लेकिन उन्हीं लोगों से लेता था जिनका काम करता था और उनसे भी कभी सौदा नहीं करता था । जो कुछ कोई दे देता था उसे ही सब कुछ समझ कर, उसकी श्रद्धा समझ कर जेब में रख लेता था। काम वह देने वाले और न देने वाले, सभी का करता था परन्तु देने वाले का काम ज़रा ज्यादा दिलचस्पी से करता था और देने वाला भी देकर यह समझ लेता था कि बस अब यह बाबू का काम है, वह जाने ; और काम हो ही जाता था।

क्वार्टर में घुसे तो उनकी पत्नी ने आगे बढ़कर उनका कोट और टोपी संभाले । पायजामा उतार कर तहमद बांधा और फिर क्वार्टर के बाहर आकर खाट पर बैठ गये । इसके बाद दरबार लगना शुरू हुआ। बाबू के पास तक स्टाफ का हर आदमी अपनी पहुँच करना चाहता था । जो हिम्मत वाले लोग थे वे स्वयं आ जाते थे, कुछ कारीगिर लोग अपनी कारीगिरी का कोई नमूना ही उन्हें पेश कर जाते थे, जैसे, लोहार, बढ़ई इत्यादि यानी मेज बनाकर, कुर्सी बनाकर, खाट बनाकर, तसला बनाकर, खुर्पा बनाकर, गंडासा बनाकर,—और फिर ये ज़रूरत के सामान भी अग्निदत्त के पास आये, जिनकी उसे अब ज़रूरत नहीं थी, और जगह भी नहीं थी यहाँ दिल्ली शहर में उसके पास रखने के लिए। उसने वह सामान जी खोल कर अपनी सब रिश्तेदारियों में बाँटा और शौहरत हासिल की, कमज़ोर रिश्तेदारों की मदद की ।

अग्निदत्त अपने बड़े भाई चतुरसिंह के पीछे आँख मींचकर चलने वाला फ़रमाबरदार छोटा भाई था । भाई की आज्ञा से दिन को रात और रात

को दिन कहने की उसने अपने मन में क़सम खाली थी। उसने बड़े भाई के अन्दर अपने पिता की प्रतिमूर्ति देखी थी और वह कल्पनामय मूर्ति अग्निदत्त अपनी स्त्री को भी दिखलाने में सफल हो गया।

परिवार की मान-मर्यादा की कसौटी पर चतुरसिंह ने प्रारम्भ से ही अग्निदत्त को घिसा था और यह सोना निमल साबित नहीं हुआ, सोने में चमक थी, दमक थी।

परिवार की जड़ों को सींचने के लिए ही चतुरसिंह और अग्निदत्त परदेस में कमाने के लिए निकले थे और कसम लेकर निकले थे कि परिवार को ऊँचा उठाना है।

अग्निदत्त ने जो कुछ कमाया, बिला हिसाब अपने बड़े भाई चतुरसिंह को, या कर्ज में देना शुरू किया। वेतन जितना चतुरसिंह को मिलता था, उससे कम अग्निदत्त का भी नहीं था; परन्तु ऊपर की आय में आकाश पाताल का अन्तर था। चतुरसिंह मिडिल स्कूल के हैड मास्टर थे। चौक-चाँदनी पर बच्चों की लाई हुई चौथ का रुपया जब प्रथम बार उन्हें लगभग पैंतीस रुपये मिला तो बांछै खिल गईं। वह आय उनकी बराबर बढ़ती ही जाती थी। कुछ हेडमास्टर लोग बोर्डिंग में रहने वाले बच्चों के घर से लाये हुए आटे में से ही अपने परिवार का भी काम चलाते थे; परन्तु चतुरसिंह की वृत्ति कभी इन छोटी चीज़ों की तरफ़ नहीं जाती थी।

यह ठीक था कि उसका परिवार कर्ज़ से दबा था और उसका पारिवारिक खर्च भी काफ़ी था परतु उसके पास परिवार की आय को संभालने वाला उसका छोटा भाई मौजूद था। चतुरसिंह का छोटा भाई, वेतन से डोढ़ा रुपया और कभी-कभी उससे भी अधिक उस परिवार की नींव में भर रहा था जिसकी उन्नति और शोहरत का सेहरा चतुरसिंह अपने सिर बाँधते चले जा रहे थे।

चतुरसिंह के तीन लड़कियाँ और दो लड़के थे। घर पर रहने वाले बिचले भाई शक्तिसिंह के दो लड़के एक लड़की थी और अग्निदत्त के

सिर्फ़ एक लड़का। चतुरसिंह की बड़ी दो लड़कियों की शादी सम्मिलित परि-
वार की पूंजी से हुईं। किसी के मन में कोई बात नहीं उठी। सरावे की
जमीन पर खेती कराने वाले तथा परिवार की इज्जत की बाग डोरों को
सँभाल कर बैठने वाले शक्तिसिंह के बड़े लड़के रामप्रकाश की भी शादी
सम्मिलित परिवार ने ही की। कोई झंझट पैदा नहीं हुआ।

चतुरसिंह के घर गोरी-गोरी बहू आई। अपनी तथा अपने छोटे
दोनों भाइयों की शादी के बाद यह दूसरी पीढ़ी में लड़के की पहिली
शादी थी। परिवार की पूरी शक्ति परिवार की इज्जत क़ायम करने के
लिए लगाई गई, और वह क़ायम रही। चतुरसिंह ने पानी में सींक खड़ी
कर दी। छोटे भाई के बड़े बेटे की शादी करके लाया था वह। परिवार
में पूर्ण उल्हास था, आनन्द था, मगल था।

एक दिन वह भी आया जब मुन्शी चतुरसिंह के बड़े लड़के का रिश्ता
एक मिडिल स्कूल के हेडमास्टर महोदय ने अपनी लड़की से कर दिया।
शादी के दिन आ गये परन्तु इस शादी की शुरूआत आनन्द, मंगल
और प्रेम से न होकर कलह से हुई।

चतुरसिंह के अपने लड़के की शादी थी। वह उसे जरा अधिक धूम-
धाम से करना चाहता था। वह पूरे गाँव को लड्डू-कचौरियों की जौनार
देना चाहता था। जब शक्तिसिंह के लड़के की शादी थी तो उतनी
बड़ी जौनार देने की उसमें शक्ति नहीं थी।

अग्निदत्त खांदान की लौ पर जलने वाला परवाना था। वह तो यदि
सारे गाँव क्या, ज़िला मेरठ की लड्डू-कचौरी का सवाल आता और
परमात्मा छप्पर फाड़ कर उसे रुपया दे जाता, तो कर गुज़रने में न
चूकता। उसके पास इस समय रुपया बरस रहा था। उसका दिल खुला
हुआ था, उसकी हिम्मत चौबाला थी।

शक्तिसिंह और चतुरसिंह के पारस्परिक मनोमालिन्य की सूचना
लेकर पंडित नत्थीलाल, जो कि उस समय मुंशी चतुरसिंह के नायब
चर थे, देहली पहुँचे। अग्निदत्त ने इस समाचार को भारी मन से

सुना। शक्तिसिंह ने बड़े भाई चतुरसिंह का मुक़ाबिला किया, यह बात अग्निदत्त को बुरी लगी। दूसरी बात यह कि आज वह गाँव भर को लड्ड-कचौरी की रोटी अपने मन से भी देना चाहता था। वह गाँव पर अपनी रईसी की धाक बिठलाना चाहता था। उसके पारिवारिक कर्ज़ का एक बड़ा हिस्सा उतर चुका था। एक दिन उससे गाँव में उसके एक कर्ज़दार ने रुपया माँगने पर कहा था, 'अबे जा! आया बड़ा साहूकार का बच्चा बनकर। ज़रा पहिले बाप-दादों का खाया हुआ तो दे ले।'

वे शब्द आज भी अग्निदत्त के कानों में बज रहे थे। उनका बजना अब धीरे-धीरे कम होता जा रहा था। वह चाहता था कि अब एक दिन अपने चबूतरे की उसी फ़सील पर खड़ा होकर उस गाँव के अपने कर्ज़दार से मुस्करा कर कह सके, 'अबे यार, हमने तो अपने बाप-दादों का खाया हुआ भी अदा कर दिया लेकिन एक तू है कि अपना खाया भी न दे सका।'

अग्निदत्त को पंडित नत्थीलाल से पता चला था कि शक्तिसिंह के विरोध के कारण चतुरसिंह भतीजे की शादी की तारीख़ बदलना चाहते हैं। अग्निदत्त ने दृढ़ता-पूर्वक कहा "यह सब कुछ नहीं होगा पंडित जी! मैं आ रहा हूँ। शादी जिस तारीख़ की निश्चित हुई है, उसी तारीख़ पर होगी। इसमें कोई अदल-बदल नहीं होगी। तारीख़ का बदलना परिवार की बदनामी है।"

: ६ :

पंडित नत्थीलाल अग्निदत्त का संदेश लेकर मेरठ लौटे। चतुरसिंह ने अभी-अभी हवन समाप्त किया था। अंगोछा बाँधा हुआ था। शरीर पर केवल जनेऊ सुशोभित था। मस्तक पर चंदन लगा हुआ था। सिर पर गाँठ लगी चोटी पड़ी थी। जल-पात्र के ऊपर तैरती हुई घी की बूंदों को दो उंगलियों से निकाल कर दोनों हाथों को रगड़ा और फिर मुँह तथा सिर पर। चेहरा दमदमा उठा। एक तेज था चतुरसिंह के मुख पर। उनके सामने जाने की हिम्मत नहीं थी किसी की; उनकी पत्नी की भी कम।

पंडित नत्थीलाल धीरे-धीरे उनके पास पहुँचे और दिल्ली का सब वृतान्त कह सुनाया। चतुरसिंह सुन कर गद-गद हो उठे। उनकी आँखों में छोटे भाई के प्रति प्रेम के आँसू उमड़ आये और उन्होंने डबडबाये नेत्रों को लेकर पंडित नत्थीलाल से कहा, "मुन्शी जी, भाई हो तो अग्निदत्त जैसा हो।"

"इसमें कोई शक़ नहीं" पंडित नत्थीलाल ने करारी आवाज में कहा। "बहुत क़ाबिल और फरमाबरदार भाई आपको मिला है।"

चतुरसिंह मजबूत हो गये। शादी उसी तारीख पर होगी। इसमें कोई रद्दो-बदल नहीं हो सकती। हुक्म हो गया चतुरसिंह का। हुक्मउदूली करना शक्तिसिंह के वश की बात नहीं थी और खुल कर बड़े भाई साहब के खिलाफ़ कोई शब्द कहने की भी उनमें शक्ति नहीं थी, परन्तु उनके मस्तक की सिलवटें दृढ़ थीं, मुख पर मुस्कराहट नहीं थी, दिल में उमंग नहीं थी; बड़े भाई के लड़के की शादी में होने वाली जौनार के प्रति उत्साह नहीं था।

शक्तिसिंह का बड़ा लड़का पूर्णरूप से परिवार का विद्रोही हो गया। उसने खुल कर विरोध किया। वह उसी समय परिवार से प्रथक हो जाना चाहता था, परन्तु सम्मिलित परिवार की जंजीरों को वह न तोड़ सका। एक फोड़े की तरह परिवार के शरीर में वह उभर रहा था। वह अन्दर-ही अन्दर पकने लगा और उसकी पीड़ा भी धीरे-धीरे परिवार ने महसूस की।

अग्निदत्त शादी में पूरे ठाट-बाट से शामिल हुआ, पूरे इन्तज़ाम के साथ शामिल हुआ। उसके पास इस समय न केवल रुपये-पैसे की ही गर्मी थी, वरन् कुछ वफ़ादार स्टाफ के नौकर भी साथ थे। उन्हें भी डिपार्टमेन्ट से छुट्टी दिलाकर वह अपने साथ लाया था। अग्निदत्त का सबसे विश्वासपात्र और मज़बूत आदमी अलबेलसिंह भी उसके साथ था। अग्निदत्त ने दावत का सारा प्रबन्ध अपने विश्वास के आदमियों के सुपुर्द कर दिया। पारस (जिस कमरे में दावत का सामान रहता है)

की चाबी अलबेलसिंह के हवाले की गई।

शक्तिसिंह के बड़े लड़के ने गुप्त रूप से पारस के अन्दर से लड्डुओं की गोलें (बड़े मटके जिसमें लड्डु भरे थे) खिसकवाने की बात सोची और यह सोचा कि किसी प्रकार वह अग्निदत्त का इन्तजाम खराब करके उसे जलील करे, परन्तु इसमें उसे सफलता न मिली। इस समय उसकी आँखों में अग्निदत्त खार की तरह चुभ रहा था। उसी की औ से ही यह जौनार हो रही थी, और इतनी कामयाब जौनार कि जिसमें गाँव का हर आदमी पूरी सज धज के साथ शामिल हुआ था। क्या हिन्दू क्या मुसलमान, सभी ने आज मुंशी चतुरसिंह की जौनार में भाग लिया, सभी उनके दरवाजे पर आये और सभी का सम्मान करने का उसे मौका मिला।

जौनार समाप्त हुई। सब ने भोजन कर लिया। परन्तु रामप्रकाश ने भोजन नहीं किया।

जिस समय चतुरसिंह ने रामप्रकाश की बहू को शादी के पश्चात् उसके पीहर भेजा था तो परिवार की शक्ति भर जो कुछ जेवर वह जुटा सका, वह उसने बहू को चढाया था। उसी में कुछ और मिलाकर वह परिवार मे आने वाली दूसरी बहू को चढ़ाना चाहता था, और परिवार की बढ़ती हुई आर्थिक स्थिति का प्रदर्शन अपने तथा बहू के गाँव की बिरादरी के सामने करना चाहता था। चतुरसिंह की इस इच्छा पर शक्तिसिंह के बेटे ने जोरदार प्रहार किया। वह अपनी बहू को चढ़ाई गई चीजों में से एक छल्ला भी इस नई बहू को चढ़ाने के लिए देने को तैयार नहीं था। इसीलिए उसने आसन पाटी सभाली थी, खाना नहीं खाया था, जौनार में हिस्सा नही लिया था।

जेवर सब मुंशी चतुरसिंह की स्त्री के ही पास रहता था। चतुरसिंह ने वे चीजें अपनी स्त्री से मंगाई और अग्निदत्त को सलाह के लिए बुलवाया। अग्निदत्त ने इसे अपने भतीजे की नादानी और बचपना समझ कर और समय की नजाकत को ध्यान मे रख कर यही मुनासिब

समझा कि वे चीजें जिस बहू की हैं उसी को दे दी जायें और जितनी बन पावें नई बहू को नई चीजें ही बनवाई जायें।

रामप्रकाश की बहू की चीजें उसी दिन उसे दे दी गई। उसने खाना खा लिया। परिवार के मस्तिष्क पर उसके नाराज होने और खाना न खाने से जो एक भारीपन सवार हो गया था, वह हल्का हो गया, बारात की तैयारियाँ होने लगी। फिलहाल घाव पर मरहम लग गया।

बारात गई और आई। मजे की बारात रही, मजे की शादी रही। देना-लेना भी बेटी वाले ने अपनी हैसियत के अनुसार अच्छा ही किया। बाराती कोई विशेष असंतुष्ट न हुए, परन्तु रामप्रकाश की नाक सीधी नहीं हुई। उसकी कई हरकतें ऐसी हुई कि जो सरावे वाले परिवार के जिम्मेदार आदमी को नहीं करनी चाहिए थीं। ये चीजें चतुरसिंह और अग्निदत्त की नजरों से छिपी हुई नहीं थीं, परन्तु करते भी आखिर क्या, वह उनका अपना ही तो बच्चा था जो ये सब हरकतें कर रहा था। बार-बार क्रोध आता था उसकी बदतमीजियों पर, नालायकियों पर, गुस्ताखियों पर परन्तु मन की बातें मन में ही दबोच कर रह जाना होता था।

बारात वापस आ गई। घर में एक नई बेटे की बहू ने प्रवेश किया। बहू यह जहाँ रूप में सुन्दर थी वहाँ शील और स्वभाव में भी देवी थी। पढ़ी-लिखी थी दरजा चार तक। पहिली बहू के सौंदर्य की छाप गाँव भर पर थी। दूसरी बहू को देखकर तो गाँव भर की स्त्रियाँ एक स्वर में कह उठी, बस री बहुएँ तो सरावे में पारवों के घर आई है।

बहू के आने से चतुरसिंह के घर का आँगन एक अनोखे ही रंग में रंग गया। चतुरसिंह के कान यह सुन रहे थे कि सरावा आज उसकी प्रशंसा में बोलता है, उसके सम्मान में बोलता है। चतुरसिंह के लड़के का विवाह उसी तिथि पर पूर्ण हो गया जिस तिथि पर कि चतुरसिंह

करना चाहते थे ।

अग्निदत्त अपने भतीजे को ब्याह कर लाया था । बहुओं की प्रशंसा सुनकर उसका भी हृदय गद्गद् हो रहा था । वह भाई के काम आ सका, इस पर उसे अभिमान था ।

इस बार अग्निदत्त जब दिल्ली से आया था तो वह दो सोने की चीजें भी गढ़वा कर अपने साथ लाया था । एक जोड़ी हाथ के कड़ो की थी और दूसरी एक माला थी । सोने का भाव इस समय बाईस रुपया तोला था । अग्निदत्त ने दोनों ही चीज़ें अपने बड़े भाई चतुरसिंह के हाथों में दे दीं ।

चतुरसिंह दोनों चीज़ों को हाथ में लेकर बहुत खुश हुए । उनके नेत्रों की रोशनी बढ़ गई । उन्होंने लिपटकर अपने छोटे भाई को प्यार से चूम लिया और फिर दोनों चीज़ें उसी के हाथों में देकर कहा, "लो अग्नि ! जिनके लिए तुमने ये चीज़ें अपने मन से सोचकर बनवाई हैं उन्हीं को दे दो ।"

अग्निदत्त इस समय इस दुनियाँ में नहीं था । उसके आदर्श के सिंहासन पर बड़ा भाई बैठा था । वह उसकी पूजा कर रहा था । उसकी दया और उसके न्याय की प्रशंसा कर रहा था । उसके मन ने जो कल्पना की थी, अपने भाई के मुख से उसने वेही शब्द सुने; मानो उसके बड़े भाई की आत्मा पहिले से ही यह जानती थी कि अग्निदत्त क्या चाहता है ?

अग्निदत्त किसी प्रकार शादी की भीड़-भाड़ में मौक़ा निकाल कर अपनी स्त्री से मिला और भाई के प्रेम और न्याय की सारी कहानी कह सुनाई । वह भावुक नारी भी पति के शब्दों की फुसफुसाहट के सामने अपने दिमाग़ को इस्तेमाल न कर सकी । आगे से अग्निदत्त ने तो इस दिशा में दिमाग़ से काम लेना ही बन्द कर दिया । अंधविश्वास का दरवाजा लग गया, किवाड़ बन्द हो गये, ताला लगा दिया गया । बड़े भाई के किसी भी कार्य के औचित्य या अनौचित्य पर विचार करना ही उसके मन में

एक पाप बन गया ।

अग्निदत्त ने अपनी स्त्री की कलाइयों को प्यार से हाथों में लेकर वे दोनों सोने के कड़े उनमें डाल दिये और माला को उसके हाथों में देते हुए बोला, "यह माला बहू के गले में तुम्हें डालनी है, मुँह देखना चाहती हो न नई बहू का।"

अग्निदत्त की स्त्री ने चतुरसिंह के लड़के की बहू को सोने की माला दी, बस आग लग गई रामप्रकाश के तनबदन में। मुँह दिखाई उसने अपनी बहू की भी होती देखी थी। वह पूरा नक्शा उसकी आँखों के सामने खिंच गया। उसे लगा कि इस परिवार के कर्णधारों ने उसके साथ गैर इंसाफ़ी की, धोखा किया और बेईमानी की। अग्निदत्त शक्ति-सिंह के बड़े लड़के रामप्रकाश से कुछ अधिक बुज़ुर्ग नहीं था और अग्निदत्त की स्त्री उससे लगभग एक दो वर्ष ही बड़ी रही होगी। बराबर की जोट थी, बराबर की चोट वह करना चाहता था। अग्निदत्त का चतुरसिंह के दिमाग़ पर बढ़ता हुआ प्रभाव उसकी आँखों में खटक रहा था। उसके मन में फिर ग्लानि हुई और इच्छा हुई कि वह इस परिवार के बन्धनों से मुक्त होकर अपनी नौका संसार-सागर में पृथक् से खेता हुआ चलकर एक खिलाड़ी की भाँति मैदान में उतरे। नया जोश था, नई उमंगें थीं। वे उमंगें क्या करना चाहतीं थीं यह भविष्य के गर्भ में था, परन्तु उसका स्वतंत्र हो जाने का पूर्ण अधिकार था, और उसके इस अधिकार से उसे वंचित रखने का परिवार ने जो प्रयत्न किया वह उस पर एक महान् अन्याय था और परिवार के सरल प्रवाह में वह रुकावट भी थी।

परिवार का मुखिया यह बरदाश्त नहीं कर सकता था कि उसकी सल्तनत का कोई भी आदमी बाग़ी होकर उससे बाहर निकल सके।

चतुरसिंह के हाथों में परिवार की बागडोरें थी। शक्तिसिंह का लड़का रामप्रकाश उनकी सल्तनत में विद्रोह कर रहा था। कहते हैं इसी बीच एक बार बटवारे की बात सामने आई तो चतुरसिंह ने अपनी

जायदाद का एक बटा बारहवाँ हिस्सा शक्तिसिंह के लिए अलग निकाल दिया और कह दिया कि क़ानूनन उसका वही निकलता है। इसे देखकर शक्तिसिंह को सहम जाना पड़ा, और उसका लड़का रामप्रकाश भी चुप हो गया। रामप्रकाश का हौसला उस समय तो पस्त हुआ, परन्तु यह पस्त होना आगे उभरने की निशानी था, कुछ दबना नहीं था। उसका दिमाग़ कुछ न सोच सका। वह सोचता ही रहा कि शक्तिसिंह को एक तिहाई जायदाद का हिस्सा न मिलकर आखिर बारहवाँ हिस्सा क्यों मिला। उसने अपने वालिद से छानबीन की उस राज़ की तो पता चला कि उनके बाबा भवानीसिंह अपने मरने से पूर्व अपने तीन भाइयों का वह हिस्सा जिस पर कर्ज़ा था बड़े भाई साहब चतुरसिंह के नाम कर गये थे। उस समय वही बालिग़ थे इसलिए वह कार्यवाही भी उन्हीं के नाम हो सकती थी। शक्तिसिंह और अग्निदत्त नाबालिग़ थे।

चतुरसिंह ने परिवार की टूटती हुई दीवार पर इस समय प्लास्टर कर दिया, परन्तु जो दराड़ पड़ चुकी थी वह बहुत पूरी थी, गहरी थी, उसने नींव तक की ईंटों को हिलाया था। केवल रामप्रकाश ही इस समय विद्रोह नहीं कर रहा था, उसका पिता भी यह अनुभव कर रहा था कि चतुरसिंह ने उसके लड़के की शादी में वह हाथ खोलकर काम नहीं लिया जो अपने लड़के की शादी में लिया है। रामप्रकाश जब अपने पिता के सामने उनके पिता तुल्य बड़े भाई चतुरसिंह की इस बेइन्साफ़ी का चित्र लाकर खड़ा करता है तो शक्तिसिंह के पास कोई जवाब नहीं होता। उसे बेटे की ओर झुक जाना पड़ता है, परन्तु भाई के खिलाफ खड़ा होने और दो बातें करने की भी ताक़त उसमें नहीं है। वह अपने बड़े भाई का सामना नहीं कर सकता। वह उनका उसी प्रकार आदर करता है जैसा पहले करता था। परन्तु रामप्रकाश के दिल और दिमाग़ से आदर की बात काफ़ूर हो चुकी, और वह उन्हें उसी दिन से अपनी स्वतंत्रता के रास्ते को रोक देने वाला शत्रु समझने लगा। उस दिन के

बाद यदि वह किसी के लिए भी आदर सूचक शब्द निकालता है या घुल-मिलकर बातें करता है तो वह सचमुच ही उसे धोखा देता है। उसकी इस प्रवृत्ति को परखना परिवार के अन्य व्यक्तियों के लिए इस समय बहुत आवश्यक था और विशेष रूप से कर्णधारों को चाहिए था कि वे उस शक्ति को, जो परिवार को ह्रास की ओर ले जा रही थी, अपने से पृथक् करदें। परन्तु यह सब यहाँ नहीं हो रहा था। मर्ज़ अन्दर-ही-अन्दर बढ़ रहा था। फोड़ा नासूर बनना चाहता था और उस पर ठेस-पर-ठेस पड़ रही थीं। परिवार की रस्सी में एक गाँठ पड़ चुकी थी और उसे खोलने की ज़रूरत नहीं समझी जा रही थी।

अग्निदत्त ने विवाह में जो कुछ किया वह परिवार के नाम के लिए किया था ; चतुरसिंह के लड़के की शादी थी इसलिए नहीं किया था। वह जो कुछ यह सब कर रहा है अपने परिवार की आने वाली पीढ़ी के लिए कर रहा है। शक्तिसिंह के लड़के की बहू की चीज़ों का जब सवाल आया तो उसने आग्रह करके चतुरसिंह से वे चीज़ें रामप्रकाश को दिखाई थीं। इसके बाद उसका फ़र्ज़ हो जाता था कि वह इस विवाह पर अपने बड़े भाई को सहयोग दे। उसने वहू के गले में माला डलवादी और अपना पूर्ण सहयोग दिया।

बड़े भाई का मन प्रसन्न हो गया। अग्निदत्त विवाह के पश्चात् फिर अपनी नौकरी पर चला गया। उसे सलाह देने वाला कोई था नहीं। भविष्य की तरफ़ उसकी नज़र जाती ही नहीं थी। कभी आदमी को बुढ़ापा भी आयेगा इसका उन्हें ख़याल ही नहीं था। उसकी स्त्री ही थी घर की बातों में सलाह करने के लिए परन्तु उसके भी अब सलाह देने का प्रश्न नहीं उठता था क्योंकि उसे तो पहिले ही अग्निदत्त ने अपने भाई की ईमानदारी, सदाचारिता, धर्मवृत्ति और बुद्धिमत्ता से दबा लिया था। अग्निदत्त का लड़का अभी बच्चा ही था और बड़े भाई साहब के पास रहता था। दो मस्त प्राणी, स्त्री और पुरुष दिल्ली के उसी

पीपल के पेड़ के नीचे वाले क्वार्टर में जीवन की मौज की बंसी बजा रहे थे। रौब-दौब की हैडक्लर्की चल रही थी। दफ्तर में जो भी इंचार्ज आता उसे अग्निदत्त के इशारे पर नाचना होता था। उसी के दिमाग़ में दफ्तर का आगे पीछे का सब कार्यक्रम रहता था। आगे पीछे दफ्तर-सम्बन्धी सब चिट्ठी-पत्री का पूरा ब्यौरा उसी के पास था। दिमाग़ अग्निदत्त का अच्छा था। इसलिए अपने स्टाफ़ के काम करने वालों के नाम, उनके पिताओं के नाम, उनके गाँवों तक के नाम उसे ज़बानी याद रहते थे। हाज़िरजाब और धुन का पक्का आदमी था। अग्निदत्त जीवन में मिलने वाले साधनों से आगे बढ़ रहा था।

अग्निदत्त का जीवन तीन दिशाओं में बह रहा था। एक दिशा वह थी जिसका सम्बन्ध अग्निदत्त, उसकी स्त्री और स्त्री-सम्बन्धी रिश्तेदारों से था, दूसरी धारा अधिकाधिक धनोपार्जन करने और परिवार को ऋण-मुक्त करने और अपने भाई चतुरसिंह और उनके परिवार की ओर थी, तीसरी दिशा थी उनका आर्यसमाजी जीवन, जिस रास्ते पर कि उसे बड़े भाई साहब की विचार धारा ने डाला था।

अग्निदत्त और उसकी स्त्री, जीवन की सरल तरंगों में बह रहे थे। जो कुछ अग्निदत्त घर से सोचकर निकला था, वह वह पा रहा था, वह वह कर रहा था, वह संतुष्ट था अपनी नौकरी से, अपनी स्थिति से। अब उसे विश्वास था कि जो कुछ परिवार पर कर्ज़ है, वह एक झटके का है और आनन-फ़ानन में वे उसे उतार कर फेंक देंगे। अग्निदत्त का इस समय संसार में अपना अस्तित्व नहीं चल रहा था। वह चतुरसिंह का घुमाया हुआ एक लट्टू था, जो घूम रहा था। घूमने में इस समय अग्निदत्त को मज़ा आता था। जवानी का जोश था और जीवन का पहिला ही क़दम उसका धनोपार्जन की दिशा में सच्चा पड़ा था।

अग्निदत्त को दृढ़ विश्वास था कि उसका सत्यवादी हरिश्चन्द्र स्वरूप पिता तुल्य बड़ा भाई चतुरसिंह कभी स्वप्न में भी उसके साथ

बेईमानी नहीं कर सकता । उसकी पत्नी को भी यह दृढ़ विश्वास था कि उसके जेठजी, जो इतने बड़े धर्मात्मा हैं कि दोनों समय एक-एक घण्टा बैठकर संध्या करते हैं, नित्य नियम से हवन करते हैं, जो स्वयं ही यह सब कुछ नहीं करते वरन् अपने स्कूल के बोर्डिंग में भी विद्यार्थियों का संध्या करना अनिवार्य कर देते हैं और वह अपने छोटे भाई के साथ कभी स्वप्न में भी बेईमानी नहीं कर सकते । उसने देखा था वह वातावरण जहाँ उन बच्चों के मुख से संस्कृत के उन मंत्रों की ध्वनि निकलती थी जिनके अर्थ का उन्हें ज्ञान नहीं था । उनके रसोई घर में बलिवैश्य करने से पूर्व क्या मजाल जो किसी भूख से तिलमिलाते बच्चे को भी एक चावल का किरका या फुलके-पराँठे का टुकड़ा मिल जाये । उनका नियम अटल था । उनके नियमों में बाल-बराबर भी फ़र्क डालने का साहस किसी परिवार के प्राणी में नहीं था ।

एक नियंत्रित धार्मिक वातावरण था जो चतुरसिंह ने अपने इर्द गिर्द फैला लिया था और उसका रंग इतना गहरा था कि उसे चीरकर असलियत तक पहुँचना अग्निदत्त जैसे बच्चे की कच्ची समझ के लिए असम्भव था ।

मुंशी चतुरसिंह ने अपने परिवार की नीव को वैदिक युग की मान्यताओं पर आधारित किया था। बच्चों को ब्रह्मचर्य-युग में प्रवेश कराया । खटाई, मिर्च, मसाला, प्याज़ इत्यादि का घर में निषेध हो गया । इसका प्रभाव अग्निदत्त पर भी था । उसने और उसकी स्त्री ने सादा रहने का वृत लिया । बाबू और बबुवाइन होने पर भी उन्होंने कभी अच्छा पहिनने और ऐल-फैल से जीवन बिताने तथा चाट पकौड़ी खाने और खेल-तमाशे इत्यादि में भाग लेने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं दिया ।

इसी बीच एक दिन अग्निदत्त के पास अचानक चतुरसिंह के समधी हेडमास्टर साहब का एक सहयोगी प्रस्ताव आया, जिसमें उन्होंने कहा था कि यदि अग्निदत्त चाहें तो वह उनसे रुपया लेकर अपना कर्ज साफ़

कर दें और जब उनके पास हो तब उन्हें बिना सूद लौटा दें। चतुरसिंह के सामने यह प्रस्ताव शायद उस समय इसीलिए नहीं गया कि उनका साहस ही न हुआ हो। परन्तु इसके ठीक विपरीत यह काम यदि समधी हेडमास्टर साहब चतुरसिंह की शै मे ही कर रहे हों, तो कुछ कहा नहीं जा सकता इसके विषय में।

कुछ भी सही, अग्निदत्त ने समधी के इस प्रस्ताव को अपनी मान-हानि समझा और स्पष्ट उत्तर दे दिया, "आपकी कृपा है सब। खासा बड़ा कर्ज़ था, दे दिया गया। अब तो केवल कर्ज़ की पूँछ बाकी है। उसके लिए आपको क्या कष्ट दिया जाय ?"

समधी महोदय चुप हो गये, परन्तु उनके मन में एक खीज उत्पन्न हुई अग्निदत्त के प्रति और वह उसी दिन से उसे बिच्छू का बच्चा समझने लगे। जैसा काठ का उल्लू उन्होंने अग्निदत्त को समझा था, वह वह नहीं निकला।

बात गई-आई हो गई। परिवार के कर्ज़ के खातमें का दिन भी भगवान् ने चतुरसिंह और अग्निदत्त को दिखलाया। दोनों भाई कर्ज की आखरी किश्त लेकर अपने साहूकार खत्री के घर पर गये। यह खत्री अब देहली में कटरा नील में आबाद था। यहाँ उसने अपना घर का मकान बना लिया था। दोनों भाइयों का साहूकार ने उसी तरह आदर किया और घर बार की बातें पूछीं। आखरी किश्त का रुपया मुंशी चतुरसिंह ने आगे बढ़ाया। साहूकार ने कर्ज़ का कागज़ निकाल कर रुपया दोनों भाइयों के नाम से जमा कर लिया और कर्ज़ समाप्त हो गया।

जब उठने लगे तो अग्निदत्त ने साहूकार को उसके एक पुराने वायदे की याद दिलाई। साहूकार को याद न हो, बात ऐसी बात नहीं थी, परन्तु वह चाहते थे कि यदि सामने न आये तो तभी अच्छा है। उन्हें पसीना आ गया। परन्तु तुरन्त वह उठकर अन्दर गये और उन्होंने साढ़े तीन सौ रुपया लाकर मुंशी चतुरसिंह के हाथों में दे

दिया।

खत्री परिवार से जोड़ा हुआ चौधरी आसाराम का यह सम्बन्ध था। उस सम्बन्ध की इज्जत को परिवार ने कायम रखा। परन्तु यहाँ हम तीसरे भाई शक्तिसिंह को भी नहीं भुला सकते। क्योंकि सराबे में परिवार की स्थिति को लेकर बैठने का श्रेय उसी को था और जो कुछ भी वह पैदा करता था उसे बेचने का अधिकार चतुर्सिंह को था। यह ठीक था कि शक्तिसिंह बाहर से नहीं कमा रहा था परन्तु अपनी शक्ति भर तो योग वह दे ही रहा था। वह इस परिवार की, जो कमाने के लिए घर से बाहर परदेश में पड़ा था, जड़ों को मजबूती के साथ पकड़े हुए गाँव में बैठा था और बड़े रौब-दौब के साथ बैठा था। दिल का बादशाह आदमी था। गाँव का जो भी रईसाना शौक होता था उसमें हिस्सा लिए बगैर उसका मन नहीं मानता था। दिल्लगी, हल्की-मोटी अय्याशी, शाम को हलवाई की दूकान पर जाकर पेड़े खाना, ये खास शौक थे सराबे के जमींदारों के। इन सब में शक्तिसिंह किसी से पीछे नहीं था। उसका खाता चलता था हलवाई के यहाँ। घर पर दो-दो भैंसें दूध देती थी परन्तु उन्हें लाला हलवाई की दूकान का ही कढ़ाई में गर्म हुआ, सौंधी-सौंधी खुशबूवाला, ऊपर से मोटी बलाई का ही दूध पसंद आता था। लाला के दिल पर भी मस्ती थी। शक्तिसिंह के परिवार की बदलती हुई हालत उसके सामने थी। शक्तिसिंह के छोटे और बड़े भाई की हैसियत को भी वह जानता था। और फिर अब तो उसका अपना लड़का भी पुलिस में भर्ती हो गया था। था कांस्टेबिल ही लेकिन शक्तिसिंह उसे गाँव में रौब के साथ दीवानजी कहकर पुकारता था। किसी को क्या गर्ज थी जो उनके दीवानजी होने में संदेह करता।

: ७ :

परिवार अब यों देखने में सम्मिलित परिवार था परन्तु वास्तविकता यह थी कि शक्तिसिंह का लड़का अपने मन से परिवार को त्याग चुका

था और अलग बैठ कर उस समय का इन्तजार कर रहा था कि जब वह सहूलियत से अपना हिस्सा परिवार की जायदाद में से निकाल ले। शक्तिसिंह अपने भाइयों की भी चालें देख रहा था और अपने बेटे की भी। भाइयों के किसी काम की वह मुखालफ़त नहीं कर रहा था और बेटे को उसकी किसी बड़ी-से-बड़ी बदतमीज़ी पर डाँटता नहीं था। इस स्थिति में वह यही कुछ तो कर सकता था। बेटा बालिग़ था, उसके बराबर का था, तमाचा मार कर ज़मीन पर बिठला देने वाला बच्चा नहीं था।

शक्तिसिंह की ससुराल सरावे से चार कोस के फ़ासले पर खरखोदा थी, वही खरदूषण का बसाया हुआ खरखोदा। उसकी स्त्री अपने पिता की अकेली सन्तान थी। उसकी माता का देहान्त हो गया था। ऐसी स्थिति में जहाँ एक ओर पति की सेवा उसका धर्म था वहाँ दूसरी ओर पिता की सेवा भी उसका कर्त्तव्य था। फिर कुछ थोड़ा लालच भी था पिता के धन का और उस धन पर उसका वास्तविक अधिकार तभी होता था जब कि वह पिता के आख़री समय तक उसे निभाये, उसकी सेवा करे। और यह सेवा शक्तिसिंह की स्त्री ने की, पति की सेवा चाहे वह न कर सकी। शायद पति की सेवा का मर्म भी उस गाँव की स्त्री की नज़रों में अधिक महत्त्वपूर्ण न हो उठा हो, परन्तु यह मानना कठिन है कि सीता और राम के नाम उसने इस परिवार में रहकर न सुने हों।

शक्तिसिंह अपनी सुसराल की तरफ़ से मजबूत था। समय पर उसे वहाँ से सहायता मिल सकती थी, यह वह जानता था।

जिस दिन शक्तिसिंह को यह पता चला कि उनका परिवार पुश्तैनी क़र्ज़ से मुक्त हो गया तो उसका हृदय बाग़-बाग़ हो उठा। परन्तु साथ ही जब उसे यह खयाल आया कि यह कर्ज से छूटी हुई ज़मीन उसके बड़े भाई चतुरसिंह के नाम है, तो उसका दम वहीं पर खुश्क हो गया और परिवार के ऋण मुक्त होने का जो उत्साह था, वह काफ़ूर हो गया। परन्तु फिर भी शक्तिसिंह ने दिलेरी से काम लिया। भाई से

उसने यह कहना मुनासिब नहीं समझा कि वह कर्ज़ से छुटी हुई ज़मीन को तीनों भाइयों के नाम पटवारी के कागजात में बराबर-बराबर करादे।

शक्तिसिंह ने मन की बात को मन की ही क़ब्र में दफ़ना दिया, लेकिन उसका असर उसके जीवन की पूरी चाल पर पड़ा। परिवार के काम से उसकी दिलचस्पी न जाने कब और कैसे विलुप्त हो गई, यह वह स्वयं भी न जान सका। उसने महसूस किया कि उसमें अब ताज़गी बाक़ी नहीं रही।

बीमार वह रहता ही था। उसकी आंखों ने आज साफ़-साफ़ देखा कि उसका बड़ा भाई चतुरसिंह उसके साथ बेईमानी कर रहा है, उसकी औलाद के साथ बेईमानी कर रहा है। लेकिन वह फ़रमाबरदार छोटा भाई था। उसने यह सब भी अपने मन में मुस्कुरा कर ही बरदाश्त किया। शायद यह भी समझा हो कि बड़े भाई साहब केवल परिवार को छिन्न-भिन्न होने से बचाने के लिए ही यह सब कुछ कर रहे है, परन्तु इसे मानने का प्रयास करने पर भी उसकी अक्ल यह नहीं मान पाती थी।

शक्तिसिंह के अस्वस्थ्य शरीर पर इस गुप्त रहस्य का प्राणघातक प्रभाव पड़ा। शक्तिसिंह की बीमारी बढ़ने लगी। उसके स्वास्थ्य का ताना-बाना मानो झंझा ने झंझोड़ दिया हो। उसकी देख-भाल के लिए उसकी स्त्री भी नहीं थी उसके पास। वह पिता की सेवा कर रही थी खरखोदे में बैठकर। ऐसी दशा में वह गाँव से चलकर अपने छोटे भाई के पास, जहाँ वह नौकर था, दूर पंजाब में नार्थवेस्टर्न रेलवे के स्टेशन भटिंडा पहुँचा। उसका छोटा भाई अग्निदत्त इस समय वहीं पर मुलाज़िम था। अग्निदत्त ने जब भाई शक्तिसिंह की यह दशा देखी तो वह हक्का-बक्का रह गया। दफ़्तर का काम उसी तरह छोड़कर वह उन्हें साथ ले सीधा अपने क्वार्टर में गया, और उसकी स्त्री ने फुर्ती के साथ पलंग पर दरी चादर बिछा दिये। फिर आराम से उसने भाई शक्तिसिंह को लिटाया। गर्म दूध दिया पीने के लिए। और फिर साहब से छुट्टी

लेकर अग्निदत्त तुरन्त अपने मित्र वैद्य जी को लेकर घर आ गया।

इलाज शुरू होगया और शक्तिसिंह की दशा धीरे-धीरे सुधरने लगी। तीन चार दिन में उसने आराम से क्वार्टों के बाहर घूमना शुरू कर दिया। बाबू अग्निदत्त के बड़े भाई की सेवा के लिए कई-कई आदमी अपने आप ही आ जाते थे। फिर शक्तिसिंह का हँसमुख स्वभाव और बात फ़रोशी की कला, हर दिल अज़ीज शक्तिसिंह के पास अग्नि-दत्त के हर जानकार ने बैठना पसन्द किया। सब लोगों में मिल बैठने से स्वास्थ्य जरा और सुधरा और अब उसने अपने छोटे भाई की स्त्री के हाथ के बनाये हुए पतले-पतले फुलके भी खाने शुरू कर दिये। मूँग की दाल के पानी के साथ एक पतला फुलका जिस दिन खाया उस दिन शक्तिसिंह मानो नई जिन्दगी के दर्शन कर रहा था। इस समय वह अपने परिवार के उस प्यार-भरे कोने में बैठा था जहाँ भाई का प्यार तरंगें मार रहा था।

उसका छोटा भाई पास में बैठा खाना खिला रहा था। उसका जी चाहा कि वह अपने इस कर्त्तव्यपरायण भाई के चरणों में अपना सिर रख दे। आज उसके दिल से वह काँटा दूर हुआ जो अग्निदत्त ने चतुरसिंह के लड़के की ज्योनार को सफल बना कर और उसके लड़के की बहू को मुँह दिखाई में सोने की माला देकर, उसके दिल में गुभो दिया था। आज उसने अपने छोटे भाई के अन्दर झाँक कर देखा कि उसमें अपने परिवार तथा परिवार के प्राणियों के लिए कितना प्यार भरा था।

स्वास्थ्य सुधर रहा था। इसी बीच एक और दुर्घटना घटी, कि चतुरसिंह की बहिन कुछ पारिवारिक कठिनाइयों के कारण सरावे में आ गई। वहाँ उस समय घर का ताला लगा हुआ था। शक्तिसिंह अग्निदत्त के पास बीमारी से जरा उभर रहा था। चतुरसिंह को बहिन के सरावे आने की सूचना मिली तो उसने हुक्म जारी किया कि शक्तिसिंह जहाँ भी हो वहाँ से तुरन्त सरावे पहुँचे और बहिन

का उचित प्रबन्ध करे।

शक्तिसिंह बड़े भाई की हुक्म-उदूली नहीं कर सकता था। वह वहाँ अपने छोटे भाई का मेहमान बनकर देख चुका था कि भाई के दिल में भाई का कितना प्यार भरा था, कितना दर्द भरा था। एक मां के जाये थे तीनों भाई, तीनों ने एक ही माता की दूधियों से दूध पिया था। एक ही व्यक्ति उन तीनों का पिता था। उन तीनों का रक्त एक था। जितना वे एक दूसरे का हित सोच सकते थे उतना बड़ा भी नहीं सोच सकता। उसमें आखिर फिर भी बाहर से आने वाला बहू का खून लगा होता है।

फिर छोटी बहिन का, उसके आर्थिक संकट में साथ न देना, भी एक पाप था। वह आगई थी अपने घर तो उसका प्रबन्ध करना भाई का धर्म था। शक्तिसिंह अपने फ़र्ज़ से पीछे हटने वाला इन्सान नहीं था, साहस का वह पुतला था। वैद्य जी का इलाज बीच ही में छोड़ कर अपने भाई अग्निदत्त के पास से रवाना होने की सोचली और कह दिया :

"भय्या! भवानी बहन सरावे आगई है तो मेरी आत्मा बस समझले कि उसी में पहुंच गई है। मुझे सरावे पहुँचा दे। अब मैं यहां नहीं रुक सकता।"

शक्तिसिंह का इस रुग्णावस्था में भटिंडा से प्रस्थान देखकर चतुरसिंह का फ़रमाबदार छोटा भाई लक्ष्मण रूपी अग्निदत्त अपनी कल्पना के अन्तिम छोर पर पहुँच गया। शक्तिसिंह इस समय अग्निदत्त के सामने उसी प्रकार खड़े थे जिस प्रकार कि कभी भरत लक्ष्मण के सामने खड़े हुए होंगे। यहां हमारा अग्निदत्त, भारतीय कल्पना के प्रतीक फ़रमाबदार लक्ष्मण के पात्र से इतना ही ऊँचा है कि लक्ष्मण ने भरत के भाईपने पर सन्देह किया था कि वह राम-द्रोही हो सकता है, परन्तु अग्निदत्त ने कभी भी शक्तिसिंह पर यह सन्देह नहीं किया कि वह चतुरसिंह-द्रोही हो जायेगा। शक्तिसिंह यदि राम-

प्रकाश का पिता था तो वह चतुरसिंह और अग्निदत्त का भाई था। उनका नाता चतुरसिंह से पहिले जुड़ता था और इसीलिए उसपर अधिकार भी उन्हीं का पहिले था।

अग्निदत्त अभी बच्चा ही था अक्ल का। काम का जोर था, काम में योग्य था, यह अलग बात थी परन्तु जिन्दगी के खेल के मैदान का वह नया ही खिलाड़ी था। चतुरसिंह सबसे पुराना खिलाड़ी था। शक्तिसिंह उसके बाद का, परन्तु आज वास्तव में जब शक्तिसिंह यहाँ से चला तो वह खिलाड़ी नहीं था। वह एक भाई था और अग्निदत्त के अन्दर उसे अपनी माता की मूर्ति दिखलाई दे रही थी। वह साथ-साथ पेट पर लेटना याद आ रहा था। अग्निदत्त की स्त्री नहीं चाहती थी कि जेठ जी अभी गाँव जायें। वह चाहती थी कि उनका इलाज जारी रहे। अग्निदत्त भी यही चाहते थे परन्तु बहिन के गाँव में आजाने और भाई चतुरसिंह का आदेश पाने के पश्चात् जाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था।

अग्निदत्त ने भाई को ट्रेन में बिठला कर बिदा किया। अग्निदत्त के स्टाफ़ के आदमी और उनकी मिलनसारी ने जिन्हें मोह लिया था, वे सभी लोग स्टेशन पर उन्हें बिदा करने के लिए आये थे। उनके चलते समय अग्निदत्त के साहब से भी उनकी मुलाक़ात हुई थी। भटिंडा के आर्यसमाजी क्षेत्र के कुछ व्यक्ति भी थे, क्योंकि यहाँ उनका छोटा भाई अग्निदत्त भटिंडा-आर्यसमाज का प्रधान था। शक्तिसिंह ने रेल के डिब्बे के खुले दरवाजे पर से सामने जुटे व्यक्तियों को एक नजर से देख कर गर्व अनुभव किया कि यह सब उसके छोटे भाई अग्निदत्त का प्रताप है। कहाँ यहाँ परदेस में पड़ा है और कैसा ठाट जमाया हुआ है। रेल के अफ़सरों से लेकर शहर के आर्यसमाजी सेठों तक पर असर है। सब हाथ जोड़ कर सामने आते हैं। अपने छोटे भाई के इस असर को देखकर शक्तिसिंह ने मन ही-मन अपने छोटे भाई को आशीर्वाद दिया, "अग्नि! तू फले-फूले। तेरे एक के हजार हों। तेरा एक बेटा है,

वह तेरे नाम को दाग़ नहीं लगा सकता। तूने हमारे परिवार को कर्ज-मुक्त करने में योग दिया है, तेरा यह ऋण परिवार कभी नहीं उतार सकता।"

शक्तिसिंह यहाँ से क़सम लेकर जाता है कि वह रामप्रकाश की बातों में नहीं आयेगा। मुंशी चतुरसिंह अपने भाइयों के साथ नाइन्साफ़ी नहीं कर सकते। रामप्रकाश बचपना कर रहा है। उसे अपने बड़ों को पहिचानने की अक्ल नहीं। उसकी नज़र अभी बड़े भाई साहब की गहराई तक नहीं पहुँच पाई है। वह तो सिर्फ़ आज की ही बातें सोचता है और बड़े भाई साहब परिवार की जड़ों को मज़बूत बनाने की कोशिश कर रहे हैं।

: ८ :

चतुरसिंह इस दुनियाँ में सूर्य की तरह आया और उसकी चतुराई का प्रकाश हर चीज़ पर छाता हुआ चला गया। सब से पहिले तो उसने ईश्वर का विश्वाश प्राप्त किया, जिससे उसने उसे इस पीढ़ी का सब से बड़ा और अक्ल वाला लड़का बनाया। इसका मतलब है कि वही उस परिवार के सिंहासन पर विराजने वाला राजाधिराज था। बड़ा लड़का बनकर अपने ताऊ के दिल और दिमाग़ पर भी वह पूरी तरह छा गया। उन्हें उसके सामने और कोई ऐसा आदमी नज़र ही नहीं आता था जो इस परिवार की गाड़ी को आगे तरक्की के रास्ते पर लेजा सके। इसलिए उन्होंने परिवार का भार और परिवार की सम्पत्ति चतुरसिंह के सुपुर्द करदी। परन्तु यह सम्पत्ति उन बुज़ुर्गों की अमानत थी। इस पर आभासिंह के परिवार के हर बच्चे का बराबर हक़ था। इस सम्पत्ति की ज़मीन पर चतुरसिंह एक वृक्ष बन कर खड़ा हुआ। इस वृक्ष के दो बड़े-बड़े टहने थे, शक्तिसिंह और अग्निदत्त। इन दोनों टहनों को लेकर चतुरसिंह सचमुच ही एक बड़ा भारी वृक्ष था, और उसकी छाया में बहुत से लोग विश्राम कर सकते थे। वह वृक्ष आस-पास के गाँवों के वृक्षों से ऊँचा उठा, अपनी शिक्षा के दम पर; और उसकी ऊँची चोटी

को हर बिरादरी वाले ने देखा। पढ़ा-लिखा आलिम और तरक्की पसन्द होने के नाते समय की बदलती हुई रवायातों ने भी उसे बल दिया, आगे बढ़ने का साहस दिया। बिरादरी में शौहरत मिली, आर्य समाजी क्षेत्र में शौहरत मिली, हेडमास्ट्री में शौहरत मिली, नतीजा उनके स्कूल का हमेशा अव्वल रहता था। पुराना कर्ज उसने उतार दिया, परिवार को बेकर्ज कर दिया। बच्चों को एक हद तक पढ़ा-लिखा लिया। दो लड़कियों और एक लड़के के शादी-विवाह के भार से भी वह मुक्त हो गया। लेकिन इस बीच में यह नहीं कह सकते कि कोई सदमा ही चतुरसिंह के ऊपर नहीं आया और वह बराबर अपनी राह पर बेरोक-टोक ही चलता गया। चतुरसिंह की बड़ी लड़की हरकली विवाह के एक मास पश्चात्‌ही विधवा होगई। तमाम परिवार पर शोक छा गया। चतुरसिंह को इसका भारी सदमा हुआ और उसकी प्रगतिशील विचारधारा को भी ठेस लगी।

हरकली का विवाह चतुरसिंह ने पण्डितों द्वारा पत्रे के अनुसार बतलाये हुए शादी-विवाह के दिनों में, जिन्हें साये के दिन कहा जाता है, उनमें न करके, बिला साये ही किया था। पण्डितों ने विरोध किया था, गाँव ने विरोध किया था और बिरादरी में भी इसकी चर्चा हुई थी। परन्तु चतुरसिंह के प्रकाश ने इन सब धुँधली छायाओं को विलुप्त कर दिया था और शादी बिला साये ही हुई। इस शादी का जब यह दुष्परिणाम सामने आया तो चतुरसिंह प्रगति की राह पर एक क़दम और आगे बढ़े और वह अपनी लड़की का दूसरा विवाह भी करने के लिए तय्यार हुए। परन्तु सती-स्त्री की समाज में मान्यता मानने वाले समाज के वातावरण का अपने घर में बीजारोपण करके उन्होंने यदि अपनी पुत्री के सामने यह प्रस्ताव भी लाने का प्रयास किया, तो यह उनकी एक बड़ी कमजोरी थी। हरकली पढ़ी-लिखी लड़की थी। आर्य-समाजी वातावरण में पली थी। सती स्त्रियों की कथायें उसे जबानी याद थीं। सती स्त्री का पति एक ही हो सकता है, दो नहीं। भारतीय आदर्शवाद की सूली पर चतुरसिंह की वीर बालिका ने अपनी छाती

टिकादी । हरकली के माता पिता बस यहीं से अपनी लड़की के त्याग की शिला के नीचे दब गये । उनके जीवन का आमोद-प्रमोद सब जाता रहा। घर का वातावरण ही बदल गया । कितना बड़ा त्याग किया उसने इस दिशा में । जीवन की पराकाष्ठा पर वह पहुँच गई थी । आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने का व्रत ले लिया। उसके अपने रक्त से इस संसार में कोई वल्लरि चल सकेगी, यह प्रश्न ही समाप्त हो गया ।

हरकली अपने पिता के ही पास आगई । वहाँ रहकर उसने सोचा कि अब उसे अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिये । वह विधवा हो गई है। आज के दिन तो पिता का सहारा मिल भी गया परन्तु यह सहारा तो जीवन भर नहीं चल सकता । उसे अपना सहारा बनाना ही होगा। उसने इस उम्र में फिर से पढ़ना शुरू कर दिया । उसके सामने अपने पिता के द्वारा की गई परिवार की उन्नति का पूरा नक्शा था । उसे पता था कि विद्या में कितनी शक्ति है । इस लिए उसने विद्या को अपने जीवन की साथिन के रूप में ग्रहण किया ।

चतुरसिंह रौब-दौब का आदमी था । क्रोध का मानो वह पिटारा था और हर आदमी को डर रहता था कि कहीं वह पिटारा खुल न जाये और उसमें से निकल कर विषैले सर्प इधर-उधर को न दौड़ने लगें। स्कूल की बौंड्री में घुसते ही ऐसा हो जाता था कि मानो सब लड़कों, टीचरों, चपरासियों तथा क्लर्कों को साँप सूँघ गया है। चतुरसिंह पर दूर से नज़र पड़ते ही टीचर लोग आपस में बातें करना बन्द कर देते थे । लड़के सीधी लाइन लगा कर फ़र्श पर तमीज़ से बैठ जाते थे और अपनी पोथियों का कोई भी सबक़ निकाल कर ज़ोर-ज़ोर से पढ़ने लगते थे। ऐसा मालूम होता था कि मानों स्कूल की सबक़ याद करने की मशीन के स्टार्टर पर मुन्शी चतुरसिंह की तेज़ नज़रपड़ गई है, और मशीन चलने लगी ।

चतुरसिंह के घर पर भी यही हाल था। यदि वह बच्चों को बैठक की ओर से आते दिखलाई दे जाते थे तो बच्चे मकान के पिछले दरवाज़े

पर नज़र आते थे। पंजों के बल इस प्रकार पाँव दबा कर निकल जाते थे कि क्या मजाल जो ज़रा सा भी खटका हो जाये।

इन दिनों चतुरसिंह का परिवार काफ़ी बड़ा होगया था। उनके घर पर रहकर पढ़ने वाले रिश्तेदारों के बच्चों की कमी नहीं थी। चतुरसिंह के बड़े लड़के का साला भी यहीं रहता था, तो उनकी बहिन का एक लड़का भी उन्हीं के पास रह कर पढ़ रहा था। दो अपने लड़के थे, और एक उनके छोटे भाई अग्निदत्त का। दो लड़कियाँ थीं, हरकली और चतुरसिंह की सबसे छोटी लड़की। दो यहाँ उसके पास थीं। बिचली लड़की की शादी हो चुकी थी, और वह अपनी ससुराल में थी।

चतुरसिंह की स्त्री सीधी-सादी, बिना पढ़ी-लिखी थी, एक छोटे से गाँव की रहने वाली, लेकिन आज हेडमास्टरनी थी। दिमाग़ का इस्तेमाल करने की उसे कोई ज़रूरत ही नहीं थी। उसका पति हेडमास्टर था, पढ़ा-लिखा विद्वान् और उसकी लड़की भी पढ़ी-लिखी थी। घर के हर काम में वह उसकी सलाहकार थी। यों ऊपर से पारिवार का काम करने वाली हरकली की मां ही थी, परन्तु वास्तव में इस घर का या यों कहिये इस कि परिवार का प्रबन्ध हरकली के ही हाथों में आ चुका था।

हरकली इस घर की जड़ों में घुस चुकी थी। उसकी माँ का उस पर अविश्वास होने का कोई कारण ही नहीं था। वह विधवा थी, इस नाते वह इस परिवार का धन दूसरे परिवार में ले जायेगी, यह ख़तरा भी नहीं हो सकता था, परन्तु एक और ख़तरा सामने आना शुरू हो गया था और वह खतरा था दूसरी पीढ़ी का। चतुरसिंह के लड़के अभी बच्चे ही थे। उन्हें अपनी बड़ी बहिन मे श्रद्धा थी। श्रद्धा का तो भंडारा था ही इस परिवार में। इस श्रद्धा का बीजारोपण स्वयं चतुरसिंह ने किया था। इसी श्रद्धा के शिकार चतुरसिंह के दो भाई, भटक रहे थे और सच तथा झूठ का निर्णय करने में असमर्थ थे। श्रद्धा के इसी अस्त्र को लेकर हरकली ने परिवार में प्रवेश किया। एक बार वह सामाजिक तथा

हिन्दू-लॉ के अनुसार पिता के परिवार से बाहर निकाली जा चुकी थी। उसका इस घर में कोई अधिकार नहीं था। वह अपने पिता, माता, तथा भाइयों की कृपा पर ही यहाँ रह सकती थी। परन्तु किसी की कृपा पर रहना हरकली को मंजूर नहीं था। एक सेक्स की दिशा म वह त्यागिन थी तो अन्य जीवन के सब मोड़ों पर सर्पिणी की भाँति फुंकार कर चलने वाली थी। हरकली अग्निदत्त की स्त्री से कुछ उम्र में अधिक कम नहीं थी। पहिली पीढ़ी के ही समान वह अपने को भी परिवार के विषय में सोचने और मशविरा देने की अधिकारिणी समझती थी।

हरकली चतुरसिंह की दूसरी पीढ़ी की सबसे बड़ी संतान थी। वह विधवा हो गई तो उसका अपनी ससुराल के प्रति मोह भी समाप्त हो गया। विधवा होने के पश्चात् वह अपनी ससुराल बहुत कम जाती थी। उसका रहना पिता के ही घर में था और यहाँ उसके छोटे भाई बहिनों ने उसे आदर भी बहुत दिया था। क्या मजाल जो घर के वातावरण में कोई भी ऐसी चीज हो कि हरकली के विधवा दिल पर उसकी जरा ठेस लगे। चतुरसिंह और उसकी पत्नी के लिए तो वह इस समय एक देवी थी, सती कन्या थी, पूज्यनीया थी। फिर प्यार था माँ-बाप का, जो हमेशा ही अंधा होता है, और यह अंधापन न जाने कितने व्यक्तियों के फ़र्ज़ के रास्ते रोज बदलता है। इन बदलने वाले रास्तों पर चलने वाली रेलें रोज़ टकराती हैं और चकना-चूर हो जाती हैं। फ़र्ज़ की गहराइयों को न समझ कर प्यार की अंधेरी दुनियाँ में झाँकने से असलियत छुप जाती है और रंगीन चश्मा आँखों पर चढ़ जाता है।

हरकली का त्याग वही रंगीन चश्मा था, जो उसने चतुरसिंह और अपनी माता की आँखों पर चढ़ा दिया था। इस रंगीन चश्मे में चतुरसिंह को त्याग की मूर्ति सती हरकली, जो विद्वान् भी थी, अपने परिवार को चलाने वाली एक सफल बालिका के रूप में दिखलाई दी। हरकली चतुर थी, पढ़ी-लिखी थी, वाकपटु थी, अपने छोटे भाइयों को दिल-जान से प्यार करती थी, विद्या में उसका मन था, अध्यापन-कार्य को वह अपने

जीवन का लक्ष्य चुन चुकी थी, वह हर प्रकार से योग्य थी, तो उसपर चतुरसिह आखिर भरोसा क्यों न करते। वह उनकी अपनी सबसे बड़ी और सबसे योग्य संतान थी। उसके अन्दर से उन्हें अपना रक्त बोलता हुआ सुनाई देता था, और वह ऐसा लगता था कि मानो हरकली नहीं बोल रही वह स्वयं ही बोल रहे हैं।

घर का प्रबन्ध हरकली के हाथों में था। खाना सब चौके में खाने वालों के लिए एकसा ही बनता था, परन्तु फुलके चुपड़ने में और दाल-शाक में घी डालने के अन्दर दो तरह का व्यवहार होता था। बच्चे इस दो तरह के व्यवहार को देखते और समझते थे। कुछ अधिक घी पा जाने वाले उसे अपना अधिकार समझते थे और कम पा जाने वालो मे अग्निदत्त के लड़के को कभी उसका ध्यान भी नहीं होता था। खेल-कूद और अपनी धुन में पढ़ने के अलावा उसके दिमाग़ में कभी कोई बात नहीं आती थी। अब वह अंग्रेजी की कक्षा पाँच मे पढ़ रहा था। अग्निदत्त का लड़का कभी-कभी झुंझला भी पड़ता था अपने मन-ही-मन इस दुर्भायत को देख कर, परन्तु अन्दर से यह समझ कर रह जाता था कि यह दुर्भायत करने वाले उसके ताऊ जी तथा ताई जी नहीं हैं, उनके बच्चे हैं, हरकली हैं, जिसके कि संकेत पर यह सब होता है।

इन विचारों की हल्की-हल्की रेखा सी कभी-कभी अग्निदत्त के लड़के के मस्तिष्क पर खिचती थी परन्तु वह पढ़ने-लिखने और खेलने-कूदने की रविश में तुरन्त ही बह जाती थी, खो जाती थी। हरकली ने अपने घरेलू प्रबन्ध के समय में रसोई के बढ़ते हुए खर्च को संभालने की कोशिश की। अपने भाई के साले के घी मे से कभी-कभी मौका पाकर उसकी आवश्यकता से अधिक घी निकाला और उसमें पूरे घर भर का साग छुंका और सब ने खाया। घर की अर्थ-व्यवस्था में हरकली का यह योग कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं था, परन्तु वह अपने मन से उस काम को करके अपनी चतुराई का प्रमाण प्रस्तुत करती थी। उसका यह काम हरकली की माता की नजरों के सामने होता था।

: ६ :

अपने जेठ जी के घर अग्निदत्त की स्त्री अपने बेटे के पास चार दिन

रहने आई थी। उसे प्यार से बुलाया गया था। जिठानी-देवरानी में काफ़ी स्नेह था। कभी किसी ने एक दूसरे के लिए कुछ नहीं कहा था। दोनों ही गाँव की रहने वाली थीं। अग्निदत्त की स्त्री भी बच्ची ही थी उनके सामने, क्योंकि वह उनकी हरकली से कुछ अधिक बड़ी नहीं थी उम्र में, परन्तु उसका बराबरी का दर्जा मानती थीं वह। प्यार भी करती थीं उसे। उसने उनके लड़के की बहू के गले में सोने की माला डाली थी, उनके पति का साथ दिया था। परिवार का कर्ज़ उतारने में कोई रुकावट नहीं डाली। परिवार की एक फ़रमाँबरदार बहू बनने का परिचय दिया था उसने। उनके दिल में इज्ज़त थी अग्निदत्त की स्त्री के लिए।

परन्तु हरकली की नज़रों में वह एक गँवार और मूर्ख स्त्री थी। परिवार के एक उस नाचीज़ इन्सान की स्त्री थी, कि जिसके बिना भी उसका पिता बिरादरी का नामी-गिरामी इन्सान था। उस पर कोई कर्ज़ नहीं था। उसने और जायदाद भी ख़रीद ली थी, ख़रीदी क्या थी, उसके चचा के लड़के ने अपनी सब जायदाद पर कर्ज़ कर लिया था और कर्ज़-दार उसका गला दबोच रहा था। चतुरसिंह ने उसकी ज़मीन अपने नाम करली और कर्ज़ सब मिल कर देते रहे। बच्चों के व्याह-शादियों के भार से भी वह मुक्त हो चुका था। ठसके की हेडमास्ट्री चल रही थी। साठ रुपया महीना ठसाके से घर में चला आता था, रक़म आजाती थी घर में। चाँदी के साठ रुपये। उतने रुपये कि जितने शायद उसके पास-पड़ौस के कई परिवार अपनी वर्ष भर की फ़सल को बेचने पर भी नहीं पाते थे। वे सब तुच्छ हो गये थे चतुरसिंह की नज़रों में और हरकली की नज़र तो उनके ऊपर से ऐसे तैर जाती थी जैसे कोई पतली नाटी तेज़ मछली पानी की ऊपर-ही-ऊपर की सतह पर दौड़ लगाती है।

यह नजर यहाँ तक ऊपर उठी कि गाँव के आदमियों को चतुरसिंह ने जानवरों की खोरटों पर लेजा कर बाँध दिया। और इसका बहुत निखरा हुआ रूप उस दिन सामने आया जब उसने अपनी ससुराल के दो

आदमियों को अपनी कोठी के सामने वाले बागीचे में, उनके म्ःब में, उनके आते ही न खड़े होने पर खाट पलट कर नीचे गिरा दिया गया था। चतुरसिंह बहुत ऊपर उठ चुके थे इस समय। गाँव के ये नाचीज इंसान मिट्टी के चन्द ढेले नजर आते थे उन्हें; जिनका दिमाग और तहज़ीब से कोई सम्बन्ध नहीं था।

परन्तु अग्निदत्त अभी भी उनका प्राण था और उसकी स्त्री उनके घर की एक योग्य बहू थी। वह पतली, दुबली छरहरी सी एक सुन्दर युवती थी। गढ़मुक्तेश्वर के मेले का समय था। मेरठ जिले में यह मेला भी अपनी शान का अकेला ही लगता है। गढ़मुक्तेश्वर, एक साधारण सा क़स्बा, परन्तु गंगा-किनारे बसा है। शरद्पूनों के पश्चात् कार्तिक मास में यह मेला लगता है। यों मेला देहाती ही होता है परन्तु बहुत बड़ा होता है। दूर-दूर के किसान अपनी फ़स्लें बोकर बैलगाड़ियों में हफ्ते भर का राशन और ईंधन लेकर तथा अपने परिवारों को गाड़ी में बिठला कर इस मेले में आते हैं। देहाती लोगों के इस्तेमाल का सामान लेकर अच्छे-अच्छे व्यापारी भी वहाँ पहुँचते हैं। बड़ा भारी बाजार लगता है और एक नया नगर बस जाता है कुछ दिन के लिए। जप-तप करने वालों के भी गहरे हो जाते हैं। कहते हैं पण्डित लोगों का तो साल भर का खर्च इसी मेले से निकल आता है।

चतुरसिंह इस प्रकार के मेलों में धार्मिक आस्था नहीं रखता था, परन्तु फिर भी वह जाता अवश्य था। एक तो वहाँ पर आर्य समाज का कैम्प लगता था, जिसके प्लेटफ़ार्म से आर्यसमाजी नेता लोगों को अंध-विश्वास के खिलाफ़ लैक्चर दिलाते थे और इस लैक्चर पिलाने का ठेका चतुरसिंह अपने पास समझता था। यहाँ आर्य समाज के ज़िले और कुछ प्रान्तीय तथा कुछ सार्वदेशिक नेता लोग भी पधारते थे। उनके बीच चतुर-सिंह की अच्छी गणना होने लगी थी। यह चतुरसिंह के मेले में खिचाव का एक कारण था और दूसरा कारण भी इससे कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। मेले का प्रबन्ध करने के लिए जहाँ पुलिस का वहाँ पर प्रबन्ध

रहता था वहाँ स्वयंसेवकों के दल भी एकत्रित होते थे । चतुरसिंह के मिडिलस्कूल का भी एक दस्ता वहाँ विद्यार्थी स्वयंसेवकों का गया हुआ था और उसका पृथक से कैम्प पड़ा था । इस प्रकार चतुरसिंह के पास आर्य समाजी मंडप में ठहरने के लिए प्रबन्ध था और स्वयं सेवकों के मण्डप में भी ।

चतुरसिंह अपने पूरे परिवार के साथ गढ़मुक्तेश्वर के मेले पर गया। अग्निदत्त की स्त्री तथा उसका लड़का भी साथ में थे। मोटर से सब लोग खुशी-खुशी गढ़मुक्तेश्वर पहुँचे । स्वयंसेवक-दल के नेताने, जो कि चतुरसिंह के अपने ही गाँव के थे और उनके नायबटीचर थे, हेडमास्टर साहब के परिवार के लिए एक तम्बू अलग से खाली कर दिया ।

हिन्दुत्व का जोश इस समय देश में फैल रहा था । आर्य समाज उसका नेतृत्व कर रही थी । सरकार भी इस जोश में कोई रुकावट डालना नहीं चाहती थी । दूसरी ओर से मुसलमानी जोश भी मुसलमानों में सरकार द्वारा इन्जेक्ट किया जाता था । अंग्रेजी सरकार की यह नीति रहती थी कि राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ होने से रोकने वाली इन दो ताक़तों को पृथक्-पृथक् जितना भी बल दिया जा सके, मौक़ा पाकर दिया जाये। जिससे समय, बे-समय ये अपने आप ही आपस में टकराकर कमजोर बनती रहें ।

इस वर्ष गढ़मुक्तेश्वर के मेले पर दूसरे ही दिन सरकार की इस नीति का प्रहार हुआ और मेले में पहुँचे हुए मुसलमान व्यापारियों का माल सरे आम, खुलेख़ज़ाने लुटने लगा । सुना है कि इस लूट की जड़ में चन्द मुसलमान गुण्डों द्वारा एक जाट की स्त्री को पिछली रात सिनेमा से भगा लेजाने की हरकत थी । उस जाटनी के गाँव और उसके आस-पास के गाँवों की मेले में एक सौ पच्चीस गाड़ियाँ आई हुई थीं और उन एक सौ पच्चीस गाड़ियों पर तीन सौ पिच्छत्तर लाठी-बन्द जवान थे । एक मामूली सिनेमा के मालिक लाला भोंदूराम के दस गुण्डे गेटकीपरों ने सिनेमा पर तैनात पुलिस के दस्ते को तीन बोतलें

देसी शराब और पच्चीस रुपये नक़द देकर यह काम किया था। इस हरकत ने उन तीन सौ पिच्छत्तर नौजवानों की लाठियों को आस्मान पर उठा दिया। आनन-फ़ानन में उन्होंने सिनेमा के मंडप को जलाकर खाक कर दिया और उन गुण्डों की गर्दनें पकड़-पकड़ कर उन्हें पवित्र गंगा माता की गहरी धारा में इस तरह उठाकर फेंक दिया कि मानों उन्हें इसका पूरा अधिकार था। इस समय क़ानून उनके हाथों में था, उनकी लाठियों में था।

इस घटना में ग़ज़ब यह हुआ कि लाला भोंदूराम के ये गेटकीपर सब-के-सब मुसलमान थे। फिर क्या था। इन जाटों के दिल की वह आग जो उन गुन्डों को गंगा की धारा में प्रवाहित करके और सिनेमा-घर को आग लगाके बुझ जानी चाहिये थी, देश भर में फैली हुई हिन्दू-मुसलमानी हवा का झौका पाकर एक दम दहक उठी। उसकी लपटें दूर-दूर तक गईं। मेले में आये हुए मुसलमान व्यापारियों की तो शामत ही आ गई।

मुसलमान पिटने लगे, उनका माल लुटने लगा और वह यहाँ से आगे बढ़ कर आस-पास के गाँवों तक भी पहुँची। जहाँ-जहाँ पहुँची वहाँ-वहाँ इसका असर हुआ। कई मुसलमानी गाँव जलाकर खाक़ कर दिये गये। छड़े जाटों के मेले में आये हुए लठबन्द हुजूम ने क़यामत वर्पा कर दी। पुलिस के इन्तज़ाम से बात बाहर निकल गई और फ़ौज को बुलाना पड़ा।

लूट की बात ज्यों ही चतुरसिंह के कानों में पड़ी, त्यों ही उनका दिल धुकड़-पुकड़ करने लगा। वह अपने और अपने छोटे भाई के सब बाल बच्चों को लेकर मेले में आये हुए थे। कहीं कोई बात हो गई तो परिवार-का-परिवार ही बरबाद हो जायेगा, यह भय उनके दिल को कचोटने लगा। उनके दिमाग़ ने काम नहीं दिया। यह ठीक था कि स्वयं सेवकों के कैम्प पर उनका अपना ही पहरा काफ़ी था और फिर पुलिस का भी बहुत बड़ा इन्तजाम था, परन्तु चतुरसिंह इस ख़तरे से

अपने परिवार को बाहर निकाल लेजाना चाहते थे । वह वहाँ नहीं रुके और पूरे परिवार को लेकर दूसरे ही दिन मोटर से मेरठ आ गये। उन्होंने घर आकर ही साँस ली।

हरकली को चतुरसिंह की यह जल्दबाजी पसंद नहीं आई। आखिर उनका परिवार क्या मलाई का लड्डू था जो उसे मुसलमान मुँह में रख जाते । अग्निदत्त की स्त्री को भी मेले से इस प्रकार भाग आना अच्छा नहीं लगा । वह मेला देखने के लिए गई थी, परन्तु जेठजी के सामने तो साँस लेते भी उसे भय लगता था । वह कह तो कुछ सकती ही नहीं थी।

हरकली की ज़बान से निकल गया, "अब फिर कभी हम लोग पिताजी के साथ किसी मेले में नहीं जायेंगे।"

अग्निदत्त की स्त्री ने भी सीधे स्वभाव हरकली की बात को 'पिताजी' के स्थान पर जेठजी लगाकर दुहरा दिया। उसका यह दुहराना था कि हरकली के दिल पर मानों इस गंवार चाची ने एक गहरी चोट कर दी । चतुरसिंह के बिरादरी के इतने बड़े आदमी के खिलाफ़ एक शब्द भी कहने का उस गंवार चाची को आखिर क्या अधिकार था । हरकली एक विद्वान् लड़की थी। वह अपने पिताजी के लिए कुछ कहने का अधिकार रखती थी, परन्तु वह अधिकार अग्निदत्त की स्त्री को प्राप्त नहीं था।

अग्निदत्त की स्त्री एक गंवारू गाँव की रहने वाली और बिना पढ़ी-लिखी अवश्य थी, परन्तु मान अपमान की तराजू उसके मस्तक में हमेशा लगी रहती थी। हरकली के मन को पढ़ने में उसे देर न लगी और दोनों में झगड़ा हो गया । अग्निदत्त की स्त्री ने प्रोटेस्ट के बतौर खाना छोड़ दिया ।

चतुरसिंह के पास इस हादसे की रिपोर्ट हरकली की माताजी द्वारा पहुँची, हरकली द्वारा पहुँची । चतुरसिंह की अपने नज़रें खत्म हो चुकी थीं, अपने कान मुंद चुके थे, अब हरकली ही उनकी आँखें थीं और वही

उनके कान ।

चतुरसिंह के लिए उनकी बात को ग़लत समझने का कोई कारण नहीं था । उन्हें अग्निदत्त की स्त्री की ग़लती पर क्रोध आया और अग्निदत्त को पत्र लिख दिया कि वह अपनी स्त्री को आकर ले जाये । चतुरसिंह ने अग्निदत्त की स्त्री से कोई बात पूछने या उसे अपनी बात कहने का मौक़ा देना आवश्यक नहीं समझा ।

अग्निदत्त की स्त्री ने तीन दिन तक अन्न-जल ग्रहण नहीं किया और चतुरसिंह का सारा परिवार दोनों समय खाना खाता रहा । हरकली कभी-कभी अपनी कुटिल सफलता पर घर के किसी एकांत कोने में जाकर मुस्कराती और हँसकर अपने से ही कहती, 'मूर्ख कहीं की । यह समझती है कि यह भी पिताजी के दिमाग़ में अपने पति की ही तरह जड़ें जमा लेगी । मुझे देखनी है इसकी जड़ें । इस घर में अब हरकली की ही जड़ें जमेंगी ।'

अग्निदत्त के पास चतुरसिंह का पत्र पहुँचा । वह पढ़ कर सन्न रह गया । समझ में नहीं आया कि उसकी स्त्री ने कौन-सा ऐसा बड़ा अपराध कर दिया है कि जिसके बाद उसकी सज़ा उसको अग्निदत्त द्वारा वहाँ से ले आने के अलावा और कुछ हो ही नहीं सकती थी ।

अग्निदत्तको छुट्टी न मिल सकी । उसने एक रेलवे के अपने विश्वास-पात्र मुलाज़िम को स्त्री का रेलवे-पास देकर लेने के लिए भेज दिया ।

अग्निदत्त की स्त्री तीन चार दिन की भूखी अपने पति के भेजे हुए आदमी के साथ जाने को तय्यार हो गई । उसने अपनी गाँठ-पुटलिया सँभाल ली । वह कटोरदान भी बाँध लिया जिसमें वह चतुरसिंह के बच्चों के लिए मिठाई लाई थी और जिसे हरकली ने ही बच्चों में तक़सीम किया था ।

जब अग्निदत्त की स्त्री चलने लगी तो उसके लड़के को भी पढ़ाई छुड़ा कर उसके साथ कर दिया गया । हेडमास्टर साहब की कोठी से, जिसके सामने बाग़ीचा था, और उसके सामने चार सौ लड़कों का स्कूल

लग रहा था, जिसमें बीस-पच्चीस टीचर पढ़ा रहे थे, इधर-उधर स्कूल के चपरासी घूम रहे थे, घर का नौकर भी इस दृश्य को देख रहा था, उनके छोटे भाई अग्निदत्त की स्त्री बिदा हो रही थी।

चतुरसिंह पूछते हैं कि अगर अग्निदत्त की स्त्री के पास पैसे हों तो वह उसके स्टेशन तक जाने के लिए तांगा मँगवा दें। तांगा मुश्किल से चार आने में जाता था।

अग्निदत्त की स्त्री ने साफ़ इंकार कर दिया। उसने स्पष्ट कह दिया कि उसके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। उसके पास एक दस रुपये का करारा नोट था जो अग्निदत्त ने चलते समय उसे दिया था। यहाँ से अग्निदत्त के पास तक पहुँचने के लिए रेलवे पास था। वह मजबूत थी अपने में परन्तु इमतहान लेना चाहती थी अपने पति के पिता-तुल्य बड़े भाई का कि वह अपने छोटे भाई की इज्जत को कहाँ तक संभालते हैं।

चतुरसिंह के क्रोध का ठिकाना नहीं था यह उत्तर सुनकर। हरकली उन्हें सूचना दे चुकी थी कि उसके पास दस रुपये का नोट है और वह तांगा-किराया भी उन्हीं से खर्च कराना चाहती है। यह उनकी नजरों में अग्निदत्त की स्त्री की खुदगर्जी की एक जबरदस्त बात लाकर हरकली ने पेश की। चतुरसिंह की नजरों से अग्निदत्त की स्त्री गिर गई और उन्होंने स्पष्ट उत्तर दे दिया, "अगर तांगे के लिए रुपया नहीं है तो पैदल चले जाओ।"

जेठ के घर से पैदल जाना अग्निदत्त की स्त्री ने मंजूर किया। अपने फूलवा से लड़के को साथ कर लिया। सामान अग्निदत्त के पास से आये हुए मुलाजिम ने सिर पर रख दिया और वह घर की देहलीज से बाहर हो गई।

यह चतुरसिंह के परिवार की वह लक्ष्मी पैदल तीन मील दूर स्टेशन पर जाने के लिए तय्यार खड़ी थी जिसे एक दिन आठ कहारों की पीनस में बिठलाकर चतुरसिंह अपने छोटे भाई के साथ व्याह कर लाये थे। चतुरसिंह इसकी शादी में शानदार पढ़ी-लिखी बारात लेकर गये थे और

जो सिक्का अपने बड़प्पन का उस गाँव तथा गिर्देनव के इलाक़े पर बिठलाया था, वह भी अग्निदत्त की स्त्री की आँखों के सामने था। एक दिन उसके दिल में, उस छोटे से गाँव के एक कच्चे घर में विवाह के लिए उबटन मली बैठे हुए, जब यह आवाज पड़ी थी कि उसकी बारात गाँव के सिवाने में आगई, जिसमें रथों और घोड़ियों की गिनती नहीं थी, तो उसका दिल गुदगुदाया था। वैसी बारात उस गाँव में पहिले कभी नहीं चढ़ी थी, यह गाँव के हर आदमी, हर बच्चे, बूढ़े और छोटी जाति वालों ने कहा था। फेरों के समय उसने अपने घूँघट के ओढ़ने के सूराखों के बीच से अपनी तेज़ और नौज़वान नज़र को फैलाकर अपने जेठजी चौधरी चतुरसिंह की दाढ़ी देखी थी और उनका बड़प्पन देखा था।

परन्तु इस समय चतुरसिंह का वह बड़प्पन अग्निदत्त की स्त्री की नज़रों में खाक के एक कण के समान था। उसकी अपनी नज़रों से चतुरसिंह खुदग़र्ज हो चुका था, अपनी लड़की के कहने पर चलने लगा था, नाइंसाफ़ हो गया था।

अग्निदत्त की स्त्री घर की चौखट से बाहर हुई तो उसे सामने स्कूल दिखलाई दिया, जो एकदम शान्त था। घण्टी बज चुकी थी और विद्यार्थी अपनी-अपनी क्लासों में जा चुके थे। क्लास-टीचर लोग अपनी-अपनी क्लास की हाज़री ले रहे थे। चतुरसिंह इस फ़िराक़ में था कि यह स्त्री जिसने तीन-चार दिन से उसके मस्तिष्क को खराब किया हुआ है अपना काला मुँह करे तो वह अपने काम से लगें, अपनी क्लास की जाकर हाज़री बोलें। इसी की खातिर तो वह इस समय अपनी नौकरी के फ़र्ज से चोरी कर रहे थे। यहाँ का देर लगना उनको खटक रहा था।

अग्निदत्त की स्त्री ने सोचा था कि वह जेठजी की इज्ज़त को सब रास्ते में मिलने वालों के सामने पेश करती हुई स्कूल के बिलकुल बराबर से आगे बढ़ेगी परन्तु चौखट से बाहर निकलते ही उसे खयाल आया कि नहीं, चतुरसिंह की इज्ज़त केवल उनकी अपनी इज्ज़त भर नहीं है, यह

उनके अपने परिवार की इज्जत है। यह वह इज्जत है जिसकी रक्षा के लिए उसने रूखा-सूखा खाया है और मोटा-झोटा पहिना है। वह स्कूल के दरवाजे की ओर नहीं बढ़ी। बांई ओर फुलवारी के पास लगने वाली सड़क पार करके चारदीवारी पर चढ़कर उतर गई। और पैदल-पैदल चार दिन की भूखी स्टेशन के तीन मील लम्बे रास्ते पर, अपने बच्चे को साथ लेकर, अग्निदत्त के भेजे हुए रेलवे के मुलाजिम के साथ चल पड़ी। वह भूखी थी, उसके पैर लड़खड़ा रहे थे, और एक मीठी-मीठी जलन सी कभी-कभी उसके दिल में उठने लगती थी। कभी-कभी आँखों मे आँसू भी उमड़ आते थे परन्तु उन्हें अन्दर-ही अन्दर घोंट कर पी जाना उसे आता था। वह मौन थी और मन के गुबार को मन में ही लिए आगे बढ़ रही थी। उसने इस परिवार में आकर आज तक जो कुछ भी उसकी मर्यादा को क़ायम रखने लिए त्याग किया था वह सब एक स्वप्न के समान उसकी आँखों की पुतलियों में नाच रहा था और सब के बाद सामने आकर खड़ी हो जाती थी उस लम्बी दाढ़ी वाले चतुरसिंह मदारी की शक्ल जो इस परिवार के बन्दर और बँदरियों को हाथ में डुगडुगी लेकर नचा रहा था।

उसे रह-रह कर क्रोध आ रहा था अग्निदत्त की सादगी पर। उसका मन कहता था, 'क्या मट्टी का माधो पति मिला है उसे कि बड़े भाई की हाँ-में-हाँ मिलाने के अलावा कुछ जानता ही नहीं। ऐसा भी क्या मर्द जो अपनी औरत की इज्जत और बेइज्जती को भी न समझ सके।'

: १० :

अग्निदत्त स्टेशन पर अपनी स्त्री को लेने गया। रात्रि के आठ बजकर पैंतीस मिनट पर गाड़ी आती थी। ठीक समय पर गाड़ी आई और उन्होंने देखा कि रेल के डिब्बे से न केवल उनका मुलाजिम और पत्नी ही उतरे वरन् उनका लड़का भी साथ में था।

लड़के को देखकर अग्निदत्त का माथा ठनका। समझ गये कि अवश्य कुछ न कुछ काण्ड रचकर आई है उनकी स्त्री। बात कुछ गहरी

ही है कि जो बड़े भाई साहब ने बच्चे को भी इसके साथ कर दिया।

पास में सामान कुछ था ही नहीं। मुलाज़िम ने बच्चे को गोद में उठा लिया और तीनों रेल की लाइनें पार कर रेलवे क्वार्टरों की ओर बढ़लिए। क्वार्टर तक एक शब्द भी कोई नहीं बोला। मानो तीन काठ के गढ़े हुए पुतले आगे पीछे बढ़ते चले जा रहे थे।

अग्निदत्त ने आगे बढ़कर क्वार्टरों का ताला खोला। शायद स्त्री के जाने के पश्चात् आज ही अग्निदत्त ने क्वार्टर में झाड़ू लगवाई थी। सभी चीज़ों पर गर्द जमा हुआ था। फर्श पर भी पैर किरकिराते थे। परन्तु इन सब चीजों पर किसी का ध्यान नहीं गया।

दोनों ही यह सोच रहे थे कि आखिर यह मौन कैसे टूटे। मौन को तोड़ने में उनके लड़के ने योग दिया। वह बोला, "भूख लगी है बीबी।"

बच्चे की यह बात सुनकर अग्निदत्त की स्त्री की आँखों से आँसू बरस पड़े। अग्निदत्त से भी देखा नहीं गया। उसने बाहर से क्वार्टर का दरवाज़ा बन्द करके लम्प की बत्ती ऊँची करदी और डोली में से दो केले निकाल कर लड़के के हाथों में देते हुए स्त्री की तरफ मुख़ातिब होकर कहा, "कपड़े बदल लो। इस तरह रोने से क्या लाभ है? लड़के की पढ़ाई का नुक़सान करके इसे भी साथ ले आईं, यह अच्छा नहीं किया तुमने। मैं जानता हूँ वहाँ हरकली से कुछ कहा सुनी हो गई होगी।"

परन्तु अग्निदत्त की स्त्री के दिल का गुब्बार इन शब्दों से भला कहाँ शान्ति होने वाला था। उल्टी और प्रज्वलित हो उठी क्रोध की ज्वाला। मानो अग्निदत्त ने जलती आग में घी की आहूति डाल दी हो, उसे और तेज़ कर दिया। इतने पर भी वह बोला नहीं एक शब्द। उसके अन्दर अग्तिदत्त ने झांक कर देखा कि आग धक-धक करके जल रही थी। वह मौन थी और अब रोना भी बन्द हो चुका था। उसे लगा कि उसका पति उसके सिर पर से गुज़रने वाले इस तूफ़ान को

इतनी आसानी से उड़ा देना चाहता है। उसका कितना बड़ा अपमान हुआ, इसका उसे लेश मात्र भी ध्यान नहीं। क्या यह अपमान अग्निदत्त की स्त्री का ही है, अग्निदत्त का नहीं? उसके दिमाग़ में एक झुंझलाहट पैदा हो रही थी। उसे लग रहा था कि उसका पति उसके साथ सहानुभूति प्रकट न करके घोर अन्याय कर रहा है, अपने भाई की क्रूरता के नीचे दबकर असलियत को समझने की कोशिश नहीं कर रहा है। वह कुछ बोली नहीं, फिर भी अग्निदत्त को अब अपने विचारों के हल्केपन पर कुछ शर्म सी महसूस हुई और उसने प्यार का सहारा लेकर उसे धीरे से अंक मे भरते हुए कहा, "क्या भाई साहब ने खुद ही बच्चे को ले जाने के लिये कहा?"

यह फुसलाहट का प्यार अग्निदत्त की स्त्री को अच्छा नहीं लगा। वह पति से हट कर दूर हो गई और फिर एक भी शब्द नहीं बोली, केवल रोती ही रही। उसमें शायद साहस भी नहीं था चतुरसिंह के खिलाफ़ एक शब्द कहने का। वह अपने पति की भाई-गुलामी से पूरी तरह खिन्न थी। परन्तु उसका अपना मस्तिष्क उस गुलामी से उकता चुका था।

अग्निदत्त को बड़े भाई साहब के इस व्यवहार से थोड़ी-सी ठेस लगी। अपनी स्त्री का इस प्रकार आना उसे इतना बुरा नहीं लगा जितना बुरा कि उसके साथ लड़के को इस प्रकार भेज देना उन्हें बुरा लगा। बच्चे की तालीम का भी उन्होंने ख़्याल नहीं किया। यदि कोई क़सूर ही हुआ था तो वह अग्निदत्त की स्त्री से हुआ था, उसके बच्चे ने तो कोई क़सूर नहीं किया होगा।

कई दिन तक अग्निदत्त और उसकी स्त्री में इस बात को लेकर बहस हुई कि क्या बच्चे को लेकर फिर बड़े भाई साहब की ही शरण में जाया जाय। या उसे अपने पास ही रखकर तालीम दी जाय। अग्निदत्त की स्त्री एक से लाख तक अपने बच्चे को मुंशी चतुरसिंह के पास भेजना नहीं चाहती थी, परन्तु अग्निदत्त ने बच्चे की पढ़ाई को

ध्यान में रखते हुए और यह सोचते हुए कि रेलवे की नौकरी में जल्दी-जल्दी तबादले हो जाते हैं, कोई पढ़ाई का वातावरण नहीं होता, उसका लड़का तालीम नहीं पा सकेगा, इसलिए यही मुनासिब समझा कि वह लड़के को लेकर फिर बड़े भाई साहब के ही पास जाये और मालूम करे कि उन्होंने ऐसा क्यों किया ? उनके विचारों की इस तबदीली को वह निकट से देखना चाहता था। साथ ही डरता भी था वह उनसे।

ऐसा ही हुआ। अग्निदत्त बच्चे को लेकर मेरठ पहुँचा; परन्तु वह सीधा अपने भाई साहब के मकान पर नहीं गया। चतुरसिंह के पास उनके ही गाँव के एक नायब टीचर काम करते थे। उनके मकान पर वह पहुँचा, और उन्हें साथ लेकर चतुरसिंह से मिला। चतुरसिंह के सामने जाकर अग्निदत्त एक शब्द भी नहीं बोल सका। पीछे क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, मानो वह सब कुछ हुआ ही नहीं। दोनों भाइयों के दिलों की स्लेटें बिलकुल साफ़ थीं, उनके ऊपर से पुराने प्रश्न मिट चुके थे, पुरानी रेखायें खत्म हो चुकी थीं। आमने-सामने होते ही दोनों उसी प्यार और मुहब्बत से मिले कि जिस प्रकार पहले मिला करते थे। पिछली घटना के विषय में कोई बात ही नहीं हुई।

चतुरसिंह ने अग्निदत्त के लड़के को प्यार से उठाकर छाती से लगाया और अपने बच्चों के बीच छोड़ दिया। सचमुच ही चतुर-सिंह के छोटे लड़के को अग्निदत्त के लड़के के आजाने से बहुत खुशी हुई। उसका वह हमजोली था, साथी था, साथ-साथ खेलता था, साथ-साथ स्कूल जाता था और उसके चले जाने से वह अकेला रह गया था। परन्तु हरकली, जो एक किवाड़ की बगल में खड़ी यह सब काण्ड देख रही थी, मन-ही-मन जल-भुन कर राख हो गई। एक डोर जिसे वह अपने पैने दाँतों से काट चुकी थी, अब फिर दो भाइयों के प्रेम में बँधकर एक हो जाना चाहती थी। उस डोर में बँधकर चलना हरकली को पसंद नहीं था। वह तो अपनी डोर को सब के सिर पर घुमाने का ख्वाब देख रही थी। उसे इस पुरानी पीढ़ी की चाल-ढाल

से नफ़रत हो चुकी थी, वह इसे समाप्त कर देना चाहती थी। उसके ख़याल से उसके पिताजी का दिमाग़ ख़राब होचुका था। छोटे भाइयों के बच्चों-कच्चों के बीच बेकार के लिये वह अपने को फँसाकर अपने निजी परिवार की उन्नति में बाधक बन रहे थे। उन्हें अब चाहिए था कि वह सब की डोर काट कर केवल अपने ही परिवार के रस्से को मज़बूती के साथ बल दें। उस रस्से पर उनके अपने ही बाल बच्चे मौज की पींगें बढ़ायें और बिरादरी तथा आस-पास के बड़े-बड़े लोग यह देखें कि यह चौधरी चतुरसिंह का परिवार है। चतुरसिंह को अब केवल अपने ही परिवार की फ़िटन पर सवार होना चाहिए और इस सारे परिवार के कूड़े-करकट की गाड़ी की बहल-वानी से इस्तीफ़ा दे देना चाहिए। खानदान भर के दर्द और उसकी समस्याओं को अपने दिल और दिमाग़ में लेकर चलना हरकली की दृष्टि में उनकी नादानी थी। हरकली की नजरों में अब चौधरी आभाराम का परिवार ख़त्म हो चुका था, यह था चौधरी चतुरसिंह का परिवार। उसके विचार से शक्तिसिंह और अग्निदत्त के बाल-बच्चे चतुरसिंह पर व्यर्थ भार थे और इसीलिए उन्हें अब अपना सम्बन्ध उनसे विच्छेद कर देना चाहिये। उन सबसे अपने को नत्थी करके चलना कोई अक्ल की बात नहीं थी, व्यर्थ की दिमाग़पच्ची थी, हल्की भावना मात्र थी।

परन्तु यह दशा चतुरसिंह के मस्तिष्क की नहीं थी। वह अपने छोटे भाई अग्निदत्त को भुलाकर नहीं चल सकता था। उसे पता था कि उसने इस परिवार को कठिन समय में कितना बड़ा योग दिया था? अग्निदत्त का वह योग चतुरसिंह की नजरों में किसी प्रकार कम कर देना हरकली की शक्ति से बाहर की बात थी। हरकली की सभी चालें, जो उसने चतुरसिंह के दिमाग़ से अग्निदत्त को निकाल फेंकने की कीं, अग्निदत्त के सामने आते ही बेसूद हो जाती थीं। उसके अन्दर कुढ़न थी इसी बात को लेकर।

हरकली के अन्दर भीतर-ही-भीतर एक घुटन पैदा होती जा रही

थी। अग्निदत्त के लड़के का इस प्रकार वापस आ जाना और अपने छोटे भाई के साथ उसका प्यार से स्कूल जाना, खेलना-कूदना तथा चतुरसिंह का उससे प्यार से बोलना उसके दिल में काँटे की तरह चुभता था। वह बरदाश्त नहीं कर सकती थी अपने परिवार की इस चाल-ढाल को। वह महसूस कर रही थी कि उसके पिताजी बहुत सख्त बेवकूफी कर रहे हैं। उनका यह पुराना चलन हरकली की प्रगतिशील नजरों में हेय होता जा रहा था। अग्निदत्त ने अपने लड़के का खर्च भी चतुरसिंह के सिर मढ़ कर जिस चालाकी का सबूत दिया था उसे इस परिवार भर में केवल हरकली की ही अक्ल पहिचान सकती थी।

हरकली के मन में अपनी चाची के प्रति पहिले से ही घृणा पैदा हो चुकी थी। इसी बीच उसके भाई का गौना होकर आया और गौने में न केवल बहू ही आई वरन् दान-दहेज से भी चतुरसिंह का घर भर गया। रजाई, बिछौने, तीयलें और न-जाने क्या-क्या सामान था? इस सामान को देख कर न केवल हरकली की माँ की ही आँखें फटी रह गईं वरन् हरकली भी फूल कर गुमान में कुप्पा हो गई। चतुरसिंह की नजर जब इस लम्बी-चौड़ी दान-दहेज पर फैली तो उसने भी गर्व का अनुभव किया और महसूस किया कि वह कितना बड़ा आदमी बन गया है। शक्तिसिंह के लड़के की दहेज भी उसने देखी थी, परन्तु उसमें और इसमें आकाश पाताल का अन्तर था। यह सब ठाट-बाट रईसाना था और वह एक मामूली किसानू लेन-देन था। इसका-उसका मुकाबिला ही क्या। वह एक किसान के बेटे की दहेज थी और यह एक हेडमास्टर के बेटे की। वहाँ भी समधी एक मामूली किसान ही था और यहाँ भी समधी एक उनकी अपनी ही टक्कर का हेडमास्टर था।

दान-दहेज आई और समेट कर चतुरसिंह के घर में भर ली गई। न तो शक्तिसिंह के ही हिस्से के कपड़े उनके पास पहुँचाने की चतुरसिंह ने आवश्यकता समझी और न अग्निदत्त के ही। बात कपड़ों की उतनी नहीं थी जितनी भाइयों के मान सम्मान की थी। इस बात को शक्ति-

सिंह और अग्निदत्त दोनों ने ही महसूस किया। शक्तिसिंह तो इस बात को ज़बान पर भी ले आये परन्तु अग्निदत्त ने कभी ज़बान पर लाना भी मुनासिब नहीं समझा। चतुरसिंह के इस व्यवहार ने अग्निदत्त का दिल खट्टा अवश्य कर दिया और उसने उसी दिन से यह महसूस करना शुरू कर दिया कि अब उसके बड़े भाई साहब, वह पुराने वाले बड़े भाई साहब नहीं रह गये हैं कि जिन्होंने सोने की दोनों चीजें उनके हाथों में देकर यह कह दिया था, "अग्नी, जिनके लिए तुमने इन्हें बनवाया है उन्हें ही दे दो।"

एक ओर जहाँ ये घटनाएँ घट रही थीं वहाँ दूसरी ओर चौधरी शक्तिसिंह का स्वास्थ्य उनका साथ छोड़ता जा रहा था। अग्निदत्त के पास भटिंडा से लौटने पर वह जितने दिन भी सरावे में रहे उनका स्वास्थ्य बराबर बिगड़ा ही, उसमें कोई सुधार न हो सका। एक तो वहाँ कोई उनकी देख-भाल करने वाला नहीं था। उनकी बहन थी अकेली, और रुपये-पैसे की भी उनके पास तंगी ही थी। चतुरसिंह को शक्तिसिंह की इस बीमारी का पता था, परन्तु उन्हें इस ओर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। हरकली चतुरसिंह के भाइयों की चालों को उनके सामने स्पष्ट रूप से ख़ोल-खोल कर रखने के लिए वहाँ मौजूद थी। शक्ति-सिंह का लड़का पुलिस में दीवान था। अच्छी-ख़ासी आमदनी वह कर रहा था। फिर शक्तिसिंह की बीमारी में चतुरसिंह रुपया ख़र्च करे, उसकी देख-भाल के लिए परेशान हो, इसकी कहाँ आवश्यकता थी ? इस दिशा में चतुरसिंह का चिन्ता करना व्यर्थ था। यह शक्तिसिंह की चाल थी कि वह रामप्रकाश से अपना इलाज न कराके मुंशी चतुरसिंह का ही मुँह ताकता रहता था।

हरकली का तर्क काफ़ी मज़बूत था। उसके सामने चतुरसिंह जैसे नामी अक्ल के आचार्य की गर्दन झुक गई। मन में कई बार यह आने पर भी कि वह शक्तिसिंह का इलाज करायें, न करा सके। उनके सामने अपने बाल-बच्चों के हक़ूकों का सवाल था। उनके हक का पैसा

वह भाई की बीमारी में खर्च करें, इसका उन्हें कोई अधिकार नहीं था। चतुरसिंह ने अपने को हर दिशा से धर्म-संकट में घिरा हुआ पाया। वह मजबूर थे। अपने बच्चों की हक़तल्लफ़ी करके वह भाई का इलाज नहीं करा सकते थे। चतुरसिंह के परिवार की निगहबानी का भार अब क़रीब-क़रीब हरकली ने अपने कंधों पर ले लिया था। उसकी राय के सामने चतुरसिंह को भी नतमस्तक हो जाना पड़ता था, क्योंकि उसकी बातें तर्क से शून्य नहीं होती थीं और चतुरसिंह एक आर्यसमाजी होने के नाते तर्क और न्याय के क़ायल थे।

धीरे-धीरे एक दिन शक्तिसिंह के प्राणों पर ही आ बनी। वह बिलकुल ही अशक्त हो गये। उनकी ऐसी रुग्णावस्था में उनकी स्त्री भी उनके पास नहीं थी। वह यहाँ से पाँच कोस दूर बैठी अपने पिता की सेवा कर रही थी, पिता की सम्पत्ति पर छाती टिकाये बैठी थी। उसे भी शक्तिसिंह के इस संकट का कुछ ज्ञान नहीं था और यदि होता भी तो वह औरत जात बेचारी कर भी क्या सकती थी। वह इलाज नहीं करा सकती थी और मरने वाले को रोकने की ताक़त भी उसके अन्दर भगवान् ने नहीं दी थी।

आखिर शक्तिसिंह एक दिन अपने बेटे के ही पास, जहाँ वह मुलाज़िम था, चला गया। अग्निदत्त के पास इतनी दूर जाते भी उसे भय लगा। रामप्रकाश की आँखों में अपने पिता की यह दशा देख कर आंसू उमड़ आये और उसने उनके जीवन के अंतिम दिनों में जो कुछ भी वह कर सकता था, सभी कुछ किया। परन्तु वह शक्तिसिंह को न बचा सका। लाख इलाज किया, सब बेसूद रहा। शरीर रोग ने खा लिया था। एक दिन वह आ ही गया जब शक्तिसिंह के प्राण पखेरू उड़ गये और उसके दो लड़के, एक लड़की और स्त्री बिलकुल निराधार, ऊपर आकाश और नीचे पृथ्वी के बीच, बैठे रह गये। इन प्राणियों के इस समय संसार में केवल दो ही सहारे थे, एक रामप्रकाश, जो पुलिस में दीवान था, और दूसरा शक्तिसिंह के ससुर, शक्तिसिंह की स्त्री जिनकी अकेली

संतान थी।

अग्निदत्त और चतुरसिंह को रामप्रकाश ने अपने पिता के मरने की सूचना दी। दोनों भाई अपनी स्त्रियों सहित इस शोक-समाचार को पा कर आँसू बहाने के लिए वहाँ पहुँचे। शक्तिसिंह इस संसार से जा चुका था और उसके पश्चात् यह लोकाचार की प्रथा भी समाप्त हो गई। दो-चार दिन की ग़मी के बाद सब लोग अपने-अपने काम से लग गये और कुछ भूल-से गये कि इस बड़े परिवार का एक बड़ा टहना टूट कर ज़मीन पर गिर पड़ा है। वह टहना सूख गया, समाप्त हो गया, परन्तु उसकी दो शखाएँ अभी जीवित हैं। उनमें प्राण है और शक्ति भी है आगे बढ़ने की।

: ११ :

हरकली जब ऊपरी कतरब्यौंत में सफल न होसकी तो उसने अपनी पीढ़ी पर कन्ट्रोल जमाना प्रारम्भ किया। उसकी पीढ़ी के उसके परिवार, यानी चतुरसिंह के बाल-बच्चों में केवल उसके दो भाई, एक वह स्वयं और एक छोटी बहिन थी। अग्निदत्त का लड़का भी इन सभी के बीच में रहता था, परन्तु वह हरकली की दृष्टि में एक बाहर का प्राणी था, जिसका इस परिवार में रहने और खाने के पश्चात् भी उसकी मन्त्रणाओं में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं था।

अग्निदत्त का लड़का और हरकली का छोटा भाई सातवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। हरकली का बड़ा भाई दसवीं कक्षा में था। हरकली की छोटी बहिन आर्य कन्या पाठशाला में पढ़ने जाती थी और स्वयं हरकली का भी अध्ययन चल रहा था। वह विवाह से पूर्व ही दर्जा चार पास कर चुकी थी और वैधव्य ने तो मानो उसकी समस्त शक्तियों को पढ़ने और चतुरसिंह के परिवार की देख-भाल और उसके संरक्षण की दिशा में ही मोड़ दिया था। उसके जीवन के अब ये ही दो लक्ष्य थे। दिमाग़ हरकली का कुछ ख़ास अच्छा नहीं था लेकिन उसने अपने पिताजी से सुना था :

गर पत्थर पै पानी पड़े मुत्तसिल ।
तो वह घिस जायेगी पत्थर की सिल ।।

इन पंक्तियों ने हरकली के दिल और दिमाग़ को उत्साह से भर दिया था। अपने पिताजी का हेडमास्ट्री का करिश्मा वह देख रही थी। वही लक्ष उसके भी सामने था। उसने एक बार आरामतलबी में जंग खाये हुए अपने दिमाग़ को फिर से किताबों की सान पर रगड़ना शुरू कर दिया और जहाँ कहीं कोई बात दिमाग़ से समझ में न आई, वहाँ उसे रट कर हिफ़्ज़ याद कर लेने से ही काम चलाया। इम्तहानों में जो उत्तर लिखे जाते हैं उन्हें लिखना भर विद्यार्थी के लिए ज़रूरी होता है, समझना नहीं, यह राज़ हरकली से छिपा हुआ नहीं था।

हरकली का बड़ा भाई इस समय इस परिवार का सब से ज्याद पढ़ा-लिखा इंसान था। वह अंग्रेज़ी की दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था। उसके इरादे भी बहुत बुलन्द थे। कभी वह किसी ऊँचे दर्जे की नौकरी, यानी दारोग़ाई की बात सोचता था तो कभी उस नौकरी के विचार को मन-ही-मन ग़ुलामी कहकर ठुकरा देता था। उसका चचेरा भाई रामप्रकाश पुलिस का दीवान था, ना चीज था वह उसकी नज़रों में। उसका चचा रेल का क्लर्क था, हक़ीक था उसकी दृष्टि में, उसका पिता मिडिल-स्कूल का हेडमास्टर था, सो वह भी कुछ ख़ास चीज़ नहीं थी इतने तालीमयाफ़्ता लड़के के लिए।

वह व्यापार करना चाहता था। क़द का नाटा ही था। लेकिन ख़यालातों की बुलन्दी उसमें ग़ज़ब की थी। अपने मन से वह पहलवान था, लठबाज़ था, बिन्नौट के हाथ और पैंतरों में भी वह माहिर था, विद्वान् था, क्या नहीं था वह? वह जहाँ भी रहता था अपना रौब क़ायम करके रहता था। स्कूल में जिस दिन वह भर्ती हुआ था उसी दिन उसके हिन्दी के अध्यापक महोदय ने उसके गाल पर एक तमाचा रसीद किया था। बस, वह तमाचे का लगना था कि वह उसी दिन से अध्यापकों का विद्रोही हो गया था। अपने इस विद्रोह के कितने ही क़िस्से वह

जब स्वयं अपनी ज़बान से सुनाता है तो बस लुत्फ़ आजाता है। उसका दावा है कि उसके स्कूल का कोई भी अध्यापक, जिसने उसकी ओर आँखें निकालीं, ऐसा नहीं बचा जिसकी उसने ठुकाई की या कराई न हो। वह स्कूल की हाकी-टीम का केप्टिन भी रहा है और उसका एक बार हेडमास्टर महोदय ने किसी अध्यापक को पीटने के अपराध में रस्टीकेशन भी कर दिया है। ये सभी उसके गुण थे। लेकिन उसका दिलेरी, बहादुरी, चतुराई, विद्वता और दानिशमन्दी दिखलाने का दायरा अधिकतर उनके अपने परिवार की चहार दीवारी के अन्दर ही सीमित रहता था। बाहर न निकल सका। इसका वार घरके आदमियों पर ही चलता था और वेही बेचारे इसके शिकार बनते थ।

शक्तिसिंह के मरने के पश्चात् सरावे की जमीन लावारिस होगई। यह अवसर हरकली ने अच्छा देखा और भाई ज्ञानव्रत को सलाह दी कि वह जाकर जमीन पर क़ब्ज़ा कर ले। बड़ी बहिन की आज्ञा सिर-माथे पर रखकर ज्ञानव्रत ने सरावे को प्रस्थान किया और बन्द पड़े मकान का ताला खोल कर पहिले उसी पर दख़ल लिया, कब्ज़ा किया। इस ख़ाली पड़े मकान के अन्दर निर्विरोध घुस कर ज्ञानव्रत ने अपने दोनों भुजदण्डों की तरफ़ गर्व के साथ देखा। उसका हृदय उमंग से भर गया कि उसकी शक्ति के सामने यहाँ कोई भी उसका विरोध करने वाला नहीं था। उसे ख़याल था कि शायद कहीं किसी कोने मे शक्तिसिंह की भूतात्मा छिपी न बैठी हो; परन्तु वह उसे वहां नहीं मिली। वह निर्विरोध घर के हर कोने में झांकता फिरा, लेकिन किसी ने सामने पड़कर उसे रोकने का साहस नहीं किया।

इसी बीच मुन्शी चतुरसिंह का मेरठ से तबादला हो गया। यह घटना हरकली के कार्यक्रम पर तुषारापात की तरह आई। तबादला होना था कि मानो पूरे परिवार के तार-तार छिन्न-भिन्न हो गये। पूरा परिवार एक जगह मेरठ जैसे बड़े शहर में मुफ्त की कोठी के अन्दर रह कर ऐश कर रहा था। तालीम चल रही थी। बच्चों की पढ़ाई का प्रश्न

सब से पहिले सामने था। हरकली ने परिस्थिति की गम्भीरता पर विचार किया। मुफ्त का मकान छिना और फिर परिवार दो जगह बँट गया। खर्च भी दूना हो गया। उसने तुरन्त पिताजी को सलाह दी, "आप अग्निदत्त चाचाजी को बुलाइये और यह समस्या उनके सामने रखिये। बच्चों की पढ़ाई का एक अहम प्रश्न है। उसके खर्च का भार अब कौन सिर पर ले। बच्चों ने यहीं रहकर तालीम पाई तो उनका खर्च चौगुना हो जायेगा। मेरे विचार से तो यह बच्चों का खर्च अब आपको और चाचाजी को आधा-आधा संभालना चाहिए। अकेले आप पर ही यदि यह पड़ा तो हमारे इतने बड़े परिवार का खर्चा कैसे चलेगा ? चाचाजी को इसमें, मैं समझती हूँ, कोई ऐतराज नहीं होना चाहिए।"

यह बात चतुरसिंह की अक्ल से भी न्याय संगत ठहरी। अग्निदत्त का एक लड़का और इनके चार बच्चे तालीम पावेंगे। लेकिन खर्च दोनों आधा-आधा ही दें, क्योंकि परिवार अभी तक मुश्तर्का था। उसे चलाने की जिम्मेदारी जितनी उन पर थी उससे किसी प्रकार भी कम अग्निदत्त पर नहीं थी। जहाँ जिम्मेदारी का प्रश्न आता था वहाँ चतुरसिंह और हरकली की विचार धारा मुश्तर्का ही चलती थी।

अग्निदत्त आया और उसके सामने यह समस्या चतुरसिंह ने रखी, "अग्निदत्त ! परमात्मा हम लोगों की परीक्षा ले रहा है। अच्छे-खासे बैठे-बिठाये और कुछ नहीं तो हमारा तबादला ही हो गया। लेकिन जो सिर पर आई है, उसे तो साहस के साथ सहन करना ही है। मैं चाहता हूँ कि बच्चे यहीं रह कर पढ़ें। जो खर्च होगा उसका आधा मैं दे दिया करूँगा और आधा तुम दे देना।"

"जैसी आपकी आज्ञा।" अग्निदत्त ने दो शब्दों में उत्तर दिया। बात तै हो गई।

हरकली ने एकांत में जाकर अपनी अक्ल की स्वयं ही मुक्त कंठ और मुक्त हृदय से सराहना की। उसने अपनी समझ से आज अग्निदत्त चचा

को उल्लू बनाया और अपने भाई-बहिनों का आधा ख़र्चा उसके कन्धों पर लाद कर सन्तोष की सांस ली। उसका दिल ख़ुशी में फूल कर अपने अन्दर-ही-अन्दर कह रहा था, "चचा! यह हरकली का हुक्म है, चतुरसिंह का नहीं। अभी नहीं समझ सकोगे तुम इसे। लेकिन वह दिन दूर नहीं है जब सब कुछ समझ सकोगे तुम।"

मेरठ शहर में एक छोटा-सा मकान ले लिया गया। छै रुपये महावार का मकान और वह भी केवल आधा ही था हरकली के पास; लेकिन दिमाग़ में मिडिल स्कूल के हेडमास्टर की कोठी घुसी हुई थी। वह कोठी, जिसके चारों ओर ख़ुशबूदार फूलों का बग़ीचा था और शुद्ध हवा चारों ओर बहती थी; जहाँ बेला, चमेली और गुलाब महकते थे। इस तीन रुपये के मकान को कोठी बनाने के लिए हरकली ने पिताजी का मेरठ से तबादला होते समय कोठी के सब गमलों को उसी मकान में पहुँचा दिया था। ये गमले एक-से-एक भारी थे। ताड़, चमेली, जूही, गुलाब, रातरानी सभी पौधों के गमले थे। मकान का आधे से ज्यादा चौक गमलों से भर गया। एक तो चौक ही माशा अल्लाह बहुत बड़ा था फिर उसमें आ बसे ये गमले। हिलने-जुलने और खाट बिछाने तक की मुसीबत हो गई। देखने वाला यह देख कर समझ नहीं सकता था कि उस मकान में हरकली के भाई-बहन बसेंगे या ये गमले।

ये गमलों के पौधे तादाद में काफ़ी थे, परन्तु उस सड़े हुए मकान के वायु-मण्डल को शुद्ध न कर सके। कुछ ही दिन पश्चात् यह मकान बदल कर दूसरा मकान लिया गया। परन्तु किराये की तो वही सीमा थी। यह दूसरा मकान हवा के विचार से ज़रूर कुछ साफ़ था, परन्तु था इतना टूटा-फूटा कि बरसात की बहुत कम बूंदें उसकी छत संभाल पाती थीं। इसकी मुडेरें हरकली के गमलों के बोझ से तरेरें खागईं लेकिन ग़नीमत यही थी कि मकान-मालिक उस मकान में नहीं रहता था वरना शायद ही वह हरकली के इन गमलों को अपने मकान में बसने की इजाज़त देता, क्योंकि मकान उसने हरकली और उसके भाई-बहिनों के लिए दिया

था, नरसरी खोलने के लिए नहीं। बेचारा किसी तरह काम चला रहा था इस टूटे-फूटे मकान के किराये से अपने परिवार का, और उसके इसी सहारे की छाती पर लाकर जमा दिये थे हरकली ने अपने भारी-भारी गमले।

इस मकान में दो परिवार रहते थे, एक हरकली का परिवार और दूसरा एक वकील के मुहर्रिर महोदय का, जो हरकली की ही बिरादरी के थे। स्त्री और पुरुष, ये केवल दो ही प्राणी थे। नये-नये गाँव से आये थे और स्त्री तो शायद पहिली ही बार शहर आई थी। हरकली की नज़रों में यह बे पढ़ी औरत भला क्या जच सकती थी ?

उस स्त्री ने भी हरकली पर एक नज़र फेरी और उसके चाल-ढाल को परखा। वह देखती थी कि हरकली अपने परिवार के दो छोटे लड़कों में से एक को पीने के लिए लुका-छुपाकर दूध देती है और दूसरे को कभी पूछती तक नहीं, एक को वह ताज़े बने फुलके देती और दूसरे को बासी ही फुलके रोज़ाना खिलाने का प्रयास करती, एक को खूब तरमतर चुपड़े हुए घी-चूते फुलके खाने को देती तथा दूसरे के फुलकों पर नाममात्र के लिए पानी और घी में भीगा चियड़ा रगड़ कर गीला कर देती, एक की साग की कटोरी में वह घी डालती तथा दूसरे को यों ही रूखा-सूखा साग देकर पाप काटती। कुछ दिन बाद उसे पता चला कि उन में एक लड़का हरकली के चचा का था और दूसरा उसका अपना सगा माँ-जाया भाई। गाँव की गँवार स्त्री पर इस व्यवहार का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसके मन में हरकली के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। एक चूल्हे पर दो तरह का यह खाना खिलाना उसे नापसन्द था। उसने समझा कि शायद पढ़े-लिखे लोगों की सभ्यता का यही नमूना हो। इसलिए कुछ दिन तो वह चुप रही। लेकिन एक दिन उससे रहा नहीं गया और वह कह ही बैठी "हरकली, कभी इस दूसरे लड़के को भी थोड़ा-सा दूध दे दिया करो। तुम एक चूल्हे पर दो बच्चों को दो तरह का खाना खिलाती हो यह तो हम बिना पढ़ी-लिखी औरतें भी नहीं करतीं।"

हरकली होंठ पिचका कर बोली, "इतना दूध कहाँ से लाऊँ चाची

जी ! यह शहर है, गाँव नहीं कि भैंस का दूध निकल कर आता है। यहाँ तो सब चीज टकों से आती है। अगर दूध ही पीना है तो यह दूध के रुपए अलग से ले आया करे अपने पिताजी से।"

चाची बेचारी चुप हो गई। सोचती रही बहुत देर तक इन टकों की बात को वह बाहर की चाची। हरकली के घर के मामलात का भला उसे क्या पता था ? उसे क्या पता था कि उनके टकों का क्या प्रबन्ध था ? इस राज का उसे क्या पता था कि यहाँ जो कुछ भी इस पूरे परिवार का खर्च होता है उसका आधा रुपया उसी लड़के का पिता अग्निदत्त देता था, जिससे कि दूध का अलग से रुपया हरकली तलब कर रही है।

हरकली ने आज टका सा जवाब देकर इस गंवार चाची का मुँह बन्द कर दिया। लेकिन उसके दिल मे यह बात बराबर कसकती रही कि आखिर उसने हरकली के घर के मामलात में ऐसा दखल देने की गुस्ताखी किस प्रकार की। उसे क्या हक था हरकली से ऐसा सवाल करने का। वह अपने घर में स्वतन्त्रता-पूर्वक सब कुछ कर सकती थी। साथ ही उसके मन में यह शंका भी हुई कि कहीं उसकी ये बातें अग्नि-दत्त चाचाजी और चाचाजी के कानों तक न पहुँचें।

हरकली की अब और अधिक इस बाहरी चाची से न पट सकी। हरकली की तेज़ी को भला वह बेचारी कहाँ पहुँच सकती थी। उसने उसका रहना दूभर कर दिया। उधर उसका खाना बनाने का समय होता और हरकली नल पर दखल जमा कर बैठ जाती। चाची बेचारी अपने आदमी के कचहरी जाने के समय पर खाना ही न बना पाती। वह तंग आ गई हरकली की हरकतों से। उसे देर होती और यह मुस्क-राती, इठलाती, गुन-गुनाती और झूमझूम कर मस्ती में उसका मज़ाक बनाती। पूछती, "चाचाजी कचहरी नहीं गए अभी। चाचीजी तुम भी क्या हो ? अभी तक खाना भी नहीं बना सकीं। मुझे देखो न, सब बच्चों को टंच करके स्कूल भी भेज दिया और अब हमें भी जा रही हूँ अपने

स्कूल। एक तुम हो कि अभी चूल्हा ही फूँक रही हो।"

चाची हरकली की मक्कारी पर कुढ़ती और कुछ न बोलती। एक दिन वह आ ही गया जब यह मकान भी छोड़कर दोनों परिवारों को पृथक्-पृथक् मकान तलाश करना पड़ा। मकान तलाश करने में अधिक देर न लगी। हरकली ने मकान मिलते ही दोनों छोटे लड़कों को हुक्म दिया, "बच्चो, आज मकान बदलना है। पहिले ये गमले सिरों पर ढो-ढोकर उस मकान में पहुंचादो और फिर एक हाथ का ठेला ले आना। उस पर हम सब सामान लदवा देंगे और फिर तुम लोग उसे भी वहाँ ले जाना। आज सब सामान नए मकान में पहुँच जाना चाहिए"

अग्निदत्त का लड़का, जो कि पहिले से ही हरकली के व्यवहार को महसूस करने लगा था, यह तमाशा बरदाश्त न कर सका। सिरों पर गमले ढोना उसे पसन्द नहीं था। उसे अपने यार-दोस्तों के सामने सिर पर सामान ढोने में शर्म आती थी। यह कुलियों का काम वह नहीं करना चाहता था। उसने साफ़-साफ कह दिया, "जीजी, चाहें बुरा मानो या भला, मैं ये गमले सिर पर ढोकर उस मकान में नहीं ले जाऊँगा। मेरी, तबियत ख़राब है और मैं इस तरह का काम नहीं करूँगा।"

इतना कहना था कि हरकली आग-बबूला हो उठी। उसके क्रोध का पारावार नहीं रहा। लेकिन अग्निदत्त के लड़के ने इसकी किंचित-मात्र भी परवाह नहीं की। उसने सोचा कि चाहे यहाँ रहना हो, या न हो, परन्तु इस प्रकार के काम वह नहीं करेगा।

"तो फिर यह सामान कौन ढोयेगा?" हरकली ने क्रोध में आकर कहा।

"मैं नहीं जानता। यह आपका काम है, आप जानें।" संक्षेप में अग्निदत्त का लड़का बोला।

"यह मेरा काम है? इस सामान को मैं सिर पर रख कर ढोती फिरूँगी? क्यों? अगर ऐसा ही लाट साहब बनना है तो चाचा जी से कहो कि एक नौकर भेज दें।" खिसियाई सी होकर हरकली बोली।

"भेज दें, या न भेज दें, यह तुम जानो, वह जानें, लेकिन मैं ये गमले सिर पर नहीं ढो सकता। मैं बस इतना ही जानता हूँ।" स्थिरता के साथ उसने कहा। और आज उसकी दृढ़ता में किंचितमात्र भी बल नहीं था, ख़म नहीं था।

"नहीं ढो सकता, तो निकल जा घर से!" हरकली ने क्रोध के आवेग में आकर कहा।

और अग्निदत्त का लड़का घर से चल दिया। उसने आज मज़बूती के साथ सोच लिया था कि वह हरकली के नीचे दबकर अब नहीं रहेगा। उसे पता था कि यहाँ का आधा ख़र्च उसका पिता देता है। ये चार-चार खाते हैं और वह अकेला। फिर जैसा खाने को उसे दिया जाता है, वह भी उससे छिपा नहीं था। यों कहता वह कभी कुछ नहीं था, परन्तु जानता भी नहीं था, यह बात नहीं थी।

अग्निदत्त के लड़के को घर से हरकली ने निकाल तो दिया परन्तु वह अन्दर ही अन्दर थरथरा उठी। उसने मन से अपनी ग़लती महसूस की कि उनका सबका यहाँ के आधे ख़र्चे का दारोमदार अग्निदत्त के ही भेजे हुए रुपये पर है। लेकिन ज्ञानव्रत ने हरकली के काम का समर्थन ही किया। पैसे की इस गहराई तक अभी उसका दिमाग़ नहीं जाता था। उसके नये ख़ून में अभी वह पैठ नहीं थी जो हरकली के विधवा ख़ून में थी।

अग्निदत्त का लड़का ख़रामा-ख़रामा रेलवे स्टेशन की तरफ़ हो लिया और बेफ़िक्री के साथ जाकर उस रेल में बैठ गया जो संध्या को यहाँ से चलकर रात्रि के नौ बजे सहारनपुर पहुँचती थी। अग्निदत्त अब भटिंडा से तबदील होकर सहारनपुर आ चुका था। सर्दी के दिन थे। ठंडी हवा चल रही थी। आकाश बादलों से आच्छादित था। पत्थर के कोयलों की अंगीठी जली रखी थी और उसके दोनों ओर अग्निदत्त और उसकी स्त्री बैठे आग ताप रहे थे। अग्निदत्त ने कमर पर कम्बल भी ओढ़ा हुआ था। दोनों में बात-चीत चल रही थी।

"जेठजी का मन बेईमान हो चुका है। वह अपने बच्चों की बातों का हमारी बातों से ज्यादा यकीन करने लगे हैं।"

"यह बात नही है देवी ! तुम्हारा ख़याल ग़लत है। भाई साहब चाहे अपने बच्चों की कितनी ही बाते क्यों न मानने लगे हों, परन्तु वह बेईमानी नहीं कर सकते। जिसका हक़ है, उसी को वह देंगे।" अग्निदत्त ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"भगवान् जाने। लेकिन मेरा विश्वास तो अब उठता जा रहा है उन पर से।" अग्निदत्त की स्त्री ने कहा।

"ऐसा मत समझो देवी ! भाई साहब बेईमान नहीं हो सकते। उनकी ईमानदारी मे मै अविश्वास नहीं कर सकता," अग्निदत्त ने कहा।

ये बातें चल ही रही थीं कि इसी समय किसी ने बाहर के दरवाज़े का कुंडा खटखटाया और साथ ही 'बीबी-बीबी' कह कर आवाज़ दी। वह जाड़े से थरथरा रहा था, उसके दाँत किटकिटा रहे थे। आज शीत बहुत अधिक था और पिछले ही दिन पहाड़ों पर इतनी ज़बरदस्त बर्फ़ पड़ी थी कि उसका असर यहाँ के वायुमंडल पर भी कम नहीं था।

अग्निदत्त की स्त्री ने पहिचान कर कहा, "ज़रा कुन्डी तो खोलो, राजू की आवाज़ मालूम देती है।" और वह स्वयं भी दरवाज़े की तरफ़ लपकी।

"राजू की आवाज़ !" आश्चर्य चकित होकर अग्निदत्त बोला। और वह तुरन्त कुण्डी खोलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

दरवाजा खुला तो राजू सामने खड़ा ठंड में थरथरा रहा था। अग्निदत्त ने अपना कम्बल तुरन्त उसके चारों ओर लपेट कर उसे गोद में उठा लिया। अग्निदत्त की स्त्री भी उसी ओर लपकी और उसने दरवाज़े की कुंडी चढ़ा दी, जिसके अन्दर से सर्दी की काटखाने वाली हवा घुसी चली आ रही थी।

राजू का इस प्रकार अकेले चले आना कोई बड़ी बात नहीं थी।

इस समय तो वह दर्जा सात में पढ़ रहा था और आया भी अकेला ही था। अग्निदत्त की स्त्री की आँखों में उसका वह दिल्ली आने का चित्र घूम रहा था, जब वह पाँचवीं कक्षा में पढ़ता था और उसकी उम्र केवल दस वर्ष की थी। बिलकुल यही समय था, जब उसने मुग़लसराय के क्वार्टर का दरवाज़ा खटखटाते हुए "बीबी" कह कर आवाज़ दी थी। उस दिन भी आज की ही तरह बिजली कड़कड़ा रही थी और बादल आसमान में घिरे हुए थे। नन्हीं-नन्हीं बूँदें बरस रही थीं और सर्द हवा शरीर को सुन्न करती हुई फ़र्राटे भर रही थी। उस दिन वह अपने अंधे फूफाजी को लेकर आया था और आया भी था, बिला टिकिट। बिल एक पैसा किराये का दिये हुए ही मुन्शी चतुरसिंह जैसे क़ाबिल आदमी ने इस बच्चे को भेज दिया था, क्योंकि रेल में उनका भाई मुलाज़िम था, एक क्लर्क, यानी अफ़सर था; मालिक था वह रेल का। उस दिन भी चतुरसिंह की इस लापरवाही और राजू के साथ की गई अव्यावहारिक घटना को लेकर अग्निदत्त और उसकी स्त्री में काफ़ी देर चर्चा हुई थी और उसी विषय को लेकर आज भी काफ़ी देर तक बात-चीत चलती रही।

राजू खाना खा-पी कर सो गया। उसके लिए यह जीवन की हरकली पर एक विजय थी। उसने हरकली को नीचा दिखलाया था, और वह अब उसकी हकूमत में पैर रखना नहीं चाहता था।

राजू की पढ़ाई को लेकर अग्निदत्त और उसकी स्त्री में रात को फिर कितनी ही देर तक बातें चलती रहीं। वर्ष का यह बीच था, सन् तीस की बात रही होगी। बीच साल में किसी अन्य स्कूल में भर्ती कराना भी एक समस्या थी, और फिर वहाँ पढ़ कर पास होना भी बहुत कठिन था।

उधर हरकली और ज्ञानव्रत ने मिलकर अपने पिताजी चतुरसिंह को एक लम्बी-चौड़ी चिट्ठी लिखी, जिसमें राजू की बुराइयों का एक पूरा चिट्ठा पेश किया गया था, परन्तु फिर भी अन्त में ज़ोर हरकली

ने इसी बात पर दिया कि चाचाजी को चाहिए, वह राजू को मेरठ छोड़ जायें, जिससे उसकी तालीम में हर्ज न हो। हरकली का यह समझदारी का पत्र था। वह जानती थी कि राजू के हर्ज के साथ उनका अपना हर्ज भी नत्थी था, क्योंकि उन सब का आधा खर्च अग्निदत्त दे रहा था।

चतुरसिंह का तीसरे ही दिन अग्निदत्त के पास पत्र पहुँचा कि यदि राजू वहाँ पहुँच गया हो तो वह उसे तुरन्त मेरठ छोड़ जाये, जिससे उसकी तालीम मे हर्ज न हो। यह पत्र देख कर अग्निदत्त उस पूरे सिलसिले को न समझ सका, परन्तु एक बात निश्चित ही थी कि वह स्वयं भी राजू को इस वर्ष मेरठ ही तालीम के लिए रखना चाहता था।

अग्निदत्त को छुट्टी नही मिल सकती थी। अग्निदत्त की स्त्री ही राजू को लेकर मेरठ गई। यों ऊपर से हरकली और ज्ञानव्रत ने चाचीजी को आदर ही दिया, परन्तु अन्दर-ही-अन्दर उनका दिल एक जलन सी महसूस कर रहा था। न जाने क्यों वे चाचीजी का चाचीजीपना स्वीकार करना नहीं चाहते थे। उनसे रुपया लेने की तो इच्छा उनकी हर समय रहती थी, परन्तु उन्हे उचित आदर देते हुए उन्हें अपने अन्दर कुछ हीनता अनुभव होने लगती थी।

: १२ :

पिता का देहान्त हो जाने पर रामप्रकाश ने जब इधर-उधर नजर दौड़ाई तो उसने अपने परिवार में देखा कि एक उसका छोटा भाई था, जिसकी तालीम का उसे प्रबन्ध करना था; एक छोटी बहिन और माँ थे, परन्तु उनके खाने-पीने की उसे चिन्ता नहीं थी। वे उसके नाना के यहाँ रहते थे, और वे ही नाना की सम्पत्ति के पूरी तरह अधिकारी थे। उनके खर्चे भर के लिए वहाँ काफ़ी था, कोई कमी नहीं थी किसी प्रकार की।

रामप्रकाश अपने इलाक़े का एक नामी दीवान था। जिस थाने में भी वह चला जाता था, वहाँ का दारोग़ा फीका पड़ जाता था। इलाक़े

भर का वह मानो मालिक होता था। इलाक़े के सब बदमाश उसके कान पकड़े चेले हो जाते थे। क़ानून का वह पाबन्द था, परन्तु बदमाशों के परिवार वालों के साथ बहुत ही रहम-दिली का बर्ताव करता था। यही कारण था कि जो बदमाश उसके हाथों सज़ा भी पा जाते थे, उन्हें भी जेल से लौटने पर अपने परिवारों में रामप्रकाश की भलाई का ही वातावरण मिलता था। इस प्रकार वह सरकार और बदमाश, दोनों का मीठा बनकर रहने का गुर जानता था।

आमदनी उसे अच्छी-ख़ासी होती थी। पीने-पिलाने का वह शौकीन था। चौधरी चतुरसिंह के आर्य समाजी चरित्र से जहाँ उसके पिता ने केवल इतना ही विद्रोह किया था कि वह हुक्का पीते थे, वहाँ रामप्रकाश उनसे कई क़दम आगे बढ़ चुका था। वह केवल शाकाहारी सीमा में भी अपने को सीमित न रख सका। मांसाहारी वह हो गया। अफ़सरों को दावतें उसे देनी पड़ती थीं और इन दावतों की प्रधान वस्तु सेब और अंगूर न होकर शराब और शिकार होते थे। जो चीजें राम-प्रकाश अपने अफ़सरों के शौक के लिए पेश करता था, उनका शौक वह आप न करे, भला यह कैसे सम्भव हो सकता था।

रामप्रकाश की स्त्री, एक सीधी-सादी गाँव की औरत थी। जिन्दगी के प्रथम विकास-काल में ही उसे तपेदिक़ की बीमारी ने घेर लिया था और उसका सेब-जैसा लाल चेहरा रामप्रकाश के देखते-देखते हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था।

रामप्रकाश ने अपनी आय का काफ़ी रुपया उसकी बीमारी में सर्फ़ किया, परन्तु वह उसकी तन्दुरस्ती को वापस न ला सका। उसके कई बच्चे भी हुए, परन्तु दुर्भाग्यवश उन में से एक भी जीवित न रहा। इस प्रकार रामप्रकाश लावल्द था।

बीच-बीच में रामप्रकाश के दूसरे विवाह का भी प्रश्न सामने आया और उसकी माँ ने इस बात पर काफ़ी जोर दिया, परन्तु यह बात राम-प्रकाश ने मंजूर नहीं की। दूसरी शादी करके वह एक नई मुसीबत में

अपना गला फंसाने को तैयार नहीं था।

अपने छोटे भाई धर्मप्रकाश को वह तालीम दिला रहा था। धर्मप्रकाश बोर्डिंग में रहकर पढ़ता था, मेरठ के एक हाई स्कूल में। पढ़ने-लखने की तरफ़ धर्मप्रकाश का अधिक ध्यान नहीं था। वह पूरा शाहजी बना हुआ था। मलमल के कुर्ते पर तेहमद बाँध कर जब वह घूमने निकलता था तो उसकी चौकड़ी के लड़के उसे 'शाहजी' कह कर पुकारते थे। एक लाठी भी वह हाथ में रखता था, चौधराहट की। शायद यह वही लाठी हो जिसे कभी चौधरी शक्तिसिंह लेकर चला करते थे।

धर्मप्रकाश भी अपने पिताजी की ही तरह जी का खुला हुआ लड़का था। मिजाज़ उसने भी शौकियाना और आशिकाना पाया था। खेल-तमाशों का उसे शौक था। खाली सिनेमा भर देखकर उसकी तृप्ति नहीं होती थी। वह जीते-जागते दृश्य देखना अधिक पसंद करता था। मेरठ के आस-पास जहाँ कहीं भी साँग-तमाशे की सूचना उसे मिल जाती थी, वह ज़रूर जाता था; एक नामी चौधरी के लड़के की तरह शामिल होता था उसमें और नाचने-गाने वाले लौंडों को दो-चार रुपये देकर मजलिस में शोहरत भी हासिल करता था।

मेरठ में धर्मप्रकाश का यह ठाट-बाट ज्ञानव्रत और हरकली की नज़रों से छिपा न रह सका। उसकी दशा को देखकर दोनों ने अंदाज़ लगाया कि ये सब अलल्ले-तलल्ले रामप्रकाश की कमाई के ही कारण हैं। भाई रुपया भेजता है और यह यहाँ ऐश करता है। वेदप्रकाश का ऐश हरकली के दिल में चुभता था। एक दिन संध्या को एकांत में हरकली ज्ञानव्रत से बोली, "ज्ञानव्रत! आज तुझे एक काम की बात बताती हूँ।"

"बतलाइये जीजी!" ध्यानमग्न होकर ज्ञानव्रत ने पूछा।

"देखो ज्ञानव्रत! इस समय रामप्रकाश के पास बहुत पैसा है। तुम जानते हो क्यों?"

"मैं तो नहीं जानता जीजी!"

"तो मैं बतलाती हूँ। पुलिस में घूस खूब चलती है। यह घूस का

ही पैसा है जो धर्मप्रकाश की मस्ती में दिखलाई दे रहा है। फिर एक बात और भी तुम जान लो। अग्निदत्त चाचा जी को तो पिता जी पहिले ही खोखला कर चुके हैं। उन्होंने तो आजतक जो कुछ भी कमाया है, पिता जी ने चूस लिया है। लेकिन रामप्रकाश पर अभी तक दाँव नहीं गंठ सका। मैं तुमसे कहती हूँ कि तुम वहाँ जाओ और उसके पेट में घुस जाओ।"

"बात तो तुमने बहुत पते की कही जीजी! अब देखना तुम कि मैं किस कमाल के साथ यह काम करता हूँ।" प्रसन्नतापूर्वक ज्ञानव्रत बोला। वह बहुत ही खुश हुआ अपनी बहिन के इस गुरु-मंत्र को पाकर।

"और देखो, एक ख़ास बात बतलाती हूँ तुम्हें। रामप्रकाश के सामने अग्निदत्त चाचा जी और चाची जी की खूब जी खोलकर बुराई करना और कहना कि हम लोगों का तो मन तुम्हारी तरफ़ से उन्हीं ने फाड़ रखा था। वरना हमारे दिलों में तो तुम्हारे लिये इतना प्यार भरा हुआ था कि कुछ कहने की बात ही नहीं। बीच-बीच में, कभी-कभी, चचा शक्तिसिंह का प्रसंग छेड़कर चार आँसू भी बहा देना और यह भी बतलाना कि वह हमें कितना प्यार करते थे।"

"मैं समझ गया जीजा!" उसकी सहानुभूति को अपनी ओर खींच कर उसे उल्लू बनाने की बात है। आज तक दूर-ही-दूर नाचता रहा है। गले में फँदा फँसने ही नहीं दिया। अब मुझे देखना है कि वह मेरे हथकंडों से बचकर कहाँ भागता है। उसके पास पहुँच कर वह जाल फैलाऊँगा कि बच्चा चारों खाने चित्त आ गिरे उसमें। और यह बात तो मैं जीजी आपकी सोलहों आने मानता हूँ कि रामप्रकाश के पास रुपया ज़रूर इकट्ठा होगा। यह बात तुमने बहुत पते की खोज कर निकाली है।"

हरकली और ज्ञानव्रत इस समय बहुत प्रसन्न थे। यह पासा उनका यदि सीधा पड़ा तो रामप्रकाश ने आज तक पुलिस की नौकरी में ईमानदारी या बेईमानी से जो कुछ भी कमाया है वह सब उनके पल्ले में

आ गिरेगा।

एक (अग्निदत्त) को उल्लू बनाते आ रहे थे, अब दूसरे को उल्लू बनाने की ठानी थी।

ज्ञानव्रत ने अपनी यात्रा का साजो-सामान तैयार कर लिया और एक दिन वह रामप्रकाश के पास जा ही पहुँचा। रामप्रकाश ने अपने छोटे भाई ज्ञानव्रत को देखते ही छाती से लगा लिया। ज्ञानव्रत की भाभी ने भी अपना प्यार-दुलार उस पर फेरने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी।

ज्ञानव्रत के लिए नये-नये कपड़े सिलवाये गय। उसके खाने-पीने का भी ख़ासतौर पर प्रबन्ध किया गया। मतलब यह कि उसकी आवभगत में कोई कसर उठा नहीं रखी गई, परन्तु रामप्रकाश ने ज्ञान-व्रत से कोई विशेष बातें नहीं कीं। ज्ञानव्रत की जो भी बातें हुईं, वे सब उसकी भाभी से ही हुईं और उन्ही के द्वारा वे सब रामप्रकाश तक पहुँचीं।

रामप्रकाश एक नम्बर का घाघ आदमी था। ज्ञानव्रत जैसे चपर-क़नाती बच्चों को वह दिन-रात चलाता और रास्ते लगाता था। ज्ञान-व्रत जो कुछ भी कहता था, उसकी जड़ों में क्या राज़ छुपा था, उसे वह भली प्रकार समझता था। वह रोज़ाना दूध ज़रूर पिलाता था इस सपोलिये को परन्तु शक्तिसिंह के वे आखिरी शब्द आज भी उसके कानों में बज रहे थें, "बेटा रामप्रकाश! तू मेरे भाइयों को कुछ न कह। अग्नि-दत्त ने भटिंडे में मेरा जी जान से इलाज कराया था और यह हो नहीं सकता था कि भाई साहब चतुरसिंह मेरी ख़बरगीरी के लिए न आते; लेकिन उनकी औलाद ने उन्हें नहीं आने दिया। ज्ञानव्रत और हरकली इस परिवार की पैड़ मेट कर ही दम लेंगे।"

रामप्रकाश आज, उसी समय जबकि ज्ञानव्रत और उसकी भाभी की लम्बी-चौड़ी बातें चल रही थीं, बीच में दरवाज़ा खोल कर आ पहुँचा और अपनी लम्बी-लम्बी मूँछों पर ताव देता हुआ मुस्कराकर बोला,

"यहाँ तो गप्प-शप्प उड़ रही हैं देवर-भाभी की। कभी काम की बातें भी तो किया करो, या इन्हीं हँसी-ठट्ठों से जिन्दगी के काम चल जायेंगे।"

"काम की बातें तुम करलो।" ज्ञानव्रत की भाभी ने मुस्कराते हुए कहा। ज्ञानव्रत समझ ही न सका कि आखिर काम की बातें क्या करनी हो सकती थीं।

रामप्रकाश ने ज्ञानव्रत के पास बैठते हुए कहा, "ज्ञानव्रत! तुम यहाँ आ गये, तुमने बहुत ही अच्छा किया। वरना मैं तो खुद ही ताऊ जी के पास आने की बात सोच रहा था। तुम जानते ही हो, मुझे तो कुछ आता जाता नहीं और छोटी बहिन की शादी सिर पर आ गई। सब कुछ ताऊ जी को ही करना है और तुम लोगों को करना है। हाँ रुपया सब मैं खर्च करूँगा। उसके लिए मैं ताऊ जी पर भार नहीं डाल सकता।"

यह बात रामप्रकाश ने इतनी संजीदगी से कही कि ज्ञानव्रत प्रभावित हुए बिना न रह सका। फिर इसी काम के लिए तो वह आया था कि वह रामप्रकाश का विश्वास प्राप्त कर सके। रामप्रकाश के मन में चतुरसिंह के प्रति यह श्रद्धा-भाव देखकर ज्ञानव्रत गद्-गद् हो गया। और मुक्त कंठ से बोला, "आप चिन्ता किस बात की करते हैं भाई साहब! आपकी छोटी बहिन क्या मेरी छोटी बहिन नहीं है? आप यहीं पर बैठे रहिये और वहाँ सब इन्तज़ाम ठीक हो जायेगा। क्या मजाल जो कि किसी काम में भी बाल बराबर फ़र्क़ आ सके।" उत्साह के साथ ज्ञानव्रत ने कहा।

चलते समय ज्ञानव्रत को रामप्रकाश ने सौ रुपये के दो करारे-करारे नोट दिये और शादी के लिये घी का प्रबन्ध करने को कहा।

"तुम प्रबन्ध करना ज्ञानव्रत! रुपये की जैसे-जैसे जरूरत होगी, मैं देता रहूँगा।" रामप्रकाश ने ज्ञानव्रत को मोटर में बिठला कर कहा।

"उसकी आप चिन्ता न करें।" ज्ञानव्रत ने उत्तर दिया।

मोटर चल पड़ी, ज्ञानव्रत दो सौ रुपये की गर्मी को जेब में भरे,

सीना उघार कर अपनी सीट पर मोटर में सबसे आगे बैठा था, दीवान जी की वह सवारी थी, किसी की क्या ताब थी जो उससे आँख मिला कर भी उस इलाके में देख सकता।

रामप्रकाश ने मोटर के चले जाने पर एक बार फिर मूछों को जोर से मरोड़ी दी।

: १३ :

हरकली कूटनीति में अपने को महामंत्री चाणक्य का स्त्री संस्करण मानती थी। ज्ञानव्रत का उपयोग अब वह पूरी तरह अपनी नीति के संचालन में कर रही थी। उसका छोटा भाई, छोटी लेकिन गोल खोपड़ी का, महा मोधूचन्द विद्यार्थी था, परन्तु आस्था उसकी अपनी जीजी में बहुत अधिक थी। जीजी की आज्ञा-पालन करना वह भी अपना धर्म समझता था।

रामप्रकाश के पास ज्ञानव्रत को गये बीस दिन हो गये थे और इस बीच उसे उसके दो पत्र मिले थे। दोनों में ही ज्ञानव्रत ने आशा प्रकट की थी कि उसका जादू रामप्रकाश पर काम कर जायेगा। उसे विश्वास था कि वह रामप्रकाश का विश्वास प्राप्त कर सकेगा।

हरकली एकांत में बैठी रामायण का पाठ कर रही थी परन्तु उसका मन ज्ञानव्रत में ही पड़ा था। चचा अग्निदत्त ने दुबारा अपने लड़के को यहाँ भेज कर इनका आधा खर्च देना शुरू कर दिया था, परंतु यह रुपया लेना हरकली को कुछ अच्छा प्रतीत नहीं होता था। हर महीने भीख सी माँगना और अपनी आर्थिक कमजोरी का अनुभव कराना, उसके हृदय को ठेस पहुँचाता था। यह खेल जो वह इस समय खेल रही थी, कोई खेल नहीं था। साधारण घिस-घिस का खेल उसे पसन्द नहीं था। वह तो एक बार ही लम्बा-चौड़ा हाथ साफ़ करना चाहती थी। और यह हाथ इस समय रामप्रकाश पर ही साफ़ होना सम्भव था, क्योंकि उसके अनुमान से एक मुश्त रक़म इस समय रामप्रकाश के पास ही जमा मिल सकती थी।

हरकली इसी उधेड़बुन में लगी थी कि उसने देखा, ज्ञानव्रत सामने से कुली के सिर पर अपना सामान रखाये घर के अन्दर बढ़ा चला आ रहा है। उसने आते ही बड़े आदर के साथ जीजी को नमस्कार किया और हरकली ने भी ज्ञानव्रत को छाती से लगाया, तथा प्यार का हाथ उसके सिर पर फेरा। अपने नाटे क़द के कारण उसे हाथ फेरने में कुछ असुविधा अवश्य हुई परन्तु वह अपने प्यार को दिल में ही समेट कर नहीं रख सकती थी।

कुली को पैसे देकर बिदा कर दिया गया और तब हरकली की ज्ञानव्रत के चकाचक नये कपड़ों पर दृष्टि गई। जेब में रखे हुए दो सौ रुपयों की रक़म को ज्ञानप्रकाश अधिक देर तक रोक कर नहीं रख सकता था। उसके दिल का उत्साह उन्हें बाहर निकाल कर जीजी के हाथों में दे-देने के लिए व्याकुल हो रहा था।

"लो जीजी! ये लो सौ रुपये। रामप्रकाश से ऐंठ कर लाया हूँ। और इस बार मैंने भी उस पर वह जादू किया है कि बच्चा याद ही रखेगा। इस बार ऐसा फँसाऊँ कि ज़िन्दगी भर याद रखे।"

दो सौ रुपये के नोटों की गड्डी हाथ में लेकर हरकली उत्साह और प्रसन्नता से उछल पड़ी। वह लिपट ही गई ज्ञानव्रत से और प्यार से उसे कई बार चूम लिया। फिर ज़रा संभल कर बोली, "उस गाह के मुँह में से ये रुपये तू निकाल लाया ज्ञानव्रत! बस तूने कमाल कर दिया। अब ज़रा यह तो बतला कि कैसे-कैसे बीती इतने दिन?"

ज्ञानव्रत ने जिस दिन वह वहाँ पहुँचा था उस दिन से आज तक की पूरी कहानी कह सुनाई, और हरकली ने वह ऐसे ध्यान देकर सुनी मानो वह रामायण का पाठ कर रहा था। अन्त में जब शादी का प्रसंग आया तो हरकली झल्ला कर बोली, "मैं देखूँगी किस तरह सफलता मिलती है रामप्रकाश को इस शादी के करने में। ऐसी छीछालेदर करूँ कि मुन्ना को छटी तक का खाया-पीया याद आ जाये। ऐसा खाऊँ और बरताऊँ कि पारस में खाली पत्तलें ही उड़ती नज़र आयें।"

"ठीक यही होगा जीजी ! काम तो सब हमारे ही हाथों में रहेगा। यह बदमाश भी तो हमारी शादी में कुछ करने से बाज नहीं आया था। मेरी शादी में चाचा जी ने पिता जी से सब चीजें इसे दिला दी थीं। यदि मैं उस समय कुछ करने-धरने लायक़ होता, तो चाचा जी और पिता जी दोनों को एक ओर बिठला देता, और जरा भी ख़याल नहीं करता इस बात का कि वह शादी में शरीक होता है या नहीं।"

हरकली दाँत रगड़ कर बोली, "ठोंसे पर मारती हूँ अब मैं इनके शामिल होने-न-होने को। ये हैं किस खेत की मूली और इन्हें पूछता ही कौन है बिरादरी में। तू नहीं जानता ज्ञानव्रत! इनके तो रिश्ते भी पिता जी के ही नाम पर होते हैं। पिता जी यदि न चाहते तो इनकी शादियाँ भी नहीं होतीं, जिन्दगी भर बच्चा कुंवारे ही रहकर मर जाते।"

"लेकिन पार तो कुछ पिता जी पर नहीं बसाती हमारी। जो भी बात कहो, बस सत्य और धर्म की दुहाई देने बैठ जाते हैं। राम और लक्ष्मण की बातें बघारते हैं। और मैं कहता हूँ कि चाचा जी की चाल-बाज़ी को तो वह एक से लाख तक नहीं समझ सकते। ऐसा मीठा घाघ है कि बस पूछो ही नहीं। मीठी छुरी बन कर पिता जी के पेट में घुस गया है।" जरा कुढ़ कर ज्ञानव्रत बोला।

"तुम चिंता न करो ज्ञानव्रत! मैं सब देख लूँगी इन मीठी और पैनी छुरियों को। इन्हें भी मैंने खुट्टल करके एक ओर न रख दिया तो मेरा नाम भी हरकली नहीं। एक-एक की चालबाजियाँ देखनी हैं मुझे भी।" जरा सीने में उभार लाकर हरकली बोली। उसे विश्वास था कि वह एक दिन इन चच्चा भतीजों के जालों को काट कर फेंक देगी, और अपने पिताजी के कच्चे-पक्के परिवार को भविष्य में आने वाली उस मुसीबत से मुक्त कर देगी जिसके चक्कर में उसके सीदे-साधे पिता जी उसे फसाते जा रहे थे।

ज्ञानव्रत को हरकली की योग्यता पर पूर्ण विश्वास था। वह जो कुछ भी बात कहती थी, वह ज्ञानव्रत और उसके छोटे भाई के ही हित की

बात इसलिए उसके अन्दर किसी भी प्रकार का अविश्वास होने का कोई कारण ही नहीं था।

× ×

रामप्रकाश की छोटी बहिन की शादी का प्रबन्ध होना शुरू होगया। प्रबन्ध करने वाले हरकली और ज्ञानव्रत थे। मुंशी चतुरसिंह ने भी हरकली और ज्ञानव्रत के कहने से विवाह में सक्रिय भाग लिया। गाँव में इस समय ज्ञानव्रत का बोलबाला था। घी का प्रबन्ध किया, ईंधन का प्रबंध किया, हलवाइयों का प्रबन्ध किया, छोटी-मोटी चीज़-बस्तों का प्रबन्ध किया और इन सब कामों को करते समय उसके पैर ऐसे उठ रहे थे मानो उनके नीचे कोई मशीन लग गई थी। दो सौ रुपया पेशगी रामप्रकाश ने दे दिया था। बाकी रुपये की उसके पास कमी क्या थी। आखिर आज तक की कमाई में एक छोटी बहिन का ही तो विवाह वह कर रहा था। फिर उसके नाना भी अच्छा-खासा भात भरने वाले थे।

ज्ञानव्रत दौड़-दौड़ कर काम कर रहा था और हरकली फुदक-फुदक कर हिसाब का चिट्ठा तैयार कर रही थी। गाँव में आजकल इन्हीं दोनों का तहुरा था। चौधरी शक्तिसिंह के खाली किये हुये तख्तेताऊस पर इन्हीं का शासन विराजमान था। कमीन-काँटों पर इन्हीं का रौब था। इनका इरादा था कि इस शादी में गाँव के कमीनों को ये लोग रामप्रकाश के सिर निहाल कर देंगे। काम वे साल भर इनका करेंगे और इनाभात उन्हें दिये जायेंगे रामप्रकाश की न्योली खोलकर। फिर दूसरे हिसाबों में भी हरकली बखूबी नौ दो ग्यारह कर सकेगी और इस तरह इस सहयोग में लाभ-का लाभ और अहसान-का-अहसान होगा। अपने पास से न हल्दी लगानी पड़ेगी न फिटकरी, और रंग चोखा आयगा। हर काम के लिये हरकली के क़दम चाव से उठ रहे थे।

मुंशी चतुरसिंह ने अग्निदत्त को भी शादी में शामिल होने के लिए पत्र लिखा और उसमें लिखा कि मुझे पता नहीं शादी किस तरह की हो रही है, परन्तु अपना फर्ज समझकर मैं इसमें शामिल हो रहा हूँ, क्योंकि शक्तिसिंह का अन्तकाल हो चुका है और उसकी नामौजूदगी

में शामिल होना मैं अपना फर्ज़ समझता हूं।

पत्र बाबू अग्निदत्त को मिला तो वह उसे पढ़ कर मुस्कराये। पत्र शादी से एक दिन पहिले ही पहुँचा था। शादी का सब प्रबन्ध ज्ञानव्रत और हरकली कर रहे थे और चतुरसिंह को यह भी पता नहीं कि शादी किस तरह की हो रही है। अग्निदत्त की स्त्री ने भी पत्र सुना और वह व्यंगपूर्ण स्वर में बोली, "आपके सत्यवादी हरिश्चन्द्र बड़े भाई का पत्र है। इसके एक भी शब्द को यदि आप ग़लत समझने की कोशिश करते हैं, तो समझिये कि ज़िन्दगी में उससे बड़ा पाप फिर कभी नहीं होगा।"

अग्निदत्त को लज्जा आई अपने भाई के इस चरित्र पर। उनके ख़यालात का क़िला तो पहिले ही रड़-रड़ करके ढह चुका था। अपनी स्त्री के मस्तिष्क पर अपने भाई साहब की ईमानदारी और सत्यवादिता की जो छाप बिठलाई थी, उसकी प्रेत-छाया मात्र ही इस समय उन्हें दिखलाई देती थी। उन्हें लग रहा था कि मानो उसका असली भाई चतुरसिंह, वह चतुरसिंह जिसने उन्हें पढ़ाया-लिखाया और उनकी शादी की थी, मर चुका है और उसके स्थान पर आज उसका प्रेत आकर बैठ गया है। इस प्रेत के अन्दर से बड़े भाई चतुरसिंह के सभी गुण एकदम लुप्त हो गये थे। न वह सचाई ही रही और न वह धर्म परायणता, न वह दूरदर्शिता ही रही और न वह सचाई को परखने की क्षमता। साधारण सी बातों में भी वह भाई से झूठ बोल सकता है, अपने बच्चों के असर में वह इस क़दर दब गया है कि उसका जीवन उन्हीं का ग़ुलाम बन कर रह गया है।

परिवार का वह रूप जिसकी अग्निदत्त ने कल्पना की थी, जो कभी भी छिन्न-भिन्न होने वाला नहीं था, जिसके सब प्राणियों को एक जंजीर में गूंथ कर आगे बढ़ाने का ख्वाब वह देख रहे थे, जिसकी समृद्धि में उन्हें सभी का हित दिखलाई दे रहा था, आज वह सब मकड़ी के जाले के समान उन्हें प्रतीत हुआ और देखा कि एक छिपकली ने उसके

ऊपर कूद कर उसके पुराने और सुदृढ़ बाँधे हुए तारों को छिन्न-भिन्न कर दिया, उसके बीच में एक बड़ा सूराख़ कर दिया। वह देख रहा था मकड़ी के उस जाले को, अपने उस परिवार को और उस पर कूदने वाली छिपकली को और उसने देखा कि वह छिपकली थोड़ी ही देर में हूरकली बनी उनके सामने खड़ी मुस्करा रही थी और कह रही थी, "चाचा जी ! आपका यह ताना-बाना मेरा एक भी वार बरदाश्त न कर सका। अब पिता जी को आपके हाथों में और अधिक मैं नहीं खेलने दूँगी। अपने,अपने रास्ते पर चलिये। क्यों आप पिता जी के गले की ज़ंजीर बने हुए हैं ?"

'ऐसा क्या जादू कर दिया इस भाई साहब के ख़त ने ?" अग्निदत्त की स्त्री ने उनका ख्वाब-सा तोड़ते हुए कहा, "भाई की ज्यादा ग़ुलामी करने का यही नतीजा होता है। मैं जानती थी कि एक दिन वह आयेगा जब जेठ जी हमें दूध की मक्खी की तरह घर से निकाल कर फेंक देंगे।"

"फेक देंगे !" ज़रा क्रोध में आते हुए अग्निदत्त ने कहा, "मैंने भी चूड़ियाँ नहीं पहनी हैं हाथों में। जब तक बड़ा भाई भाईपना निभाता है तभी तक वह छोटे भाई से भाईपने की आशा कर सकता है।"

"लेकिन अब तुम कर ही क्या सकते हो ?" जले पर नमक मलते हुए अग्निदत्त की स्त्री ने कुढ़ कर कहा, "साँप निकल गया, अब लकीर को पीटा करो तुम बैठ कर ! जब खत्री का कर्ज़ देना था तो लाख खुशामदें करते थे। यदि वह गले में फंसा रहता तो जिन्दगी भर ग़ुलाम बने रहते हमारे। जितनी रुपल्लियां तनखा की पाते हैं उनसे तो उस कटक-दल का भी पेट न अटता जो उन्होंने पैदा कर लिया है।" इस समय अग्निदत्त की स्त्री का पारा ज़रा तेज़ था।

अग्निदत्त के सामने ऐसे शब्दों का प्रयोग पहिले कभी चतुरसिंह और उसके परिवार के लिए उसकी स्त्री द्वारा नहीं हुआ था और यदि होता भी तो वह बर्दाश्त करने वाला नहीं था; परन्तु आज ये शब्द कुछ

ऐसे प्रतीत हुए मानो वे उसके अपने ही दिल के घावों पर मरहम-लेपन कर रहे थे। वह शांत भाव से सुनता रहा।

अग्निदत्त की स्त्री का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। उसे रह रह कर अपने सभी अहसानात याद आ रहे थे जो उसने चतुरसिंह के बाल-बच्चों पर किये थे। उसने सचमुच आज तक कभी अपने बच्चे और उनके बच्चों को दो नहीं समझा। अपने छाती के टुकड़े, इकलौते बेटे को जेठजी के इन शब्दों से डर कर "एक है, सो इसे यह अवश्य ही बिगाड़ कर दम लेगी।" कभी अपने पास नहीं रखा। बार-बार अपमानित होने पर भी अपने बच्चे को जेठजी के ही पास छोड़े रखा। अपने आदमी की इतनी काफ़ी आमदनी में भी कभी ऐल-फ़ैल नहीं किया। जो कुछ जोड़ा-जंगोड़ा वह इस परिवार की भट्टी में झोंक दिया। वरना झेरे में जाता यह आभाराम का परिवार और चतुरसिंह की नाक तथा वह जायदाद जिसका मालिक बना वह आज यह ख़त लिख रहा है, वह तो ऐश करती। उसके अपने और एक बेटे के लायक उसका आदमी काफ़ी कमाता था। वह मजे से शहर में रहती और सोने से पीली बनी फिरती। लेकिन उस तरफ़ उसने कभी ख़याल ही नहीं किया। एकांगी सुख और अपने छोटे परिवार के विषय में उसने कभी सोचा ही नहीं। अपने बच्चे को अपने पास रखती, तीन प्राणियों का परिवार बना कर बैठती, तो उसे भी आगे-पीछे का ख़याल होता।

आज अचानक ही उसके क्रोध का पारा अग्निदत्त के ऊपर उमड़ पड़ा। वह तनतना कर बोली, "इस अपमान और बरबादी की असल जड़ एक तुम ही हो। तुमने भाई का गुलाम बन कर हमें कहीं का भी नहीं छोड़ा।"

"चुप रहो बस देवी! और आगे न बोलना।" क्रोध में भर कर अग्निदत्त ने कहा।

परन्तु आज वह अपनी स्त्री के क्रोध को न दबा सका। उसकी स्त्री ने आज उसे कहनी और अन-कहनी कितनी बातें कहीं और उसे वे

सब पीजानी पड़ीं। इस पीजाने का एक-मात्र कारण यही था कि वह अपने अन्दर कमजोरी देख रहा था। उसका ख़्वाब टूट चुका था और आज वह स्पष्ट देख रहा था कि उसके जीवन की आज तक की कमाई चतुरसिंह के पेट में जा चुकी थी। यह सब उसी के विश्वास पर गई थी, क्योंकि चतुरसिंह उसी का भाई था और उसकी स्त्री ने भी उनका विश्वास उसी के कहने पर किया था। यदि वह उनकी ईमानदारी की छाप अपनी स्त्री के मस्तिष्क पर न लगाता तो वह एक छदाम भी कभी उस कर्ज में न देने देती। वह अलग से रुपया जोड़ती। तब ऊँची नाक लेकर बोलने वाली बड़े ज़मीदार की बेटी हरकली कर्ज में मीन चली जाने पर कहीं पीसने पीसती फिरती और वह होती एक पैसे वाली औरत, जो गाँव में भी जाती तो एक ठसके के साथ जाती, और इस हरकली चाचीजी-चाचीजी कहते कभी न थकती।

अब उन्हें कौन परवाह पड़ी है इन चाचाजी और चाची जी की। तमाम जमीन के मालिक बने बैठे हैं। वह बोली, "अब सुन लो, आज तो यही चिट्ठी आई है। दस दिन बाद यह भी चिट्ठी आयेगी कि सरावे में तुम्हारा कुछ नहीं निकलता। बाहर ही रहकर अपना कमाओ और खाओ।"

अग्निदत्त चुप था। उसमें अपनी स्त्री के इन शब्दों को ग़लत कह देने का साहस नहीं था। वह अब अपने बड़े भाई चतुरसिंह से हर प्रकार की चिट्ठी की उम्मीद कर सकता था। वह चुपचाप बैठा अपने अन्दर-ही-अन्दर बुड़बुड़ाता रहा।

आज पहली बार उसे अपने भाई चतुरसिंह के कर्मकाण्डी वेश के नीचे की सतह दिखलाई दी। गायत्री मंत्र का उच्चारण करने वाले, दोनों समय संध्या और नित्य हवन करने वाले, बलिवैश्य करके भोजन करने वाले, मस्तक पर अपने हाथ का घिसा चन्दन लेपने वाले, हर रविवार को आर्य समाज मन्दिर में :

हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिये।
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिये।
लोभी और कामी, क्रोधी कोई भी हम में न हो।
सत्य करमों पर चलें और छोड़ देवें मोह को।

इन पंक्तयों का पाठ करने वाले; समाज, बिरादरी तथा सम्बधियों में आदर के पात्र, विद्वान और ज्ञानी बड़े भाई चतुरसिंह के अन्दर उसने झाँक कर देखा, तो बस यही पाया कि वह ज़िन्दगी के रास्ते पर चलता-चलता कमजोर पड़ गया। जिन सिद्धान्तों को उसने मूल मन्त्र के रूप में ग्रहण किया था उनका ऊपरी ढाँचा मात्र इस समय उसके साथ चल रहा था, उसके अन्दर की जड़ें लोभ और बाल-बच्चों के झूठे प्रलोभनों ने खोखली कर दी थीं। वह बहक गया था अपने रास्ते से।

लेकिन वह इस बड़े परिवार का रहनुमा था। उसके बहक जाने का असर न केवल उसकी अपनी ज़ात पर पड़ता, वरन् उसका असर चौधरी आमाराम के रक्त से आगे आने वाले हर इन्सान पर पड़ता था। किसी फ़ौज के एक सिपाही की ग़लती केवल उसी के विनाश का कारण बनती है और सिपहसालार की ग़लती से सारी फ़ौज और उसका देश तक तबाह हो सकते हैं।

चतुरसिंह इस परिवार का सिपहसालार था और आज वही अपने रास्ते से बहक रहा था। वह इस समय अपने परिवार की सीमा को संकुचित कर चुका था और वह सीमित हो गई थी हरकली, ज्ञानव्रत इनकी माता जी, ज्ञानव्रत का छोटा भाई और उनके बाल बच्चों तक-अग्निदत्त, उसका लड़का और स्त्री तथा शक्तिसिंह के बच्चों को उसने परिवार की बेल से काट कर फेंक दिया था। बहुत ढो चुका था वह उनका भार, अब और ताक़त नहीं थी उसके अन्दर उन्हें अपनी पीठ पर ढोने की।

अग्निदत्त जल-भुन तो गया ही था इस ख़त को पढ़कर। उसने संतुलित शब्दों में उत्तर दिया :

"आदरणीय भाई साहब ! आज, आपका पत्र मिला। कल बरात आने वाली है। इतने शीघ्र मुझे छुट्टी मिलनी असम्भव है। खेद है कि मैं शादी में शामिल नहीं हो सकूंगा। लड़के और लड़की को हम दोनों का बहुत-बहुत प्यार।"

: १४ :

रामप्रकाश शादी से पाँच दिन पहिले सरावे आया। आकर देखा तो सचमुच सब सामान तय्यार था। किसी चीज़ की कमी भी नहीं थी। वह अन्दर-ही-अन्दर खुश हो गया यह सब देख कर। उसके मन ने कहा कि इस बार क्या खूब उल्लू बनाया है इन लोगों को। अग्निदत्त चचा बीच में नहीं पड़े, इसी लिए यह कामयाबी मिल गई।

हरकली और ज्ञानव्रत से रामप्रकाश ने खूब घुट-घुट कर सलाह की। सब शादी का देन-लेन उन्हीं की सलाह से हुआ और शादी खूब आनन्दपूर्वक समाप्त हुई। हरकली घर की बड़ी बनी इधर-उधर 'भगवान् तेरी लीला अपरमपार है' वाली पंक्ति को गुनगुनाती फिर रही थी। उसकी माँ भी अपनी बेटी की योग्यता को देख कर फूली नहीं समा रही थी और चतुरसिंह तो लट्टू हो रहे थे अपनी बच्ची की चतुराई पर। जी में कई बार आया कि उसे उठा कर चूम लें, परन्तु भारतीय संस्कृति का ध्यान रखते हुए उन्हें अपने हृदय की उमंगों को हृदय में ही दबा लेना पड़ा।

आखीरी दिन जब बारात विदा होने लगी तो रामप्रकाश ने ज़रा अपना रूप बदला। उस दिन वह सब कुछ कर्त्ता-धर्ता मानो स्वयं ही बन गया था। न हरकली की उसे ज़रूरत थी और न ज्ञानव्रत की ही। किसी भी मामले में उनकी सलाह लेना वह आवश्यक नहीं समझता था। पारस में जो मिठाई बची थी वह सब उसने बारातियों के साथ बाँध दी। अपने एक आध मेहमान को भी उसी दिन विदा कर दिया और माँ को बैल ताँगा जुड़वा कर उसके पीहर खरकौदे भेज दिया। दूसरे दिन ज्ञानप्रकाश, चतुरसिंह और हरकली ने देखा कि वह स्वयं

भी चटकी लगा गया, सीधा पहुँच गया अपनी नौकरी पर। उसका अब सरावे में काम ही क्या बाकी था? वह तो दो दिन का मेला लगाने आया था, सो लग चुका।

हरकली के हिसाब का बही-खाता उसकी बग़ल में ही दबा रह गया और चतुरसिंह ने जो शादी के लिए घी मंगवाया था उसका बाकी रुपया माँगने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला रामप्रकाश से। जब-जब भी कोशिश की तो रामप्रकाश शादी के झमेले में घिरा हुआ पाया। ऐसी स्थिति में उसके सामने हिसाब लेकर बैठना ज़रा अच्छी बात नहीं थी। फिर वह डरते भी थे हरकली से कि कहीं वह यह न कह बैठे कि आखिर जल्दी ही क्या है? शादी के बाद सब वह अपने आप ही दे देगा। शादी की लकड़ी, थी तो अपने ही जंगल की, लेकिन काटने और ढोने वालों की मज़दूरी देनी बाक़ी थी। वह भी ज्ञानव्रत के ही सिर पर रह गई। इसी प्रकार की और भी बहुत सी छोटी-मोटी रक़में यों ही उलझी हुई छूट गईं और रामप्रकाश वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो गया। ऐसा गया कि साफ़ बिना परों के उड़ गया।

'चौबेजी चले थे छब्बेजी बनने, दूबे भी न रहे' वाली मिसाल हो गई। रामप्रकाश ज्ञानव्रत और हरकली, दोनों को चकमा दे गया, यह इन लोगों ने तीसरे दिन महसूस किया। रामप्रकाश की आख़री दिन की चुप्पी और मुस्कराहट का राज़ आज जाकर खुला। लेकिन अब पछताये क्या होत है जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत। हरकली अन्दर-ही-अन्दर उफन रही थी। काम यह ज्ञानव्रत और हरकली दोनों की सलाह से किया गया था। इसलिए किसी ख़ास को दोष भी नहीं दिया जा सकता था। मुंशी चतुरसिंह के दिल पर भतीजे के इस व्यवहार से गहरी ठेस लगी। उन्हें स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि यह सब होगा। आख़िर अपने भाग्य को ही उन्हें दोषी ठहराना पड़ा। हरकली और ज्ञानव्रत की चालों का उन्हें कुछ पता नहीं था। शक्तिसिंह की ना-मौजदगी में उसके बाल-बच्चों के साथ हमदर्दी का व्यवहार करने का उसने यह

फल पाया था ।

रामप्रकाश अपने पहलू पर मजबूत था क्योंकि वह समझता था कि यदि उसने कुछ रुपया ही उनसे लगवा लिया तो क्या बात थी ? उसके हिस्से की जमीन भी तो वे ही लोग जोत कर खा-पी रहे थे । क्या लगान दे रहे थे वे उसकी जमीन का, या अनाज की बटाई करते थे ! कोई मुफ्त का माल तो था नहीं जो ये खा-उड़ा रहे थे । उसके बाप का उस जमीन में पूरा-पूरा हिस्सा था ।

× ×

हरकली और ज्ञानव्रत की बचपन में मुंशी चतुरसिंह ने खूब पिटाई की थी । वह पिटाई की कसक अभी तक उनके दिलों में बाक़ी थी । आज की रामप्रकाश द्वारा खाई हुई हार को वे पिताजी पर ही चिपकाना चाहते थे और उन्होंने चिपका कर ही दम लिया। हरकली ने संध्या को पिताजी के सामने झल्लाकर कहा, "अब देखते जाइये अपने भाई-भतीजों के कारनामों को । हम तो बच्चे हैं न आपके ? सब कुछ बर्दाश्त करेंगे ही। लेकिन आपके भाई-भतीजों को आँच नहीं आने देंगे । हमारे शरीर की तो बोटी-बोटी भी आपकी आज्ञा का पालन करेगी । हमारे सामने तो आपने राम और दशरथ का आदर्श रखा है न । लेकिन देख लेना, एक दिन ये भाई-भतीजे ही आपको दाने-दाने के लिए मुहताज न कर दें तो क्या बात है ?"

चतुरसिंह को चुप रह जाना पड़ा अपने भतीज की कारगुजारी पर । वह इस समय यह भूल ही गये कि आखिर उन्होंने यह सब कब कहा था कि तुम रामप्रकाश की बहिन की शादी के झमेले में पड़ो। उनके सिर पर तो इस समय उनके माँ-जाये सगे भाई शक्तिसिंह की भूतात्मा सवार थी और उनका पाजी पुत्र रामप्रकाश उनकी आँखों के सामने खड़ा था, जो इस प्रकार उनके नासमझ बाल-बच्चों को उनकी आँखों के सामने ठग कर ले गया। उन्हें अफ़सोस हो रहा था कि क्या इसी दिन के लिए उन्होंने शक्तिसिंह की परवरिश की थी, उसकी शादी की थी और

उसके लड़के रामप्रकाश की शादी की थी ? अच्छा होता यदि उस बेल को वह वहीं पर सूख जाने देते। न उगता बाँस, न बजती बाँसुरी। फिर क्यों यह नौबत आती ? और अन्त में उनका विचार आकर टिक गया उन्हीं घी के रुपयों पर, जिन्हें देने का इस समय उनके पास कोई प्रबन्ध नहीं था और वह रुपया उनके गले को अपने फंदे में कसता चला जा रहा था।

'सब गलती मेरी ही है बेटी ! मैंने ही तुम लोगों के रास्ते में काँटे बोये हैं।'' गम्भीरता पूर्वक मुंशी चतुरसिंह ने कहा।

उनकी आत्मा इस समय अपने अन्दर ऐसा महसूस कर रही थी कि मानो उन्होंने कोई बहुत बड़ा पाप किया है। अपने छोटे भाइयों को पढ़ाकर, उनके विवाह किये, उन्हें खाने-कमाने योग्य बनाया, यह अपने बच्चों के साथ अन्याय किया। उन पर और उनकी कर्म-शक्ति पर उनकी स्त्री और उनके बाल-बच्चों के अतिरिक्त अन्य किसी का लेश-मात्र भी अधिकार नहीं था और यदि उन्होंने उसका उपयोग किसी अन्य के लिए किया तो उन्होंने निश्चित रूप से अपने बाल-बच्चों के साथ अन्याय किया। हरकली और ज्ञानव्रत की नजरों में उन्होंने यह एक बहुत बड़ा पाप किया था।

अपना यह पाप मुन्शी चतुरसिंह की नजरों में, जितना वह सोचते थे उतना ही और निखर कर सामने आता था। उनके भाई शक्तिसिंह और अग्निदत्त द्वारा परिवार की उन्नति में दिये गये योग में उनका अपना कुछ नहीं था। वे दोनों थे ही क्या ? गाँव के अन्य नाचीज प्राणियों की तरह वे भी जमीन न रहने पर ढोर चराने वाले ग्वाले होते या किसी जमीन वाले की ज़मीन पर हल जोतने वाले मज़दूर। उन्हें इस योग्य बनाने का श्रेय मुन्शी चतुरसिंह को ही था। इसलिए जो कुछ भी उन लोगों ने किया, उसमें उनका कोई अहसान नहीं था उस पर। उन्हें तो वह सब कुछ करना ही चाहिए था।

हरकली और ज्ञानव्रत के दिलों में रामप्रकाश से इस प्रकार मार-

ख़ज़ाने की जलन कुछ कम नहीं थी, परन्तु आज हरकली ने जो क़िला फ़तह किया था उसकी प्रसन्नता से भी दोनों की बाँछे खिल रही थीं।

पिताजी से ये बातें कुए की मन पर बठ कर जंगल के एकांत कोने में हुई थीं। यहाँ से हरकली और ज्ञानव्रत पिताजी को वहीं पर बैठे छोड़ कर घूमने के लिए अपने बाग़ की तरफ़ निकल गये। पिताजी की नज़रों से दूर होते ही दोनों प्रसन्नता से उछल पड़े और फिर ज्ञानव्रत ने छाती ठोंक कर कहा, "जीजी आज तो आपने बस कमाल ही कर दिया। रामप्रकाश हमें थोड़ा सा उल्लू बना कर चला गया तो इसे मैं उसकी कोई ख़ास अक्लमन्दी नहीं समझता। उसने ऐसा करके यह समझो कि बस अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली। हमारा रास्ता अब बिलकुल साफ़ हो गया।"

"तुम ठीक समझते हो ज्ञानव्रत! आज की बातों ने पिताजी की आँखें खोल दीं। अब मेरे लिये रामप्रकाश और अग्निदत्त चाचाजी को समझ लेना कुछ कठिन नहीं रहा। उन्हें मैं अब जिस पेंतरे पर भी चाहूंगी, नचा लूंगी। नचाना तो सिर्फ़ पिताजी का ज़रा मुश्किल था।"

"लेकिन जीजी! आज किया तुमने वाक़ई कमाल। गलती खाई हम लोगों ने और पड़ी बेचारे पिताजी के सिर।" और दोनों भाई बहिन हाथ-में-हाथ डाल कर खिलखिला कर हँस पड़े। जंगल का वायु-मण्डल लेकिन प्रफुल्लित न हो सका इस हँसी के साथ। वह उसमें अपना हृदय न मिला सका। घोर अन्धकार छाता हुआ चला जा रहा था और जंगल में रात्रि को इधर-उधर निकल कर घूमने वाले जानवरों का रव सुनाई देने लगा था। उन्होंने सुना कि एक गीदड़ बुरी तरह रोता हुआ दौड़ा चला जा रहा है। ज्ञानव्रत ने घबराकर भी अपनी वीरता का परिचय दिया, परन्तु हरकली का दिल थर-थर काँप रहा था; आख़िर, औरत-जात थी बेचारी।

"अब वापस चलें ज्ञानव्रत! और आगे बढ़ना बेकार है।" हरकली बोली।

"क्यों जीजी, क्या भय लग रहा है ? इस जरा से गीदड़ से डर गईं। पिताजी जैसे शेर का मुक़ाबिला करने वाली मेरी बहिन इस नाचीज़ गीदड़ का रोना सुन कर काँप उठेगी, यह तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।"

लेकिन हरकली और आगे न बढ़ सकी। ज्यों ही वे वापस लौटे तो सामने आसमान में चाँद मुस्करा रहा था। मानो कह रहा था, 'वाह रे पहलवानो ! तुमने आज अपने पिता पर विजय प्राप्त की है। तुम महान् हो, आदर के पात्र हो, मैं तुम दोनों के सामने नतमस्तक होता हूँ !'

और वाक़ई चाँद ने एक छोटी सी बदली में अपना मुँह छिपा लिया। इन वीर भाई-बहिनों के मुख-मण्डल का तेज वह सहन नहीं कर सकता था, उसे भय था कि कहीं उसके अन्दर का काला धब्बा उनके तेज से और फैल कर पूरे चाँद को न ढक ले।

: १५ :

सन् तीस का नमक-क़ानून तोड़ने वाला गान्धी जी का आन्दोलन चल रहा था। सभी जगह उसका ज़ोर था। मेरठ, जो कि सन् सत्तावन के विद्रोह का प्रथम केन्द्र था, वह ही भला उससे प्रथक् कैसे रह सकता था। एक आँधी उठ रही थी आन्दोलन की, और ऐसा प्रतीत होता था कि यह आँधी अंग्रेज़ी सरकार को अपने वेग में उड़ाकर भारत से सात समन्दर पार लेजाकर उनके अपने टापू पर पटक देगी।

समाज का कोई वर्ग ऐसा नहीं था जिसमें जोश नहीं था। स्कूल के विद्यार्थियों में तो जोश का कोई ठिकाना ही न था। उन्होंने तो सोच लिया था कि अब गुलाम देश में रह कर वे गुलामी की तालीम हासिल नहीं करेंगे।

रोज़ाना नये-नये जुलूस निकलते थे। सत्याग्रहियों के जत्थे नमक-क़ानून तोड़ने के लिए जाते और गिरफ़्तार होते थे। मेरठ के स्त्री और पुरुष उन्हें आदर, प्रेम और श्रद्धा के साथ विदा करते थे। देवियाँ उनके

गलों में मालाय पहनाती थीं। लाला लोग अपनी-अपनी दूकानों के सामने उनके नाश्ते तथा फल-फलौरी का प्रबन्ध करते थे और बाद में कुछ दान-दक्षिणा भी देते थे। उनके विचार से ये ही आने वाली सरकार के वे होने वाले सिपाही थे जिनके हाथों नई सरकार की बाग-डोरें संभाली जाने वाली थीं। हरकली भी इस देश-भक्ति के मामले में किसी से पीछे नहीं थी। वह जुलूसों में शामिल होती थी, तिरंगे झण्डे का गान गाती थी, थाल में हल्दी लेकर वीर सत्याग्रहियों को तिलक चढ़ाती थी, परन्तु कुछ देने-लेने के नाम पर मौन रहती थी। आखिर वह बेचारी देती भी क्या? अभागिन विधवा होकर इतना सब कुछ देश के लिये कर रही थी, यही क्या कुछ कम वीरता और त्याग की बात थी?

अपने छोटे भाई ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत को उसने ताकीद कर रखी थी, "ख़बरदार जो इन झमेलों में हिस्सा लिया। एक परिवार से देश-भक्ति में हिस्सा लेने के लिए एक ही आदमी काफ़ी होता है।" और यह काम वह स्वयं पूरा कर रही थी।

अग्निदत्त के लड़के राजू को उसने खुली छूट दे रखी थी और राजू स्वयं भी किसी के कहने की कोई चिंता नहीं करता था। नमक-क़ानून तोड़ने के लिये जाने वाले जत्थों को जब वह देखता था तो उसका दिल उमंगों से भर जाता था, जब उनके गले में मालाएँ पड़ती हुई उसे दिखलाई देती थीं तो उसकी छाती आगे को फूलने लगती थी, जब स्वयं सेवकों के मस्तकों पर नगर की देवियाँ अपने कोमल कर-कमलों से तिलक करती थीं तो उसका मस्तक आप-से-आप आगे को उभर जाता था और जब उन स्वयंसेवकों के क़दम आगे बढ़ते थे तो राजू के क़दम भी पीछे नहीं रह पाते थे। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ कर उनकी क़तारों में मिल जाता था। इस प्रकार वह कई बार उनकी पंक्ति में मिला और कई बार खिसक कर बाहर आ गया। कुछ दूर तक जलूस के साथ इसी प्रकार आगे बढ़ता गया और उसके दिल की भावना धीरे-धीरे मज़बूती पकड़ती गई। थोड़ी देर पश्चात् उसने अपने को उस जत्थे के

खींच पाया और उसने देखा कि उसके गले में भी फूल-मालाएँ पड़ रही थीं, उसके मस्तक पर भी वीर ललनायें तिलक चढ़ा रही थीं, और वह भी दुकान-दुकान पर होने वालें जलपानों का मेहमान बन गया था।

हरकली भी इस जुलूस में शामिल थी। वह भी जत्थे के वीर सत्याग्रहियों का तिलक करती थी और उसने अपने भाई राजू का भी प्रसन्नता पूर्वक तिलक किया; और उसे वीर तथा साहसी बनने का उपदेश दिया। उसका एक भाई देश पर बलिदान होने के लिए जा रहा था, इसकी उसे हार्दिक प्रसन्नता थी।

राजू एक जत्थे में भर्ती हो गया, और रात को घर नहीं आया। हरकली ने उसी दिन अपने चचा अग्निदत्त को पत्र लिख दिया, "राजू बहुत बिगड़ता जा रहा है। यहाँ किसी का कहना नहीं मानता। हमारे लाख मना करने पर भी वह कांग्रेस में भर्ती होकर नमक-क़ानून तोड़ने चला गया।"

यह सूचना मिलते ही अग्निदत्त और उसकी स्त्री के दिलों में खलबली मच गई। हरकली की चालों से अब वे अपरिश्चित नहीं थे। अग्निदत्त ने दफ़्तर से छुट्टी लेने का प्रयत्न किया, परन्तु छुट्टी न मिल सकी। छुट्टी न मिलने का भी एक कारण था और वह यह कि इस समय अग्निदत्त की वह दिल्ली वाली रौब-दौब की हेडक्लर्की नहीं चल रही थी। भटिंडा से वह यहाँ बदल कर आया था तो यों वेतन में कोई कमी नहीं हुई थी, परन्तु ड्यूटी रात-दिन की देनी पड़ती थी। दफ़्तर में बिजली के पंखे के नीचे बैठने और अपने ही हाथ से अपने आफ़िस के हेड को नचाने का काम अब उसका नहीं था।

यह यातना बाबू अग्निदत्त को अपने आर्यसमाजी चरित्र के कारण भुगतनी पड़ रही थी, जिसका कि सबक़ उन्हें मुन्शी चतुरसिंह ने पढ़ाया था। भटिंडा-आर्यसमाज के प्रधान की हैसियत से आपने बहुत सी मुसलमान लड़कियों को शुद्ध करके उनके हिन्दू घरानों में विवाह कराये थे। उनकी इन हरकतों ने उन्हें स्टाफ़ के मुसलमानों का जानी दुश्मन बना

दिया था। लेकिन वहाँ बाबू अग्निदत्त का रौब इतना जबरदस्त था कि कोई सामने आँख मिलाकर नहीं बोल सकता था।

अग्निदत्त अपनी अक्ल के सामने हलके मोटे इन्सान को कुछ समझता नहीं था। अपने इन्चार्ज और इन्सपेक्टरों को तो वह उंगली पर नचाता था। उसके काम का रेकार्ड आलीशान था और आज तक एक भी चेकर दफ़्तर में ऐसा नहीं आया था जो अग्निदत्त की तारीफ़ लिख कर न गया हो। अग्निदत्त का यह रेकार्ड उसकी एक ज़बरदस्त ढाल थी जिसपर वह बड़े-से-बड़े वार को मुस्करा कर संभाल सकता था। अंग्रेज़ अफ़सरों पर तो उसकी छाप थी।

लेकिन जो अधगोरे अफ़सर इस बीच में आये, यानी जो अंग्रेज़ तो थे नहीं और हिन्दुस्तानी भी उन्हें नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उन्होंने ईसाई धर्म क़बूल कर लिया था, और उनके माता या पिता में से एक शायद अंग्रेज भी रहता था, उनके साथ अग्निदत्त की पटरी नहीं बैठती थी।

अभी-अभी जो एक इंसपेक्टर आया, उसे स्टाफ़ के मुसलमानों ने मिलकर डाली दी, और बाबू अग्निदत्त क बारे में शिकायत की कि वह स्टाफ़ के आदमियों से रिश्वत लेता है। इन्सपेक्टर महोदय ने अपने पद के रौब में बात की जाँच किये बिना ही बाबू अग्निदत्त का वहाँ से तबादला लिख दिया।

अग्निदत्त को यह आर्डर मिला तो वह ठगा सा रह गया। कुछ समझ में न आया थोड़ी देर, कि वह क्या करे? तबादले की उसे चिंता नहीं थी, चिंता थी उसे अपमान की कि जिसे वह उन आदमियों के सामने महसूस कर रहा था, जिन्होंने वह करवाया था।

अग्निदत्त चुपचाप रात की ही गाडी से दिल्ली गया और डिवीज़-नल आफ़ीसर के बंगले पर पहुँच कर सलाम झुकाते हुए केवल इतना भर कहा, "हुज़ूर! अभी तक तो हम लोगों को पता था कि हम सुपीरियर स्टाफ़ के मुलाज़िमों का तबादला सरकार ही कर

सकते हैं। लेकिन क्या अब ये हक़ूक भी आपने अपने मातहतों को दे दिये हैं ?"

"बिलकुल नहीं बाबू ! साफ़-साफ़ कहो, क्या बात है ?" अंग्रेज़ अफ़सर ने अपनी तौहीन समझते हुए अग्निदत्त से कहा।

अग्निदत्त ने कुछ कहा नहीं, केवल अपने तबादले का आर्डर इस अफ़सर के सामने पेश कर दिया।

आर्डर को देखना था कि अफ़सर आग बबूला हो उठा। उसने गुस्से में पैर पटका और कड़क कर बोला, "डैम फूल, नोनसेन्स, ईडियट।"

और तुरन्त अपनी जेब से फ़ोटेनपेन निकाल कर उसी तबादले के आर्डर पर लिख दिया, 'ट्राँसफ़र कैंसिल्ड' और नीचे कर दिये अपने हस्ताक्षर।

बाबू अग्निदत्त ने साहब को सीधा सेल्यूट मारा, जिसका कि वह आदी था, क्योंकि यही साहब बहादुर दिल्ली में उसके दफ्तर का इंचार्ज रह चुका था।

अफ़सर द्वारा प्रदान की गई इस अमोघ शक्ति को जेब में रखकर बाबू अग्निदत्त दूसरे ही दिन भटिंडा पहुँच गये और तीसरे दिन दफ्तर में सुबह-ही-सुबह जाकर मेज़ पर बैठ कर नित्य का काम करने लगे।

बाबू अग्निदत्त नित्य की भाँति शाँतिपूर्वक काम कर रहे थे। उनके मुख़ालिफ़ लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि बाबू के माथे पर एक भी शिकन नहीं और न ही उन्हें किसी प्रकार की परेशानी है। वह तो इस तरह काम कर रहे हैं मानो तबादला हुआ ही नहीं।

तमाम स्टाफ़ में सनसनी थी। चारों ओर कानाफूंसी चल रही थी। इन्सपेक्टर को डाली देने वाले लोगों ने उसे जाकर बाबू की इस हरकत की सूचना दी तो वह सब काम छोड़कर सीधा दफ्तर की ओर आया और बिला इस बात को सोचे कि उसे इंचार्ज के दफ्तर में बैठकर बाबू को बुलाना चाहिए वह सीधा ही बाबू के दफ्तर में

पहुँच गया।

"तुमने अभी तक चार्ज नहीं दिया बाबू !" उसने पूछा।

अग्निदत्त ने तपाक के साथ खड़े होकर सलाम झुकाते हुए जेब से वह पर्चा निकाल कर साहब के सामने पेश कर दिया जो वह दिल्ली से लिखा कर लाया था।

परचे पर इन्सपेक्टर की नज़र पड़ी तो वह सन्न से रह गया। उसके पैरों के नीचे से ज़मीन निकल गई और वह उलटे ही पैरों, बिना एक शब्द कहे वहाँ से अपनी कोठी की तरफ़ चला गया। लेकिन चलते समय उसकी नज़रें उस क़साई के समान थीं जिसके सामने जिबह करने के लिए गाय तो खड़ी हो लेकिन उसका जिबह करने का औज़ार टूट गया हो।

ज्योंही इन्सपेक्टर ने गर्दन मोड़ी त्योंही अग्निदत्त मुस्कराया और उसकी मुस्कराहट के व्यंग्य को आस-पास के चपरासियों, नम्बरटेकरों, क्लर्कों और अन्य सभी लोगों ने महसूस किया। जिस तेज़ी के साथ अग्निदत्त के तबादले की बात हवा में फैली थी उसी तेज़ी के साथ उसके कैंसिल होने की भी बात फैल गई।

दफ्तर के इंचार्ज ने भी सुना तो उसने अग्निदत्त को शाबाशी देते हुए कहा, "टुमने टीक किया बाबू ! आज का डिन टुमारा बाट टा, कल का डिन अमारा बाट बी ओ सकटा टा। ए बौट कराब बाट टा कि सुपीरियर स्टाफ़ का आडमी को इन्सपेक्टर टबाडला कर डाले।"

यार लोगों ने तो अग्निदत्त को हाथों-हाथ उठा लिया इस घटना पर, और शाम को क्वार्टरों के सामने लोगों ने चन्दा करके पेड़े भी आपस में तक़सीम किये।

ये सभी सूचनाएँ मुख़ालिफ लोगों ने जाकर इन्सपेक्टर को दीं तो उसके तन-बदन में आग लग गई।

आज यह अग्निदत्त की विजय ज़रूर हुई परन्तु वह आख़िर था तो

एक अदना-सा क्लर्क ही। अपनी गुस्ताखी का फल उसे एक दिन भोगना ही पड़ा और उसे बदल कर क्लर्की से नीचे नम्बरटेकरी पर सहारनपुर से भी छै मील दूर खान आलमपुरा गुड्सयार्ड में रात-दिन की नौकरी बजाने के लिए भेज दिया गया।

कहते हैं कि भगवान् जब मुसीबत देता है तो एक ओर से नहीं देता, चारों ओर से इम्तहान लेता है। जहाँ एक ओर यह नम्बरटेकरी का परीक्षा-काल चल रहा था वहाँ दूसरी ओर हरकली भी अपना जौहर दिखा रही थी। ज्ञानव्रत भी अपनी करनी से बाज नहीं आ रहा था, और भाई साहब, वह तो गुलाम ही हो गये थे अपने इन दोनों बच्चों के।

उन्हें रह-रह कर क्रोध आ रहा था हरकली पर, कि हो-न-हो उसकी ही लापरवाही से उनका राजू पढ़ना-लिखना छोड़कर नमक-क़ानून तोड़ने की राह पर लग गया है।

अग्निदत्त को छुट्टी न मिली तो उनकी स्त्री ही मेरठ पहुँची और वहाँ जाकर उसे पता चला कि राजू काँग्रेसी जत्थे में शामिल होकर ग़ाजियाबाद चला गया है। बड़ी मुश्किल से ज्ञानव्रत को लेकर वह ग़ाजियाबाद गई तो देखा राजू सत्याग्रह आश्रम में बीमार पड़ा था। कोई सुध-बुध लेने वाला नहीं था। एक सौ तीन डिग्री बुखार था, और शरीर जल रहा था। अग्निदत्त की स्त्री ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया।

राजू को वह वहाँ से वापस ले आई, परन्तु राजू बीमारी में भी आने को तैयार नहीं था। वह जेल जाना चाहता था, नमक-क़ानून तोड़कर।

: १६ :

सरावे के मकानात और जंगल की ज़मीन पर हरकली पूरी तरह काबिज़ हो चुकी थी। ज्ञानव्रत ने खेती का कारोबार सभाल लिया था। गाँव के चौधरी लोगों में वह अपना विशेष स्थान समझता था और आस-

पास की बिरादरी में भी मूँछों पर ताव देकर बातें करता था। चार पसलियों का यह जवान लड़का जीदारी और दिलेरी में रुस्तम से कम ताक़त वाले इन्सानों की बातें करना हिमाक़त समझता था। जब कोई उसके सामने आने पर कह देता, "अरे आज तो सरावे की चौधर ही इधर चली आ रही है।" तो वह फूलकर कुप्पा हो जाता था।

अपनी तरफ़ से हरकली और ज्ञानव्रत अब यह समझ बैठे थे कि सरावे की जायदाद के वे सोलहों आने मालिक हैं। उनकी दृष्टि में शक्तिसिंह और अग्निदत्त की पीढ़ियाँ सरावे से समाप्त हो चुकी थीं। क़ानून से उनका जायदाद में एक बटा बारहवां हिस्सा निकलता था, सो वह मुक़दमें के खर्चे की डिग्री में नीलाम करा लिया जायेगा, इसका उन्हें पूर्ण विश्वास था।

घर से दो फर्लांग के फ़ासले पर गाँव के दक्षिण-पूर्व की दिशा में इनका कुआ था और उसी के पास इनकी वह ज़रखेज़ ज़मीन थी जिसे लहलहाती हुई देखकर चौधरी अभाराम के मुँह में पानी भर आया था और वह अपने पाँचों बेटों को लेकर उस पर क़ब्ज़ा करने के लिए बाज़ की तरह से टूट पड़े थे। उसी पर अब ज्ञानव्रत और हरकली की खेती लहलहा रही थी। ज़मीन यह सोना उगलती थी। जो कुछ भी बो दिया जाता था, पौबारह हो जाते थे।

हरकली मस्ती में अपने कुए के इर्द-गिर्द झूमती और इठलाती हुई फिर रही थी। ज्ञानव्रत भी उसके साथ-साथ घूम रहा था। हरकली मुस्करा कर बोली, "ज्ञानव्रत! तुम्हें पता है पिताजी अब फिर तबादला होकर मेरठ में आ रहे हैं।"

"अरे कब जीजी! कब?"

"दो ही महीने में। बस फिर वही रौब रहेगा। राजू का पत्ता मैं काट ही चुकी हूँ। अब कोई इधर-उधर की अलाय-बलाय हमारे गले में आकर नहीं फंस सकती। तुम लोगों के रास्ते में पिताजी ने जो काँटे बिछा रखे

थे, मैंने वे सब साफ़ कर दिये हैं।"

"जीजी! तुम न करतीं तो ये मुसीबतें हमें आइन्दा बड़ा दुख देतीं। और एक यह भी अच्छा ही हुआ कि चचा शक्तिसिंह जल्दी ही मर गये। यदि वह न मरते तो हमें सरावे की ज़मीन पर कब्ज़ा करने में दिक्कत होती।" और फिर अपनी लहलहाती हुई खेती की तरफ़ इशारा करके बोला, "यह ज़मीन जो सोना उगलती है, उन्हीं के पेट में समाई रहती, हमें एक खूड भी न मिलता।"

"भगवान् भी तो आखिर कोई चीज है ज्ञानव्रत! मैं कहती हूँ भगवान् में विश्वास करो। मैं भी तो वही कहती हूँ जिस बात की भगवान् मुझे प्रेरणा देते हैं। चचा शक्तिसिंह के मर जाने से हम लोगों का रास्ता साफ़ हो गया। कुछ दिन में सरावे के लोग-बाग यह भी भूल जायेंगे कि यहाँ शक्तिसिंह नाम का कोई आदमी रहता भी था या नहीं।" हरकली ने कहा।

"भूल क्या जायेंगे जीजी, भूल गये। सब लोग आज हमारा ही गुण गाते हैं। अभी तुम देखोगी कि आस-पास के देहात में तुम्हारे ही भाई का डंडा पुजा करेगा। किसी की क्या मजाल जो सामने भी पड़ सके। और रही बात रामप्रकाश, वेदप्रकाश और राजू की, सो उन्हें तो मैं नाखून के मैल के बराबर भी नहीं समझता।" गर्व से सीना उभार कर ज्ञानव्रत बोला।

"क्यों नहीं! मुंशी चतुरसिंह का नाम तुम्हें रौशन करना है। उन्हीं की बंसबेल को पल्लवित और फलित करना है। तुमसे मुझे यही आशा है। फिर रामप्रकाश और अग्निदत्त चाचाजी इस समय सरावे आने वाले नहीं हैं। नौकरियाँ छोड़कर वे यहाँ आकर नहीं बस सकते। धर्मप्रकाश और राजू अभी भुनगे ही हैं, फूंक मार दो तो उड़ जायें। इसी बीच में मैं वह क़ानूनी दाव-पेंच पिताजी से फलवाती हूँ कि कहीं खेवट और खतौनी में उनके नामोनिशान तक दिखलाई न दें।" हरकली गम्भीरता पूर्वक बोली।

"बस असल बात तो तभी बनेगी जीजी ! उससे पहिले तो मुझे यह सब हवा का सा ही बबूला ही नजर आता है।" उसी तरह संजीदगी के साथ ज्ञानव्रत बोला। मानो वस्तुस्थिति की गम्भीरता को वह थोड़ा-थोड़ा समझने का प्रयास कर रहा था।

"तुम चिन्ता न करो इसकी। मैं जो तुम्हारे सिर पर बैठी हुई हूँ इन बातों की फ़िक्र करने के लिए। तुम लोग तो खाओ-पीओ और मस्त रहो। अपने शरीर की ताक़त को बढ़ाओ। अपने छोटे भाई को पहलवानी के दाव-पेंच सिखाओ। उसके अन्दर अंधे भैंसे की शक्ति भर दो कि जिससे वह तुम्हारे और मेरे इशारे पर, जहाँ भी जरूरत पड़े, भिड़ जाये। अक्ल से काम लेने के लिए मैं काफ़ी हूँ।" हरकली ने कहा।

"तुमने बहुत ठीक सोचा जीजी ! हमारा छोटा भाई हमारा पूरी तरह फ़रमाबरदार है। वह ताक़त में भी किसी से कम नहीं है। और जीजी ! तुम सच समझो, ताक़त की तो मेरे इन भुजदण्डों में भी कमी नहीं है।" वह छटांक भर का पिदना सा आदमी अपने भुजदण्डों को रस्सी की तरह ऐंठता हुआ बोला, "रामप्रकाश, धर्मप्रकाश, राजू और अग्निदत्त जैसे नाचीज इन्सानों को मैं मकड़ी और मच्छर से ज्यादा और कुछ नहीं समझता।"

ज्ञानव्रत की दिलेरी की बातें सुनकर हरकली का हौसला बढ़ा और उसका साहस दुगना हो गया। उसने गर्व के साथ अपने भाई की उभरती हुई जवानी की तरफ़ देखा और समझा कि वह वाक़ई कुछ कर सकेगा।

"लेकिन जीजी, अगर सच पूछो तो मुझे अभी तक पिता जी पर भरोसा नहीं हो रहा। और तुम देख लेना कि हमारे विचारों और उम्मीदों की किश्ती अगर कभी डगमगाये या डूबेगी, तो पिता जी की ही वजह से डूबेगी।" आशंकित होकर ज्ञानव्रत बोला।

ज्ञानव्रत की इस बात से हरकली भी सहमत थी। अपने पिता जी

की कमज़ोरियों को वह जानती थी और इसी लिए उनकी सब कमज़ोरियों को वह धीरे-धीरे अपने हाथ में लेती हुई चली जा रही थी।

हरकली को पिता जी की सब तरफ़ से नाकाबन्दी करनी पड़ती थी। पिता जी के अन्दर उसे चारों तरफ़ न जाने कितने सूराख़ दिखलाई देते थे और ये सभी उनकी कमज़ोरियों के सूराख़ थे, जिनके अन्दर से उनके परिवार के सगे-सम्बन्धी उनके अन्दर घुस बैठते थे। हरकली इन सभी सूराखों पर प्लास्टर करती हुई चली जा रही थी। वह उनके शरीर, दिल और दिमाग़ में कोई भी ऐसा सूराख़ नही छोड़ना चाहती थी कि जिसके रास्ते से उनके किसी भी परिवार के आदमी या सगे-सम्बन्धी की आवाज़ उनके पास तक पहुँच सके। वह उनके अन्दर केवल एक ही सूराख रहने देना चाहती थी, जिसके द्वारा हरकली की बात उनके पास तक पहुँचे और इस सूराख पर हरकली अपना पहरा रखती थी। कारण कि इस सूराख को वह जहाँगीर के घंटे की जंज़ीर नहीं बना देना चाहती थी कि जो चाहे उसे हिलाये और शाह के पास तक अपनी कहानी पहुँचाये।

इसके दूसरे माने यह थे कि हरकली मुंशी चतुरसिंह के चारों तरफ़ अपने ख़यालातों की एक दीवार खड़ी करती हुई चली जा रही थी और इस दीवार का वह एक ऐसा सुदृढ़ क़िला बना देना चाहती थी कि जिसके अन्दर का वातावरण हर समय हरकली-ही-हरकली बोले, हरकली-ही-हरकली सुने।

"मैं एक क़िला बना रही हूँ ज्ञानव्रत! तुम चिन्ता न करो और फिर देखना कि पिता जी को उसके अन्दर बन्द करके कितने आराम के साथ रखती हूँ। परिवार और रिश्तेदारों की जिन उलझनों में वह फंस चुके हैं उनसे एक ही झटके में उन्हें खींच कर बाहर ले आऊँगी। मैं उनका बुढ़ापा दुनियाँ की परेशानियों में ख़राब नहीं होने दूँगी। मुझे देखना है कि अब कौन इस क़िले के अन्दर घुस पाता है।" यह कहते

हुए हरकली की भंवें तनती जा रही थीं और उसके दृढ़ विश्वास तथा कर्मठता के सामने ज्ञानव्रत खड़ा-ही-खड़ा नतमस्तक हो रहा था।

"तुम अवश्य कर सकोगी जीजी! इस विकट कार्य को और सच जान लो कि इसके बिना निस्तार भी नहीं है। रामप्रकाश ने शादी के घी का रुपया पिता जी को न देकर सच जानो बहुत ही अच्छा किया। एक ज़माना वह भी था जब पिता जी को रामप्रकाश से ज्यादा घर में कोई प्यारा ही नहीं था। वह प्यार आज सब हवा हो गया। लेकिन अभी तक, चाहे जो कुछ भी तुम कहो, अग्निदत्त चाचा जी का असर उनके मस्तिष्क पर से नहीं उतरा है।"

और यह बात सच थी। इस बात की सचाई के सामने हरकली को भी नतमस्तक होना पड़ा। वह ज्ञानव्रत की बात को फौरियों पर नहीं उड़ा सकती थी, उसमें भारीपन था। यह सच था कि अग्निदत्त के मुन्शी चतुरसिंह पर जमे हुए प्रभाव की जड़ें वह काफ़ी हद तक अपने पैने नाखूनों से कुरेद चुकी थी, उस मज़बूत पैंदे के तने को अपने तेज़ दाँतों से रगड़-रगड़ कर अधकटा कर चुकी थी, परन्तु वह अभी वहीं, अपने ही स्थान पर मज़बूती के साथ खड़ा है। अपने अन्दर से हरकली यह जानती थी कि वह बेलाग पेड़ है और मुन्शी चतुरसिंह का सहारा पाकर नहीं खड़ा है। वह खड़ा है अपनी ही जड़ों पर। और वे जड़ें काफ़ी मज़बूत हैं। उन्हें नोंचकर यों साधारणतया उसका उखाड़ फेंकना उसके लिये आसान काम नहीं है।

फिर भी हरकली एक मज़बूत इरादे की औरत हैं और जो कुछ उसने स्याह या सफ़ेद करने की ठान ली है उसमें बाल बराबर भी फ़र्क आने वाला नहीं, उसमें ख़म नहीं पड़ सकता था, उसका रास्ता नहीं बदल सकता था।

वह गम्भीरता पूर्वक बोली, "ज्ञानव्रत! तुम चिंता न करो किसी बात की। परमात्मा पर भरोसा रखो। वह सब ठीक ही करेगा। पिता जी का दिमाग़ खुद-ब-खुद रास्ते पर आजायेगा। समय अपने आप

बतला देगा कि हम लोग उनके हित की बातें करते हैं या उनके भाई भतीजे। और तुम देखोगे कि बहुत ही जल्द पिता जी का मन उन सब लोगों की तरफ़ से फिर जायेगा।"

वातावरण बातों का ज़रा गम्भीर हो उठा था। इसलिये इस टापिक को यहीं पर छोड़कर दोनों अपने खेत के डौलों पर से होते हुये आगे निकल गये। खेत के दूसरे किनारे पर जाकर देखा कि उनकी आलू और अरवी की खेती लहलहा रही थी। आलू और अरबी की ज्ञानव्रत ने नये तरीक़े से खेती की थी, सोसायटी से खाद लाकर डाला था। गाँव में कुछ माली लोग आलू-अरवी सब्ज़ी के लिये, ज़रूर बोते थे, परन्तु खेती के रूप में यह पहला ही प्रयास था सरावे के जंगल में, और उसके आसार बहुत ही अच्छे दिखलाई दे रहे थे।

"ज्ञानव्रत यह सब्ज़ी की खेती हमें बहुत अच्छी पैसा देगी।"

"हाँ हाँ जीजी! इसकी बड़ी भारी पैदावार है। हापुड़ के आस-पास इनकी ज़बरदस्त खेती होती है। कई लाला लोगों ने काश्त कराई है और बड़ा धन कमाया है। जीजी! भगवान् ने चाहा तो कुछ ही दिनों में हमारे भी लाखों के वारे-न्यारे होंगे।" ज्ञानव्रत दिल में उमंग लेकर कह रहा था। लाखों से कम की बातें इन दिनों ज्ञानव्रत के दिमाग़ पर चढ़ती ही नहीं थीं। उसकी इन बातों को सुनकर तो न केवल हरकली वरन् मुन्शी चतुरसिंह का दिमाग़ भी उन्नति के उच्चतम शिखर पर घूमने लगता था। उन्हें भी अपने भविष्य का स्वर्ण-युग दिखाई दे जाता था और अपने ऊपर भी गर्व होने लगता था कि उन्होंने ऐसे नर-रत्न को जन्म दियाकि हैं जो सरावे की इस ज़मीन में से, जिससे शक्तिसिंह कभी ठीक तरह अपना पेट भी न भर सका, लाखों रुपयों की न्योंलियाँ भर-भर कर एक दिन उनके सामने लगा देगा। ज्ञानव्रत की माता जी को तो यह सब एक ख्वाब सा दिखलाई देता था। लाख को हज़ार और हज़ार को लाख कह कर वह अपने मन-ही-मन दुहराती और प्रसन्न हो जाती थीं। बस अन्त में वह इतना ही समझती थीं कि उनका

लाल ज्ञानव्रत रुपयों की खेती कर रहा है जिस से जब जितने भी रुपये चाहें उखाड़ लिये जायेंगे।

प्रमोद का साम्राज्य छाया हुआ था जिसमें हर ओर मंगल ही-मंगल था। आमदनी की कुछ थाह नहीं थी। घर-खर्च करके भी काफ़ी बचत हो रही थी। ज़मीन-जायदाद सब अपनी छाती के तले थी। बाल बच्चों के शादी-विवाह के फर्ज़ की सरिता को भी चतुरसिंह तैर कर पार कर चुके थे। सिर्फ एक छोटे लड़के की शादी करनी बाकी थी, सो वह मामूली बात थी।

घर भर की आँखें इस समय ज्ञानव्रत की बहू की तरफ़ लगी हुई थीं। मुन्शी चतुरसिंह पिता से बाबा बन जाना चाहते थे किसी बालक के। कई वर्ष हो चुके थे ज्ञानव्रत की शादी हुए, और घर में बहू को रहते परन्तु भगवान् ने उनकी अभी तक यह प्रार्थना नहीं सुनी थी। रोज़ सुबह-शाम संध्या करते समय उन्हें इस बात की याद आजाती थी और एक बार ही नहीं कई बार भगवान् के सामने मस्तक झुका कर वह पोते की मनोकामना प्रकट करते थे, यज्ञ में पोते के नाम की आहूति देते थे। आँचवन करते समय भी उन्हें ज्ञानवृत की वह गोरी-गोरी पतली-पतली बहू और उसकी गोद में कोई कुलमुलाता हुआ जीव देखने की कामना रहती थी।

ज्ञानवृत की माता जी तो अधीर ही रहती थीं इस बात को लेकर। उन्हें तो बल्कि चिन्ता भी होने लगी थी कि आख़िर इतने दिन शादी का हो जाने पर भी अभी तक फल क्यों नहीं लगा। गाँव की बड़ी-बूढ़ियों में चर्चा होती थी तो वे सब सामने सहानुभूति प्रकट करती हुई कहती थीं। "हरकली की माँ अभी देर ही क्या हो गई है? भगवान् सब देगा, आखिर देगा क्यों नहीं? जब बेल है तो उस पर फल जरूर लगेंगे।" फिर गाँव की दूसरी बहुओं की मिसालें पेश करके कहतीं, "फलांनी के शादी के चार साल बाद बच्चा हुआ था, फलानी के पाँच साल बाद और फलांनी के तो पूरे दस साल बाद बेटा

जन्मा था।" हरकली की मां का भी मन उमंग से भर जाता। उसे भी आशा बंध जाती कि किसी दिन उसकी बहू की भी गोद ज़रूर भरीपुरी होगी।

हरकली और ज्ञानव्रत की कार्य कुशलता से इस समय मुन्शीचतुरसिंह के घर का वातावरण आनन्दमय था। हरकली अपने मन ही मन बुआ जी बन जाने के लिये उत्सुक थी। इस प्रकार मुन्शी चतुरसिंह का परिवार अपने अन्दर धन और बाल-बच्चों की दिशा में फल फूलने की कामना लिए उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा था।

: १७ :

ज्ञानव्रत का आज कल परिवार में बोल-बाला था और वास्तव में घर का सिरताज आज-कल मुन्शी चतुरसिंह न होकर ज्ञानव्रत ही था। मुन्शी चतुरसिंह भारत की प्राचीन संस्कृति के क़ायल थे। हमारे यहाँ यह मान्य है कि जब तक बच्चा पाँच वर्ष का हो तब तक उसे लाड़-प्यार करना चाहिए, अठारह वर्ष तक ताड़ना और फिर उसे बन्धु के समान समझना चाहिए। ज्ञानव्रत अब तीसरी स्टेज में था। भाई का नाता वह प्राप्त कर चुका था ज्ञान और विद्या में तो वह चतुरसिंह से कहीं आगे था। उसके ख्वाब भी चतुरसिंह से बड़े थे, उसमें साहस भी उनसे अधिक था। मुन्शी चतुरसिंह ने जहाँ हज़ारों के ख्वाब देखे थे वहाँ ज्ञानव्रत लाखों से कम की तो बातें करता ही नहीं था और कभी-कभी तो जोश में आकर करोड़ों पर भी ज़बान घुमा जाता था। मुन्शी चतुरसिंह के मुँह में भी पानी भर आता था बेटे के इन ख़याली पुलवों पर।

घर में हरकली ने और बाहर ज्ञानव्रत ने, सम्पूर्ण सुख, शान्ति और समृद्धि का वातावरण बिछा दिया था। ज्ञानव्रत की बातें सुनकर तो लोग-बाग दाँतों तले उँगली दबाते थे। उनकी समझ में ही नहीं आता था कि उसकी इस छोटी सी खोपड़ी में आखिर इतनी बड़ी अक्ल कैसे समाई हुई है।

ज्ञानव्रत का जहाँ रौब अपने पिताजी, माताजी, छोटे भाई और

पत्नी पर था, वहाँ अपनी ससुराल वालों पर भी उसका दबदबा खूब जमता जा रहा था। उसकी अक्ल का लोहा उसके ससुर भी मानने लगे थे। अपने ससुर से बातें करता तो कहता, "हमारा तो सब कुछ पिताजी ने ही चौपट किया हुआ है। वरना आज न जाने कितना रुपया होता अपने पास। भाई भतीजों के लिए ही मरते-मरते ये दिन आगये और उनका पूरा न पड़ा।"

"तुम्हारा ख़याल ठीक है ज्ञानव्रत! इन खानदान वालों का पेट कभी भरता ही नहीं। मैंने भी न जाने कितना कुछ किया है किस-किस के लिए, लेकिन ऐसा समझो कि बस रेत को पानी दिया है। और फिर तुम्हारा चचा वह अग्निदत्त तो एक नम्बर का घाघ आदमी है। उसके सवाल का तो कुछ जवाब ही नहीं। उसका काटा पानी नहीं माँग सकता।" ज्ञानव्रत का ससुर अपने दिल के अन्दर एक पुरानी कसक लेकर बोला।

"अजी वे दिन हवा हुए जब ख़लीलख़ाँ फ़ाख़्ता उड़ाया करते थे। अब तो सब के पर क़ैंच होते जा रहे हैं। हरकली जीजी ने सब की नसें ढीली कर दी हैं। और तो क्या उन्होंने पिताजी के भी इधर-उधर बहकने को रोक दिया है। अग्निदत्त चाचाजी के जहर को भी अब देखना वह कैसे निकाल कर फेंकती हैं। जीजी का कहना है कि उस साँप को यदि उन्होंने बरसाती केंचुआ न बना कर छोड़ा तो उनका नाम भी हरकली नहीं।"

"अच्छा! तो यह बात है।" मुस्कुराते हुए ज्ञानव्रत के ससुर बोले। उनके दिमाग़ को ज्ञानव्रत के इन शब्दों से बहुत सन्तोष मिला।

"अब हम लोग तक़सीम दायर कराने वाले हैं पिताजी से। कुल जमीन के दस हिस्सों पर क़ानूनन पिताजी का नाम है और उन दोनों फ़रीक़ों को सिर्फ़ एक बटा बारहवाँ हिस्सा मिलना है। यदि सीधी तरह मान गये तो मान गये वरना वह हिस्सा भी हम लोग अपने ख़र्चे की डिग्री में नीलाम करा लेंगे।" जरा अकड़ कर ज्ञानव्रत ने अपनी दो-

चार बालों वाली मूँछों को ऐंठते हुए कहा ।

ज्ञानव्रत के ससुर ने आज अपने मन से अपनी लड़की के लिए वर छाँटने की दानिशमन्दी की सराहना की और देखा कि उसकी लड़की रानी बनी बैठी है सरावे के इस खानदान की पूरी जायदाद पर । यह ख्वाब उसने उस दिन भी देखा था जिस दिन वह अग्निदत्त को उनका पुराना कर्ज़ उतारने के लिये नया कर्ज़ देने गया था, लेकिन उस दिन उसकी यह चाल न चल सकी थी । आज उसके मस्तिष्क की वह खलिश आप-से-आप भगवान् की कृपा से भरती हुई दिखलाई दी ।

ज्ञानव्रत के साथ उसका छोटा भाई भी आया था । ज्ञानव्रत के ससुर की नज़र उसकी तरफ़ गई, उनके परिवार की एकाकी स्थिति पर गई, उसकी तन्दुरुस्ती पर गई और फिर अपनी छोटी लड़की पर गई तो उसे घर बैठे-बिठाये ही अच्छा खासा दामाद मिल गया ।

ज्ञानवृत दूसरे दिन चला आया, परन्तु छोटे भाई को उसके ससुर ने नहीं आने दिया । कह दिया, "दो चार दिन और रहकर यह आ जायेगा । तुम जाओ, तुम्हें घर का काम-काज देखना होगा ।"

ज्ञानवृत ने इसे मंजूर कर लिया । वह वहाँ अधिक दिन नहीं ठहर सकता था क्यों कि उसके सामने परिवार के अहम मसले उलझे हुए पड़े थे और उन्हें उसे जाकर ठीक करना था । ये मसले अन्दरूणी और बाहरी दोनों प्रकार के थे । अन्दरूणी मामलात का सम्बन्ध केवल उसके अपने परिवार और उसमें भी मुन्शी चतुरसिंह की रोक-थाम और उनकी नाकेबन्दी से था । मुन्शी चतुरसिंह के अपने भाई और भतीजों की तरफ़ बहाव को रोकना, उनके जा और बेजा गुस्से को इसलिए सहन करना कि दुधाल गाय की लातें भी बर्दाश्त की जाती हैं, परन्तु साथ ही जिस प्रकार दूध निकालते समय गाय की टाँगों में घँगना बाँध देते हैं उसी प्रकार अपने पिताजी की भी स्वतंत्र चाल पर बन्दिश लगाना, गाँव की खेती को खेती मात्र न रखकर एक बड़ा फ़ार्म बनाना ; नये बाग़ात लगाना, कुए खुदवाना; गाँव में एक ऊँट की चक्की लगाना ; साथ-ही-

साथ उसका विदेश जाने का भी जोड़-तोड़ चल रहा था। रुपया वह बे इन्तहा कमाना चाहता था। मामूली रुपये से उसका काम नहीं चल सकता था। उसे अपनी बिरादरी का ही नहीं, हिन्दुस्तान का एक अजीबो ग़रीब इन्सान बनना था। एक अदना इन्सान से हिन्दुस्तान का अग्रगण्ड पूँजीपति बन जाने की कितनी ही कहानियाँ वह सुन चुका था।

उसने सुना था कि अफ्रीका में सोने और चाँदी की खानें हैं और उसका विचार था कि यदि वह वहाँ पहुच गया तो ज़रूर किसी सोने या चाँदी की खान का पता वह लगा लेगा। फिर पैसे की क्या कमी रहेगी। जितना चाहेगा ज़मीन से खोद लिया करेगा।

ज्ञानव्रत ने अपनी विरादरी के किसी महाशय की खोज खबर निकाली, जो अफ्रीका में नौकरी करते थे और उनसे तालमेल लगाकर अफ्रीका जाने के पास पोर्ट के लिये भी अर्जी दे डाली। ससुराल से लौट कर मेरठ आया तो उसका अफ्रीका का खत आया हुआ पड़ा था। हरकली ने मुस्कराते हुए लाकर वह पत्र उसके हाथों में दिया और बोली, "लो मिठाई खिलाने की बात है ज्ञानव्रत! लेकिन मेरा मन नहीं चाहता कि तुम अफ्रीका जाने की बात ठानो। यहाँ ही तुम्हारे पास किस बात की कमी है जो समुद्रपार की यात्रा करना चाहते हो। देश-विदेश में तो वे मारे-मारे फिरते हैं जिनके घर पर खाने-कमाने का कोई साधन ही नहीं होता।"

हरकली की यह बात सुनकर और इसे अक्ल से ज़रा छोटी समझकर ज्ञानव्रत मुस्कराया और मीठे स्वर में गम्भीरता पूर्वक कहा, "जीजी! आदमी के पास जो कुछ है उसी पर सन्तोष नहीं कर बैठना चाहिये। सन्तोष आदमी की तरक्की को रोक देता है। आदमी तभी तक तरक्की करता है जब तक उसके अन्दर अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति असन्तोष बना रहता है।"

हरकली आज तक संतोष की ही महिमा का बखान सुनाती आई थी। मुन्शी चतुरसिंह भी हमेशा संतोष को ही बड़ी चीज मानते थे,

परन्तु आज जब हरकली ने गहरी दृष्टि से देखा और पैनी अक्ल से कुरेदा तो वास्तव में उसे ज्ञानव्रत की बात में ठोस सचाई दिखलाई दी।

ज्ञानव्रत मुस्कराकर बोला, "जीजी आज मैंने आप से जो बात कही, वह दक़ियानूसी पुरानी रूढ़िवादी चाल की बात नहीं है। यह तरक्की पसन्द लोगों की बात है, जो दिन-दूनी और रात चौगुनी तरक्की करते चले जा रहे हैं; जो कुछ वे कर लेते हैं उसी पर संतोष करके नहीं बैठ जाते। ज़रा तुम ही सोचो कि अगर तुम जो कुछ पिता जी ने किया था उसी पर संतोष करके बैठ जातीं तो क्या यह सराये की लहलहाती हुई खेती आज नज़र आती? तुम और मैं परिवार की पुरानी जंजीरों में बंधे-बंधे अग्निदत्त चाचाची की गुलामी में जिन्दगियाँ काट देते। पिताजी के बाद वह ही तो परिवार की बागडोरें संभालते। लेकिन तुम्हारे मन में उस पुरानी लकीर पर चलने के प्रति असंतोष हुआ और तुमने उस लकीर को काट डाला।

आख़िर मैं पूछता हूँ जीजी! कैसा परिवार? पिता जी की कमाई और पिताजी के नाम की शोहरत पर लल्लू-पंजू चचा-भतीजे ऐश करें और हम संतोष का सहारा लेकर बेवकूफ़ों की तरह उनका मुँह ताकें, यह कहाँ की अक्लमन्दी है।"

ज्ञानव्रत थोड़ा-सा बहक गया अपनी बात से। विषयान्तर हो गया, परन्तु इस विषयान्तर से हरकली को कोई परेशानी नहीं हुई। क्यों कि ज्ञानव्रत के शब्द हरकली की कार्य-प्रणाली को बल दे रहे थे, उसे साहस प्रदान कर रहे थे। वह रस ले रही थी इन बातों में। उसने मन-ही-मन ज्ञानव्रत की बुद्धिमत्ता की दाद दी और उसके तर्क की सराहना की। पिताजी की हज़ार बातों को काट डालने का मानो ज्ञानव्रत ने उसे एक हथियार दे दिया था यह।

अन्दरूणी मामलात के बाद ज्ञानव्रत को बाहरी पेचीदगियाँ सुलझानी थीं। इन बाहरी पेचीदगियों का सम्बन्ध अग्निदत्त और शक्तिसिंह की औलाद के साथ अपने उन मामलात को देखना था जिनसे कि मुंशी

चतुरसिंह की औलाद के हक़ हकूक टकराते थे। मुंशी चतुरसिंह की,जो अपने को, अग्निदत्त को और शक्तिसिंह की औलाद को एक परिवार मान बैठे थे, यह वास्तव में नासमझी और बेवकूफ़ी की बात थी ज्ञानव्रत की नज़रों में। उसकी दृष्टि में उसका परिवार केवल मुंशी चतुरसिंह और उनकी औलाद तक ही सीमित था। लम्बे-चौड़े परिवार की भावना उसके खयाल से एक फ़जूल का जाल-जंजाल था, जिसमें फंसा रहकर कोई अपने फ़र्ज़ को समझ ही नहीं सकता था, कोई तरक्की कर ही नहीं सकता था।

"क्या यही परिवार है जीजी! कि एक भाई अपनी हड्डियाँ पेलता-पेलता चुबानों तक पहुँच जाये और दूसरे के कानों पर जूँ तक न रेंगे। घर का बड़ा तो अपना फ़र्ज़ निभाता-निभाता अपने बाल-बच्चों का गला घोंटता चला जाये और छोटे भाई ऐश करते रहें, उनके बाल-बच्चे मौज उड़ाते रहें और अपनी आमदनियों को अलहदा जोड़ते रहें।" ज्ञानव्रत ने हरकली के सामने कुर्सी पर बैठते हुए कहा। उसके तन-बदन में आग भभक उठती थी जब वह रामप्रकाश और उसके पिता शक्तिसिंह की बातों को लेकर बैठ जाता था।

आज यकायक उसकी आँखों में खून उतर आया रामप्रकाश की याद आ जाने पर। अभी कल का ही तो क़िस्सा था कि जब वह अपने पिताजी मुंशी चतुरसिंह के साथ मेरठ के सर्राफ़े बाज़ार से गुज़र रहा था। वह सर्राफ़, जिसके पास कि चतुरसिंह ने ज्ञानव्रत की बहू के दस्तबन्द गिरवीं रख कर रामप्रकाश की बहिन की शादी में ख़रीदे हुए घी के रुपयों का भुगतान किया था, रास्ता रोक कर खड़ा हो गया और उसने ज़रा सख्त स्वर में कहा, "मुंशीजी! आपके सब वायदे ग़लत हो चुके। अब मेरी रक़म मुझे मिल ही जानी चाहिए, मैं इससे ज्यादा इन्तज़ार नहीं कर सकता।"

मुंशी चतुरसिंह ने वे दस्तबन्द अपनी बहू के लिये कब-कब और कैसे-कैसे रुपया जोड़कर बनवाये थे, यह पूरा नक्शा उनकी आँखों के सामने

था। उन्हें वे दस्तबन्द जी-जान से भी ज्यादा प्यारे थे, परन्तु इस समय वे फंसे थे उस सर्राफ़े के चंगुल में। रुपया देने के लिए उनके पास था नहीं। तो करें क्या ?

आखिर ज्ञानव्रत ने दिल पर पत्थर रख कर कह ही दिया, "कोई बात नहीं पिता जी ! दस्तबन्द फिर बन जायेंगे। आप इस समय इन्हें काट डालिये और अपना रुपया लेकर यह बाकी रक़म हमें दे देंगे।"

"कहिये मुंशीजी ! क्या काट डालूं दस्तबन्दों को ?" सर्राफ़ ने मुस्तैदी के साथ फिर मुंशीजी से पूछा।

इस समय मुंशीजी ने भी किसी प्रकार कह ही दिया, "काट डालिये।"

हरकली को अभी तक पता नहीं था इस बात का। जब ज्ञानव्रत ने उसे यह घटना सुनाई तो वह आधे पाव की औरत भंभीरी की तरह नाच उठी। कुर्सी पर बैठा रहना उसका मुश्किल हो गया और हाथों को लचकाती हुई ज़रा तेज़ आवाज से बोली, "तो कट गये दस्तबन्द !"

उसके दिल पर भी दस्तबन्दों के कट जाने की गहरी ठेस लगी। गाँव की औरतों को जब उसने वे दस्तबन्द दिखाये थे तो उनकी तारीफ़ के पुल बाँधने में जो-जो कुलाबे भिड़ाये थे, वे सब इस समय हरकली को एक ख्वाब के समान दिखाई दिये।

"तुमने सच कहा भय्या ज्ञानव्रत ! बड़े भाई के अहसानात को छोटे नहीं समझ सकते, बल्कि वे तो उल्टा उसे सटक कर अपने पेट में उतारने की बातें ही सोचते हैं। शक्तिसिंह चाचा के लिए क्या-क्या नहीं किया पिताजी ने ? जितने दिन जिये कभी एक फली तक नहीं फोड़ कर दी। अच्छा खाया और अच्छा पहिना; ज़िन्दगी में जितने दिन जिये खूब गुलछर्रे उड़ाये..."

"गुलछर्रे ही नहीं जीजी ! खूब अय्याशियाँ कीं।" बीच ही में ज्ञानव्रत कड़ककर बोला, "तुम्हें अभी बहुत कम बातों का पता है

जीजी ! मैं इस बीच में गाँव में रहा हूँ तो उनकी सब पोलें खुली हैं मेरे सामने । चचा क्या था, एक नम्बर का अय्याश आदमी था । बस पिताजी के सामने आने पर दूध का धुला गाय का बछड़ा सा बन जाता था । मानो कुछ जानता ही नहीं था । इस पर हमारे पिताजी भी सीधे-सादे, बस क्या कहूँ पूरे मिट्टी के माधो, फूलकर एकदम कुप्पा हो जाते थे कि उनका छोटा भाई कैसा फ़रमाबरदार और नेकनीयत है ।"

"बस रहने ही दो भय्या ! मैं सब कारनामे सुन चुकी हूँ । पिताजी इतने सीधे न होते तो हमारी यह दशा ही क्यों होती ? उन्हें तो बस हम लोगों पर गुस्सा करना और हमारी चमड़ियाँ उधेड़ना आता है। इनसे कोई घर को लुटाने को कह दे तो घर की एक भी चीज कल घर में नजर न आये । वह तो भगवान् ने नौकरी भली लगा दी जो हम लोगों का पेट भर गया, वरना सच जानो पेट भी न भरता ।" हरकली ने क़िस्मत पर हाथ मारते हुए कहा ।

शक्तिसिंह और रामप्रकाश का नजला धीरे-धीरे मुंशी चतुरसिंह पर ढलना शुरू हो गया था । मुंशी चतुरसिंह भी जब कभी एकांत में बैठकर सोचते थे तो उन्हें अपनी जिन्दगी के अधिकांश कामों में अपनी ही भूल नजर आती थी । अपनी औलाद के लिए ही अब वह सब कुछ आगे से करेंगे, किसी अन्य के लिए नहीं, ऐसा विचार उनका बनता जा रहा था । अभी कल दस्तबन्दों के कट जाने से उनके दिल और दिमाग़ पर एक भारी सदमा पहुँचा था और वह कुछ सोच ही नहीं पा रहे थे कि आखिर क्या करें ।

हरकली समय पर चूकने वाली औरत नहीं थी । अपने तप और त्याग से इस समय वह मुंशी चतुरसिंह के परिवार में सब की पूज्यनीय बनी हुई थी । मुंशी चतुरसिंह के दिल में उसका स्थान एकाकी बन चुका था । उनके परिवार के घर-गृहस्थी के सभी कामों का संचालन वह कर रही थी । ज़रा ग़मगीन सा चेहरा-मोहरा बनाकर बैठक में बैठे पिताजी

के पास जाकर कुर्सी पर बैठ गई और उसी संजीदगी के साथ, जैसा वहाँ का वातावरण बना हुआ था, बोली, "ज्ञानव्रत से पता चला है कि सर्राफ़ ने भाभी के दस्तबन्द काट डाले। क्या यह सच है ?"

"हाँ हरकली! वह बेचारा कहाँ तक रुकता? हमारे सभी वायदे ग़लत हो चुके थे और हम रुपये का कोई प्रबन्ध नहीं कर सके।" गम्भीरता पूर्वक मुंशी चतुरसिंह ने जवाब दिया।

"ठीक है!" गम्भीर मुख-मुद्रा लिए हरकली ने भी कहा।

"शक्तिसिंह और शक्तिसिंह की औलाद दोनों ही नालायक निकले।" रंजीदा मन से मुंशी चतुरसिंह ने कहा।

"नालायक!" आश्चर्य प्रकट करते हुए हरकली बोली, "इसे आप नालायकी कह रहे हैं? यह तो धोखेबाजी, बदमाशी और इससे भी सख्त शब्द का यदि मैं प्रयोग करूँ तो इसे कहेंगे हरामज़दगी।"

हरकली की आवाज़ में आज ग़ज़ब की कड़क थी। उसके छोटे से मुँह से बातें ऐसे निकल रही थीं जिस तरह गैस की नली से आग निकलती है, लपटें निकलती हैं। वह आज कहती ही गई, "आपने शुरू से ही आस्तीनों में साँप पाले हैं पिताजी! आपने साँप के बच्चों को दूध पिलाया है। यह वही रामप्रकाश है जिसे आपने पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया, शादी की और उसीने आपको आज यह दिन दिखाया। यदि इसका फन बचपन में ही मसल देते और चार हरुफ़ न पढ़ाते, जिनकी बदौलत यह आज दीवानजी बना बैठा है, तो कहीं गाँव में ही तिक-तिक अहाँ-अहाँकरता नज़र आता। यह नौबत न आती जो कल सामने आई।"

"तुम ठीक कह रही हो बेटी! अपनी करनी का फल भोग रहा हूँ। अपनी ग़लती का खमयाज़ा भुगतना ही पड़ता है। आज मैं खुद महसूस कर रहा हूँ कि मैं कितनी बड़ी ग़लती करता चला आ रहा हूँ।" मन मार कर भारी आवाज़ में मुंशी चतुरसिंह ने अपने भाव व्यक्त किये।

हरकली मन-ही-मन प्रसन्न थी कि वह पिताजी की ग़लती उन्हें जतला सकी और साथ ही उन्होंने क़बूल भी करली वह ग़लती।

: १८ :

मुंशी चतुरसिंह के जीवन की विचारधारा जीवन के अन्तिम दिनों में फैलने के स्थान पर संकुचित होती जा रही थी। उनके जीवन के सामाजिक कार्यक्रम, उनके पारिवारिक कार्यक्रमों के अन्दर समाते हुए चले जा रहे थे। जहाँ पहिले वह अपने पूरे परिवार की बात सोचते थे, वहाँ अब केवल अपने और अपने बाल-बच्चों तक ही उनका जीवन महदूद हो गया था। इन दिनों उनकी शारीरिक तथा मानसिक, हर प्रकार की शक्ति अपने बाल-बच्चों की बेहतरी के विषय में ही विचारने तथा कुछ करने में लगी रहती थी। ज्ञानव्रत और हरकली के इर्द गिर्द ही उनके विचारों का केन्द्र स्थापित हो चुका था, और वे भी हर समय अपने और अपने पिताजी के विषय में ही सोचते और सलाह देते थे। बहुत सी छोटी-छोटी चीज़ों को, जिन्हें कभी जीवन में उन्होंने उसूल समझकर निभाया था, आज ज्ञानव्रत और हरकली के अकाट्य प्रमाणों के आधार पर मुंशी चतुरसिंह उन्हें अपनी मूर्खता और नासमझी के प्रमाण मान चुके थे।

मुंशी चतुरसिंह के भांजे, यानी उनकी सगी बहिन के लड़के, ने उन्हीं के पास रहकर मिडिल तक तालीम पाई थी। जब वह तालीम पा रहा था तो उसका खाने-पीने का ख़र्च मुंशी चतुरसिंह ही बरदाश्त करते थे। हरकली तो छोटी ही थी उस समय, लेकिन यह समझने में उसने ग़लती नहीं की कि मुंशी चतुरसिंह यह अपने बच्चों का हिस्सा उनसे छीन कर अपनी बहिन के लड़के को दे रहे हैं। हरकली ने उस समय गुप्त रीति से अपने प्राइवेट हुक्म का सहारा लेकर मुंशी चतुरसिंह के भांजे, यानी अपनी सगी बुआ के बेटे से उसके खाने के लिए अनाज मंगा कर छोड़ा था। हरकली के दुर्भाग्य से यह सूचना मुंशी चतुरसिंह को मिल गई और वह एकदम आग बबूला हो उठे। उस समय उनके

इस क्रोध का शिकार हरकली को बनना पड़ा था।

लेकिन आज यह पुराना वाला ज़माना नहीं था कि जब हरकली की किसी भी गुस्ताख़ी के लिए उसके गाल पर तमाचा रसीद कर दिया जाता। आज वह मुंशी चतुरसिंह के इशारे पर चलने वाली नासमझ लड़की नहीं थी, वरन् मुंशी चतुरसिंह उसके संकेत पर चलने वाले एक वृद्ध पिता थे, जिन्होंने अपनी विचारधारा का इस योग्य सन्तान की विचारधारा के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था।

मुंशी चतुरसिंह के पास उनके भाँजे का पत्र आया कि उनकी दशा इस समय गाँव में बहुत ख़राब हो चुकी है। वह देहली जाकर कुछ कारबार करने का विचार कर रहा है। इसलिए कुछ दिनों को यदि वह अपनी बहिन को अपने पास रख सकें तो इस कठिन समय में उसकी बड़ी भारी मदद हो जायेगी।

पत्र मुंशी चतुरसिंह ने पढ़ा और उनका मन अपनी बहिन की दिक्कत पर द्रवित हो उठा। परन्तु इस ख़त का जवाब वह इस समय बिला हरकली और ज्ञानव्रत की सलाह के नहीं दे सकते थे। हरकली के सामने सवाल आया तो उसने कोरा जवाब दे दिया, "ये फ़िज़ूल की इल्लतें मुझे पसंद नहीं है। आप लिख दीजिये कि यहाँ हरकली की माताजी की तबियत बहुत ख़राब चल रही है। मेरे भी रिटायर होने के दिन अब क़रीब हैं। मुस्तकिल तरीके से यहाँ रहना सम्भव नहीं। ऐसी दशा में तुम बीबी के लिए अपने अग्निदत्त मामाजी से बातचीत करो। वह सहारनपुर ले जायेगा बीबी को। उसके पास कोई ख़र्च भी नहीं है किसी तरह का।"

ज्ञानव्रत ने हरकली की बात का समर्थन करते हुए कहा, "जीजी की राय बिलकुल ठीक है। हमने ही तो ठेका नहीं ले लिया है सबको पढ़ाने-लिखाने और फिर उन्हें अपने पास रखकर पूरा ख़र्च बरदाश्त करने का। हमें अपने भी काम करने हैं। रिश्तेदारों के लिये अपने को मिटा भी दो तो तब भी कोई नहीं पूछता। कल को भगवान् न करे

हम पर कोई आड़ा समय आगया तो कोई कटी उँगली पर भी पेशाब करने वाला नज़र नहीं आयेगा।" एक भारी भरकम बेटे की यह राय थी जिससे ऊपर उभर कर मुन्शी चतुरसिंह का दिमाग़ कोई स्वतंत्र राय क़ायम नहीं कर सकता था।

मुन्शी चतुरसिंह के हस्ताक्षरों से यह पत्र का उत्तर उनके भांजे के पास रवाना कर दिया गया।

हरकली अब साधारण विद्यार्थी मात्र नहीं रह गई थी। अब वह एक अध्यापिका थी और उसे हर महीने तीस रुपया वेतन मिलता था। यह वेतन भी वह अपने भाई-बहिनों के लिए ही व्यय करती थी और इस प्रकार मुन्शी चतुरसिंह का वह तीसरा बेटा बन गई थी, कमाऊ बेटा। इस कमाई ने हरकली की इज्ज़त और अक्ल को और भी चार चाँद लगा दिये थे। उसकी क़द्र अब घर में पहिले से अधिक होने लगी थी। भैया, भावज, माँ, पिताजी सभी की वह सिरताज थी और उसकी इच्छा के विरुद्ध परिवार में एक पत्ता तक भी नहीं हिल सकता था।

ज्ञानव्रत का छोटा भाई ध्यानव्रत शरीर का काफ़ी हृष्ट-पुष्ट था, परन्तु दिमाग़ की उसके पास ज़रा कमी थी। पढ़ने-लिखने में वह शुरू से ही कमज़ोर था। अग्निदत्त के लड़के राजू के साथ पढ़ता था। उसकी पढ़ाई की तरफ़ मुन्शी चतुरसिंह, हरकली और ज्ञानव्रत ने काफ़ी ध्यान दिया, परन्तु वह ऊँची तामील न पा सका। दसवीं कक्षा में फेल होने पर ही उसने हथियार डाल दिये और दूसरी ओर शादी का शौक़ भी उसके सिर पर सवार हो गया था।

हरकली और ज्ञानव्रत ने देखा कि वह पढ़ने से जी चुराता है तो उन्होंने भी उस ओर से ध्यान हटाकर घर की खेती पर ही उसे तैनात कर दिया। हरकली ने ज्ञानव्रत से कहा, "मैं कहती हूँ आख़िर क्या होगा और ज्यादा पढ़ लिख कर। जब उसका मन ही नहीं है पढ़ने में तो ख़त्म करो पढ़ाई को। अपने काम के लायक़ तो वह काफ़ी पढ़ा-लिखा है.

ही । गाँव की खेती सँभालने को भी तो एक आदमी की ज़रूरत है । कौन नौकरी करानी हैं हमें । पिताजी की ख़रीदी हुई इतनी जायदाद को आखिर कौन संभालेगा ?"

"आपका विचार ठीक है जीजी ! ध्यानव्रत को गाँव में ही रहना चाहिए । मैं कहता हूँ उसे खूब खिलाओ-पिलाओ और एक नम्बर का पहलवान बनादो; ऐसा, कि उसके नाम से वह बदमाश रामप्रकाश थर्राने लगे और इधर आकर सरावे के सिवाने में क़दम रखने की भी हिम्मत न कर सके ।' ज्ञानव्रत ने मज़बूती के साथ कहा ।

यही किया जायेगा ज्ञानव्रत भय्या ! मैं भी यही सोच रही हूँ । मुझे भी यह दिखाई दे रहा है कि कहीं किसी दिन वह पाजी सरावे में न आ घुसे ।" कुछ भयभीत से स्वर में हरकली बोली ।

हरकली और ज्ञानव्रत काफ़ी मज़बूती के साथ रामप्रकाश के खिलाफ़ सोचते थे, परन्तु वह भी क्या खूब इन्सान था कि उनकी खोपड़ी पर हर समय भूत की तरह सवार रहता था । ये उससे लोहा लेने के लिए अपने को मज़बूत बना रहे थे, परन्तु उसकी ताक़त, उसकी मक्कारी, उसकी चाल बाज़ी, उसकी गुण्डाई का रौब इन पर कम नहीं था । रामप्रकाश के पुलिस के हथकंडे इनके दिमाग़ पर हर समय छाये रहते थे । यों कब्ज़ा उन्होंने इस समय सरावे की पूरी ज़मीन पर किया हुआ था, परन्तु न जाने क्यों इनका दिल हर समय किसी भावी आशंका से घबराया सा रहता था । अपनी मज़बूती और मुस्तैदी के बारे में लाख सोचने पर भी कहीं कमज़ोरी की रेखा इन्हें दिखलाई देती थी,और इनका दिमाग़ यह कह उठता था कि तुम लोगों ने जो यह बालू के महल पर प्लास्टर करके एक आलीशान इमारत बनाई है, इसमें बहुत गहरी दराड़ है, जो एक मज़बूत ठोकर पड़ने पर तमाम इमारत को ज़मीन पर गिरा देगी ।

हरकली ज्ञानव्रत पर अपने दिल का राज़ खोल देती थी । अपने दिल की शंकाओं को भी यह उसके सामने रखकर विचार करती थी ।

ध्यानव्रत को सरावे की खेती के काम पर तैनात करके हरकली ने ज्ञानव्रत से कहा, "अब मुझे अपने यहाँ के कब्जे पर पहले से कहीं अधिक मज़बूती दिखलाई देती है।"

"तुम्हारा ख़याल ठीक है जीजी ! अब हम लोगों का दबदबा काफ़ी जमता जा रहा है। ध्यानव्रत गांव की राजनीति में अच्छी चालें चल रहा है। उसके पेंतरे मुझे पसन्द हैं। यहाँ रहकर गाँव के गुण्डा कहलाने वाले लोगों में मिलकर चलना चाहिए। चचा शक्तिसिंह का जो रवैया था, यह ठीक है कि हम पूरी तरह से उसे अख़्तियार नहीं कर सकते लेकिन रामप्रकाश जैसे मक्कार आदमी का वक्त पड़ने पर मुकाबिला इन गुण्डों की ताक़त से ही किया जा सकेगा।" ज्ञानव्रत ने काफ़ी दिमाग़ी दावपेंच भिड़ाकर यह बात कही।

हरकली ने माथे पर सिलवटें डालते हुए गम्भीर बात का गम्भीरता के साथ उत्तर दिया, "तुमने ठीक सोचा ज्ञानव्रत ! ऐसे लोगों को ज़रूर अपने हाथ में रखना होगा। वरना ये लोग वक्त पड़ने पर रामप्रकाश से जा मिलेंगे और हम लोगों के सामने गुण्डाई करने पर आमादा हो जायेंगे।"

"तुम देखती जाओ जीजी ! तुम्हारे भाई ने वह दिमाग़ पाया है कि जिसके इशारे पर बेचारा रामप्रकाश तो क्या, पूरा सरावा नाचेगा। यहाँ की पूरी चौधर तुम्हारे भाई के दरवाज़े पर आकर नाक रगड़ेगी और ये गुण्डा कहलाने वाले हमारे मेहमानों की चिलमें भरेंगे। दरबार लगा करेगा तुम्हारे भाई का।" सीने में उभार लाकर ज्ञानव्रत ने कहा।

हरकली का साहस दोबाला हो गया। अपने भाई की अक्ल और जीदारी पर अब उसका गहरा विश्वास हो चला था। इधर जब से मिडिल स्कूल के नये ड्रिल-इन्सट्रक्टर से ज्ञानव्रत ने पटा के हाथ, लाठी के हाथ और बिन्नौट के हाथ सीखे थे, तब से तो उसे अपने भाई के अन्दर सुदर्शनचक्र धारी की आकृति दिखलाई देने लगी थी।

ध्यानव्रत की आज कल जी खोल कर चराई हो रही थी। कभी-कभी तो उस बेचारे को अधिक खाने के कारण क़ब्ज भी पड़ जाता था और वह लम्बी-लम्बी डकारें भरता हुआ बदहज़मी के कुल्ले करता सरावे के दगड़ों में इधर-उधर घूमता था। कान से भी ऊँची एक लाठी उसने संभाल ली थी, जिसे वह हरदम साथ लिये रहता था। किसी-किसी दिन जब सुबह से शाम तक कोई कुत्ता-बिल्ली भी उसके सामने कोई गुस्ताख़ी करके उसका शिकार न बनता था तो अपनी क़लाइयों और बाजुओं की ताक़त आज़माने के लिये किसी कच्ची दीवार पर ही उसके दो-चार वार कर डालता था और जब उस दीवार के बरसाती पानी से फूले हुए कच्चे लेवड़े लाठी की ठसक से ज़मीन पर गिर जाते थे, तो ध्यानव्रत अपनी क़लाई की मज़बूती पर फूल उठता था।

अपनी छोटी तथा गोल खोपड़ी लेकर ध्यानव्रत का छाती उभार कर चलना हरकली को पसन्द था। ज्ञानव्रत उसे देखकर हरकली से कहता, "देख रही हो जीजी! ध्यानव्रत को बनाया ही पहलवान है भगवान ने! इतनी छोटी खोपड़ी पहलवानों की ही होती है। गामा का सिर शायद तुमने नहीं देखा। बस जानलो, ऐसा ही छोटा सा है। लेकिन ग़जब की ताक़त है उसके शरीर में। ध्यानव्रत भी मेरी नज़रों में हमारा गामा पहलवान ही है। मैं कहता हूँ जीजी! इसकी बचपन से दाश्त नहीं हुई, वरना क्या ग़ज़ब का शरीर होता इसका। बस अकेला ही एक ओर उठाकर धर देता उस रामप्रकाश और उसकी सारी गुण्डई को।" कहकर भी कुछ और कहने का मलाल सा रह गया ज्ञानव्रत के दिल में।

"तुम ठीक कह रहे हो ज्ञानव्रत! ध्यानव्रत की दाश्त ही नहीं हुई। शुरू से ही एक भैंस छोड़ दी जानी चाहिए थी ऐसे होतड़ बालक के लिए तो। फिर देखते क्या ग़ज़ब का पट्ठा निकलता। आस-पास में डंका पिट जाता ध्यानव्रत की पहलवानी का। लेकिन एक भैंस कहाँ से

छुट जाती ध्यानव्रत के लिए। पिताजी ने तो पालने के लिए एक रेवड़ इकट्ठा किया हुआ था। ऐसे भैंस छुटती तो एक राजू के लिए चाहती, एक उनके भाँजे के लिए चाहती और..."वह रुक गई कहते-कहते। तीसरा नाम उसके सामने ज्ञानव्रत के साले का था, और वह नाम वह इस समय ले नहीं सकती थी ज्ञानव्रत के सामने।

हरकली और ज्ञानव्रत अपनी गाँव की स्थिति को हर तरह मजबूत बनाते चले जा रहे थे। घर, घेर और जंगल की जमीन, सभी उनके कब्जे में थे। सभी में खूब रैल-फैल कर मुंशी चतुरसिंह का परिवार फिरता था।

गाँव के साधारण लोग-बागों को इस बात से कोई सरोकार नहीं था कि उन मकानातों में शक्तिसिंह का परिवार रहता है या चतुरसिंह का। बेचारे अग्निदत्त का तो सरावे के इतिहास में कहीं नाम ही नहीं था। चन्द पुराने आदमियों को छोड़कर नई पीढ़ी के लोग तो उसे भूल ही चुके थे। लेकिन गाँव के वे लोग जिन्हें शक्तिसिंह के वहाँ रहने से लाभ था, यानी कमीन-कांदू कहलाने वाले लोग, उनकी वख्त-बेवख्त याद जरूर कर लेते थे। उनकी दरियादिली की दाद देते थे और सराहना करते थे उनकी रहमदिली की। हरकली और ज्ञानव्रत इस दाद और सराहना के आधार पर शक्तिसिंह को घर-उजाड़ू, घर-लुटाऊ और अय्यार या अय्याश की पदवी पर आरूढ़ करते थे और अपने पिताजी को खोल-खोल कर समझाते थे, "अब सुन लीजिये अपने छोटे भाई साहब के कारनामे। आप तो परदेश में खून-पसीना एक करके कमाते थे, और वह यहाँ इस तरह बेदर्दी से उसे लुटाते थे।"

मुंशी चतुरसिंह को शर्म आती थी इस प्रकार अपनी औलाद के मुंह से अपने भाई के कारनामे सुनकर, और उनकी गर्दन शर्म से झुक जाती थी अपनी मूर्खता पर कि उसका चरित्र ऐसा होने पर भी कभी उसे वह परख न सके और उसकी सहायता भी करते रहे, उसे अपना भाई भी स्वीकार करते रहे।

"बेटा मुझे वाक़ई शर्म आती है आज शक्तिसिंह के ये कारनामे सुनकर । मुझे ख्वाब में भी कभी ख़याल नहीं था कि उसका चलन इतना ख़राब है ।" गम्भीरता पूर्वक मुंशी चतुरसिंह कहते ।

"पिताजी ! जैसे चचा शक्तिसिंह थे उनसे चौचंद उनके सुपुत्र रामप्रकाश जी हैं । हमें तो आपसे कहते खुद शर्म आती है जो बातें भाई ज्ञानव्रत उनके पास रहकर देख आये हैं ।" हरकली ने कहा ।

"और क्या देख आया है ज्ञानव्रत बेटी ?" उत्सुकता के साथ मुंशी चतुरसिंह ने पूछा ।

"क्या देख आया है, अब क्या सुनकर करोगे पिताजी ! एक नम्बर का शराबी हो गया है वह ।" हरकली ने कहा ।

"ओम: ओम: ओम !" कानों पर हाथ रखते हुए मुंशी चतुरसिंह ने कहा । उन्होंने अपने कान ढक लिये । उनके परिवार में एक शराब पीने वाले आदमी ने जन्म लिया, इससे शर्म को और कोई बात हो ही नहीं सकती थी । वह तो प्याज़ खाना भी पाप समझते थे । वही रामप्रकाश जिसके उन्होंने संस्कारविधि के अनुसार कई संस्कार कराये थे, आज शराब पीने लगा ।

चतुरसिंह के बच्चे उन्हीं की तरह सुबह-शाम संध्या करते थे, रविवार को उनके साथ आर्य-समाज-मंदिर में जाते थे, हवन पर भी कभी-कभी आसन बिछाकर साथ बैठते थे और कंठस्थ किये हुए हवन-मंत्रों का जाप करते थे । शराब के नाम से उन्हें चिढ़ थी । हुक्का तम्बाकू के वह पास तक नहीं फटकते थे ।

"अब और सुनकर क्या करोगे पिताजी ! रामप्रकाश सिर्फ़ शराब ही नहीं पीता, वरन् माँस-मिट्टी भी खाने लगा है । जुआ तक खेलता है वह ।" हरकली ने गम्भीर मुख-मुद्रा बनाकर कहा ।

"बस रहने दो बेटी, रहने दो । अब और कुछ न कहो । वह भ्रष्ट हो चुका । हमारे परिवार में वह एक कलंक पैदा हो गया ।"

"हमारे परिवार में ? हमारे परिवार का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है पिताजी ! आप फिर वही भूल कर रहे हैं। आपके परिवार की इस परिभाषा को मैं क़तई नहीं मानती। परिवार की यह पुरानी रूढ़िवादी संस्था यदि मान भी ली जाये कि कोई चीज़ है, तो यह बस माता-पिता और उनके बच्चों तक ही सीमित रहती है। इससे आगे परिवार की संस्था को खींच कर ले जाना केवल भ्रम मात्र है। इसी भ्रम में पड़कर आपने अपनी और अपने बाल-बच्चों की तरक्की को रोका है।" दृढ़ता के साथ हरकली ने कहा।

मुंशी चतुरसिंह आज हरकली के शब्द-शब्द से सहमत थे। पीढ़ी-दर-पीढ़ी मुश्तर्का खान्दान के चलने की बात आज उन्हें भी एक उपहास मात्र ही दिखलाई दे रही थी। बिना हिसाब-किताब के एक परिवार में रहकर कुछ लोगों का बैठे-बैठे ऐश करना और कुछ का ज़िन्दगी भर पिसते जाना, उनके मस्तष्कि में मूर्खता सा प्रतीत हो रहा था। आख़िर यह कैसी मुश्तर्का परिवार की व्यवस्था हिन्दू लॉ में बनाई गई है ? मेहनत एक कर रहा है और हिस्सा सब को बराबर पहुँचता है।

यह ग़लत था उनके दिमाग़ से। हर इन्सान को उसकी अपनी ही मेहनत का हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार है। बिना मेहनत किये हुए किसी को हिस्सा पाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

सहसा उनका दिमाग़ आज अपने परिवार की उस परिस्थिति पर चला गया जिसमें उन्होंने उसे संभाला था। हरकली अब उनकी सबसे बड़ी सलाहकार थी और वह भी उनके पास बैठी हुई थी। उन्होंने धीरे-धीरे कहना शुरू किया, "जिस दिन मैंने इस परिवार की बागडोर संभाली थी, उस दिन मेरी उम्र अठारह वर्षकी थी। आज मैं चव्वन वर्ष का हो गया हरकली ! इस बीच में एक ज़माना बदल गया। जो आज देख रहा हूँ वह उस दिन एक ख्वाब था। ख़याल भी नहीं किया जा सकता था कि किसी दिन हमारे परिवार का इतना खुशहाली का दिन

भी आ सकेगा।"

हरकली ध्यान देकर अपने पिताजी की बातों को सुन रही थी।

"जब ताऊजी ने वह कर्ज़ और ज़मीन मेरे गले मँढ़ी थी तो मैं काँप रहा था। लेकिन भगवान् ने मदद की और वह ज़मीन हमारे नाम हो गई। फिर चचा के लड़के ने अपनी ज़मीन पर इतना कर्ज़ कर लिया कि हमारे घर के अन्दर तक दूसरे कर्ज़दार ने घुसने की कोशिश की। वह भी हमने ख़रीदी और उस ख़तरे से भी इस परिवार को बचाया। उसका भी सब रुपया अदा हो गया, सिर्फ अठारह सौ और देना है। लेकिन इन अहम कामों में शक्तिसिंह या रामप्रकाश ने कभी एक छदाम की भी मदद नहीं की।"

हरकली गम्भीरतपूर्वक सुनती और हाँ-हूँ करती जा रही थी। अभी मानो उसके बोलने का अवसर ही नहीं आया था।

"सरावे की ज़मीन से कभी कोई ख़ास आमदनी हमें नहीं मिली, और यह सब रुपया मैंने और अग्निदत्त ने अपनी बाहर की ही नौकरियों से कमाकर अदा किया।"

मुंशी चतुरसिंह के दिमाग़ में कुछ बात थी आज जिसे वह कहना चाहते थे, परन्तु वह कहते-कहते रुक गये। उन्होंने और एक शब्द भी आगे न कहा। हरकली भी कुछ न समझ पाई कि आख़िर उसके पिताजी क्या कहना चाहते थे। वह उसी प्रकार कुछ सोचते हुए वहाँ से उठकर चले गये। हरकली अकेली बैठी रह गई और वह कितनी ही देर तक पिताजी की कही गई बातों और उनके कारणों पर विचार करती रही। ज्ञानव्रत के आने पर उससे भी उसने वे सभी बातें कहीं परन्तु वे दोनों मिलकर भी चतुरसिंह के दिमाग़ में उठने वाली तलाबेली को न समझ सके, न परख सके।

: १६ :

छोटी बहिन की शादी करके रामप्रकाश ने निश्चिंतता की साँस ली थी क्योंकि यही एक भार था जिसे शक्तिसिंह उसके ऊपर छोड़कर मरे

थे। छोटे भाई की शादी कोई ऐसी समस्या नहीं थी, जिसकी उसे चिंता करने की बात थी।

ऐश और रौब की ज़िंदगी चल रही थी रामप्रकाश की। अंग्रेज़ी सल्तनत के जमाने का वह एक छटा हुआ पुलिस-दीवान था। जिस इलाक़े में भी वह पहुँच जाता था, क्या मजाल जो सरकार के खिलाफ़ कोई परिन्दा भी पर मार जाये। उसके इलाके के काँग्रेसी कारकुनों की तो बस शामत ही आ जाती थी। उनका कोई जल्सा होना या जुलूस निकलना असम्भव हो जाता था। इलाक़े भर के गुण्डे उसका साथ देते थे और जनता की आवाज़ को कुचलने के लिए जहाँ उसके पास थाने के चंद सिपाही रहते थे वहाँ इलाक़े भर के गुण्डे भी उसका साथ देते थे। वह गुण्डों का सिरताज था।

वे ही दस नम्बरी बदमाश, जिन पर रोज़ाना पुलिस की आवाज़ें पड़ती थीं और जिन्हें वह एक-एक दो-दो बार सज़ा भी करा चुका था, उसकी चौकड़ी के यार थे। उन्हीं के साथ उसका खाना-खिलाना और पीना-पिलाना चलता था। रामप्रकाश के हाथों एक-दो बार जेल चले जाने का उन्हें कुछ मलाल नहीं रहता था, क्योंकि वे जानते थे कि आख़िर दीवान जी की भी तो सरकारी नौकरी है, उन्हें भी अपना रिकार्ड दिखलाना है। जेल इन लोगों के लिए ससुराल थी, जहाँ रहकर छै महीने या साल भर काट आना कोई ख़ास बात नहीं थी। जेल के अफ़सरों से भी उनका याराना था।

रामप्रकाश के सामने इस समय जो ख़ास समस्या थी वह थी अपने छोटे भाई धर्मप्रकाश को किसी काम पर लगाने की। ध्यानव्रत की ही भाँति यह महाशय भी पढ़ाई से जी चुराने लगे थे। नवीं जमायत की ख़ंदक को कई बार छलांग मार कर पार करने की कोशिश की, लेकिन कामयाब न हो सके। रामप्रकाश समझ गया कि यह पढ़ेगा नहीं। उसने पुलिस काँस्टेबिलों में भी भर्ती कराने की कोशिश की, लेकिन उसका क़द माशा अल्लाह इतना कम था कि पुलिस की भर्ती में वह आ ही नहीं

सकता था। लाचारी हो गई इस दिशा में भी।

इस तरह अपने हाथ की नौकरी की तरफ़ भाई धर्मप्रकाश के लिए कोई रास्ता न निकलता देखकर रामप्रकाश की नज़र भी सरावे की ज़मीन की ही तरफ़ गई। जिसका कोई सहारा नहीं, उसे धरती-माता ही संभाल सकती थी।

मन में निश्चय कर लिया कि अब धर्मव्रत को सरावे ले जाकर खेती में ही लगाया जायेगा। यह निश्चय कर लेने के पश्चात् रामप्रकाश ने महकमे से दस दिन की छुट्टी ली और वह सीधा खरकौदे पहुँचा। गर्मी की छुट्टियाँ हो रही थीं और धर्मप्रकाश महाशय वहीं पर विराजमान थे। माँ ने रामप्रकाश को प्यार से पुचकार कर बिठलाया एक गिलास भर कर दूध दिया पीने को। फिर उसकी तथा बहू की कुशलता के विषय में पूछा।

जब सब बातें हो चुकीं तो अन्त में रामप्रकाश बोला, "माँ! मेरा ख़याल है कि इस साल धर्मप्रकाश को सरावे लेजा कर खेती पर लगाऊँ। पढ़ना-लिखना इसके बसका नहीं है।"

"जैसा तू ठीक समझे बेटा!" सीधी-सादी माँ ने कहा।

"यह तुमने ठीक सोचा रामप्रकाश! इसे किसी काम पर लगाओ। पढ़ना-लिखना इसके बसका नहीं है। इस साल फिर फ़ेल हो गया। और फिर मैं इस साल इसकी शादी भी कर देना चाहता हूँ। कान्ता की शादी मेरी आँखों के सामने हो गई। इसकी भी हो जाये तो मैं फ़िक्र हो जाऊँ।" रामप्रकाश के बूढ़े नाना ने कहा। शक्तिसिंह के मर जाने के पश्चात् यह नाना ही इस परिवार का सब से बड़ा हमदर्द रह गया था और हमदर्दी की असल बात पैसा थी, जिसकी गर्मी में कभी-कभी वह सख्त-सुस्त बातें रामप्रकाश को भी कह लेता था। लेकिन यह होता था सभी कुछ प्यार में। प्यार में आदमी मार भी सह लेता है।

दूसरे दिन सवेरे ही एक बैल-तांगा जुड़वाया गया और उसमें

रामप्रकाश अपने भाई धर्मप्रकाश को बिठलाकर सरावे की तरफ़ रवाना हुआ। पाँच कोस का फ़ासला था खरखोदे और सरावे के बीच में। तेज़ चलने वाले बैल थे, डेढ़ घण्टे में ही सरावा आ गया।

रामप्रकाश मन-ही-मन सोचता आ रहा था कि सरावे पहुँच कर कैसी बीतेगी उसके साथ। कुछ भले और प्यार के व्यवहार की तो वह आशा कर ही नहीं सकता था, क्योंकि अपनी बहिन कांता की शादी में जो चकमा वह हरकली, ज्ञानव्रत और मुन्शी चतुरसिंह को देकर गया था, उसकी याद अभी बहुत पुरानी नहीं पड़ी थी, परन्तु फिर भी वह मुस्तैदी के साथ सरावे में घुसा और उसका तांगा जाकर सीधा अपने मकान के चबूतरे के सामने बैठक पर रुक गया।

ज्ञानव्रत और हरकली बैठक में बैठे घर की कुछ गम्भीर समस्याओं पर विचार कर रहे थे। सामने रखी हुई छोटी सी मेज़ पर मुक्का मार-मार कर ज्ञानव्रत कुछ कह रहा था, और हरकली कभी हाथ लचका कर और कभी ऊँगली उठाकर अपनी बात की प्रामाणिकता सिद्ध कर रही थी।

तांगे का चबूतरे के सामने रुकना था कि ज्ञानव्रत के कलेजे पर धक्क से चोट लगी। आपत्ति का पहाड़ उसे अपने ऊपर टूटता हुआ दिखलाई दिया। उसने जरा एड़ियाँ उचका कर देखा तो उसकी नज़र रामप्रकाश पर पड़ी और वह एक दम एलर्ट होता हुआ बोला, "जीजी! लो आ गया वह गुण्डा रामप्रकाश। मकान के दरवाज़े बन्द कर दो। ख़बरदार, यह नालायक घर में न घुसने पाए। ध्यानव्रत को पास बुलाओ।"

ज्ञानव्रत के मुँह से ये शब्द निकले और हरकली चौकन्नी होकर एक दम बैठक के दरवाज़े पर पहुँच गई। बैठक का दरवाज़ा रामप्रकाश के लिए बन्द कर दिया गया, घर का दरवाज़ा बन्द कर दिया गया। चौधरी आभाराम के मकान का दरवाज़ा उनके चन्द पड़पोते और पड़पोतियाँ चन्द पड़पोतों के लिए बन्द कर रहे थे और उसमें

न घुसने देने के लिए उनसे जंग करने को तैयार खड़े थे।

रामप्रकाश ने बैठक का दरवाजा बन्द होता हुआ देखा तो उसके माथे की सिलवटें सख्त हो गईं, उसकी त्योरियाँ क्रोध से चढ़ गईं। यही वह दरवाज़ा था जिस पर आते ही शक्तिसिंह उसे आगे बढ़कर छाती से लगा लेता था और आज यही उसके लिए बन्द हो गया।

रामप्रकाश ने बहलवान को तांगा आगे बढ़ाकर गलिहारे के दूसरी तरफ़ घेर की ओर चलने का इशारा किया। तांगा उस ओर बढ़ गया और रामप्रकाश ने तेज़ी के साथ बैल-तांगा घेर के सामने रोक कर बैलों के कन्धे से जुआ उतार दिया। फिर वह बैलों को लेकर तेज़ी से मवेशियों के घेर में घुस गया। उसे डर था कि कहीं उसे घर की तरह घेर में भी न घुसने दिया जाये। और उसकी यह आशंका बिलकुल ग़लत नहीं थी। उसने देखा कि घर से निकल कर ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत उधर को ही गद-मद लपके चले आ रहे हैं और हरकली उनमें सबसे आगे है। रामप्रकाश भी जरा संभलकर खड़ा हो गया और उसका भाई धर्मप्रकाश तो दिल में कांप ही उठा। यों देखने में वह कुछ ऐसा कमजोर नहीं जंचता था, परन्तु ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत को हरकली के साथ अपनी ओर तेज़ी से आते देखकर उसकी रूह फ़ना हुई जा रही थी। उसका दिल धक-धक कर रहा था। रामप्रकाश की आँखों की लाल त्यौरी की तरफ़ देखकर, वह इस तरह चुप-चाप खड़ा हो गया था जिस प्रकार क़साई के सामने गाय ख़ड़ी हो जाती है। लेकिन उसका मन अन्दर-ही-अन्दर कह रहा था कि भाई साहब ने आज अच्छा मौत के मुँह में लाकर फंसा दिया।

ज्ञानव्रत के घेर में घुसते ही रामप्रकाश सर्तक होकर इधर-उधर टहलने लगा। गर्दन नीची ही करके वह टहल रहा था, परन्तु देख सब कुछ रहा था कि उनका क्या इरादा है।

"जिस खोर पर आपने ये बैल बांधे हैं, यहाँ हमारे मवैशी बँधते हैं।" ज्ञानव्रत ने सामने खड़े होकर कहा।

"ये भी तो तुम्हारे ही मवैशी हैं ज्ञानव्रत जी !" नज़र उठाकर ज़रा गम्भीरता पूर्वक रामप्रकाश बोला और उसने फिर उसी तरह घूमना शुरू कर दिया।

"लेकिन ये यहाँ बँधेंगे तो हमारे मवैशी कहाँ बँधेंगें ?" ज़रा ध्यानव्रत आग बढ़कर कुछ तेज़ स्वर में बोला।

"इतना बड़ा घेर पड़ा है। कहीं पर भी बँध जायेंगे। जहाँ जी चाहो बाँध लेना।" रामप्रकाश ने फिर भी सरलता पूर्वक ही कहा।

"नहीं, यह नहीं होगा। ये बैल इस खौर पर नहीं बँध सकते।" हरकली ज़रा अभिमान के साथ बोली।

"यही होगा हरकली ! ये बैल इसी खोर पर बँधेंगे। इन्हें यहाँ से कोई नहीं हटा सकता।" घूमना बन्द करके रामप्रकाश बोला और वह तय्यार था इन तीनों से लोहा लेने के लिए।

तना-तनी हद को पहुँच गई। हरकली का पारा इस समय सातवें आसमान पर था। ध्यानव्रत को दूध पिला-पिला कर इसी दिन के लिए तो पाला जा रहा था। वह बर्दाश्त न कर सकी रामप्रकाश का यह आह्वान। कड़क कर ध्यानव्रत की तरफ़ इशारा करती हुई बोली "ध्यानव्रत देखता क्या है? बैलों को खोलकर घेर से बाहर खदेड़ दो और घेर का दरवाज़ा बन्द करदो !"

ध्यानव्रत ज़रा आगे को बढ़ा तो रामप्रकाश कड़क कर बोला, "ख़बरदार जो बैलों के जेवड़ों की तरफ़ हाथ बढ़ाया। यह याद रखना कि अपने पैरों फिर घेर से बाहर नहीं जा सकेगा ध्यानव्रत !"

ध्यानव्रत ने हरकली की आज्ञा तो सुनी ही थी, रामप्रकाश की भी ललकार सुनी। वह कुछ सहमा और ढिठका लेकिन उसी समय ज्ञानव्रत भी कड़क कर बोला, "देखता क्या है ध्यानव्रत ! बैलों को पीटकर घेर से बाहर खदेड़ दो। मैं सब देख लूँगा इनकी पहैल-वानी।"

ध्यानव्रत का दिल अपने भाई साहब के जोरदार शब्द सुन कर

दोबाला हो उठा। वह ज्यों ही बैलों की तरफ़ बढ़ा कि रामप्रकाश ने उसे पकड़ कर एक तरफ़ हटा दिया और सचमुच ही वह डर गया रामप्रकाश से।

इस तरह अखाड़े में हार के लक्षण देख कर ज्ञानव्रत भी आगे बढ़ गया; परन्तु उससे लिपटने के लिए रामप्रकाश का छोटा भाई ध्यानव्रत भी अपने को काफ़ी मज़बूत समझता था। इस प्रकार एक तरफ़ ज्ञानव्रत और धर्मप्रकाश जूझ रहे थे और दूसरी तरफ़ ध्यानव्रत तथा रामप्रकाश। ज्ञानव्रत धर्मप्रकाश से मज़बूत निकला और उसने उसका काफ़ी भुर्ता बनाया, परन्तु दूसरी तरफ़ ध्यानव्रत का पाला रामप्रकाश के सामने हारता देख कर हरकली को भी धर्म-युद्ध में पैंतरा काट कर उतरना पड़ा। जब उसकी और कुछ पार न बसाई तो उसने मौका पाकर रामप्रकाश की धोती ही खोल डाली और इस प्रकार उसे अपना नंगापन बचाना कठिन हो गया।

यह आज का मल्ह-युद्ध काफ़ी देर तक चला, परन्तु इसका कोई निर्णयात्मक फल न निकला। रामप्रकाश और उसके बैल ज्यों-के-त्यों घेर में बने रहे, उन्हें हरकली और ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत बाहर न निकाल सके।

यहाँ यह कुहराम मचा तो गाँव भर में बात फैल गई। वे सभी जो शक्तिसिंह के फ़रमाबरदार लोग थे, सुन-सुन कर वहाँ इकट्ठे हुए और सभी ने रामप्रकाश की जीदारी की दाद दी। उनके इकट्ठा होने से धर्मप्रकाश का भी ज़रा हौसला बढ़ा और उसके उतरे हुए चेहरे पर मुस्कराहट दिखलाई दी। भाई को मुस्कुराता हुआ देख कर रामप्रकाश का भी मन खिला और मुस्कराते हुए बोला, "धर्मप्रकाश! ज़रा जा कर एक चिलम तम्बाकू तो भर ला।"

उसका यह कहना था कि धर्मप्रकाश लपक कर खड़ा हो गया। उसका अब साहस बँधता जा रहा था और उसे विश्वास होता जा रहा था कि उसका भाई उसकी जड़ों को सरावे की सर ज़मीन में गहरी,

पाताल लोक तक पहुँचा देगा।

रामप्रकाश के मुख पर मुस्कराहट थी, लेकिन ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत और हरकली के मुखों पर मोहोर्रम विराजमान था। दिन में रात के बारह बज रहे थे उनके चेहरों पर। तीनों-के-तीनों घेर से निकल कर घर में चले गये और एक लम्बे अर्से तक मिसकोर्ट की। फिर तीनों एक सलाह हो गये और ध्यानव्रत को पिता जी के पास दौड़ाया गया।

ध्यानव्रत ने वहाँ जाकर अपने पिता जी से पूरी कहानी कह सुनाई और बतलाया कि किस प्रकार उनके पूरी कोशिश करने पर भी रामप्रकाश घेर में घुस गया।

मुंशी चतुरसिंह का पारा सातवें आसमान पर जा पहुँचा यह सुनकर और वह कड़क कर बोले, "उस कमीने की यह मजाल! उसने हरकली पर भी हाथ उठाने की जुरत की।"

हरकली पर रामप्रकाश ने हाथ नहीं उठाया था, उल्टी उसी ने रामप्रकाश की धोती खोल कर उसे नंगा नामर्याद कर देने की कोशिश की थी, लेकिन यह बात खास तौर पर पिता जी से कहने के लिए ध्यानव्रत को ताकीद की गई थी। यह बात हरकली की कही हुई थी, इसलिए इस पर विचारने की मुंशी चतुरसिंह को कोई जरूरत ही नहीं थी।

मामला काफी संगीन हो चुका था। रामप्रकाश के मुंह लग कर मुंशी चतुरसिंह अपनी बेइज्जती नहीं कराना चाहते थे। इसलिए मौके की नजाकत को ध्यान में रख कर उन्होंने तार देकर अग्निदत्त को ही बुलाया और उसे बतलाया कि किस तरह रामप्रकाश हरकली के साथ पेश आया।

अग्निदत्त सरावे पहुँचा तो उसने दोनों तरफ की बातें सुनीं। सब बातों को सुनने के बाद उसने मन में यही धारणा बनाई कि कुसूर ज्यादा ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत और हरकली का ही था। सरावे का घर और जमीन अभी तक बंटे नहीं थे। उन पर परिवार के हर प्राणी का अधिकार था

और अग्निदत्त की नजर में परिवार का अर्थ भी मुंशी चतुरसिंह, उनकी स्त्री और उनकी औलाद मात्र नहीं था। वह शक्तिसिंह और मुंशी चतुरसिंह की सन्तान को एक तराजू पर तोल कर देखता था।

अग्निदत्त ने इस समय के झगड़े का निपटारा करा दिया। आधा-आधा मकान और आधा-आधा घेर दोनों को बाँट दिया। जंगल की ज़मीन भी दोनों को मिल गई, लेकिन रही कुछ मुंशी चतुरसिंह के ही बच्चों पर ज्यादा।

अग्निदत्त का अपना तो इस घर, इस घेर, इस जंगल की ज़मीन से कोई सम्बन्ध था ही नहीं। वह तो बाबू था रेलवे का। प्रधान था सहारनपुर की आर्यसमाज का। उसका व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन ठीक चल रहा था, संतोप के साथ चल रहा था। फिर वह खेती भी नहीं करा सकता था यहाँ रह कर। ध्यानव्रत और धर्मप्रकाश ने पढ़ना छोड़ दिया था। उन्हें ज़मीन की ज़रूरत थी और वे खेती के काम में लग जाने चाहिए थे।

यह खेती की व्यवस्था शक्तिसिंह की खेती की व्यवस्था नहीं थी। उस समय बीजवाता, रखाता, और कटवा कर घर में शक्तिसिंह भरता था और उसे बेचते मुंशी चतुरसिंह थे। जो रुपया उन्हें मिलता था वह कहा जाता था कि परिवार क ही कामों में सर्फ़ होता है। वह होता था या नहीं, यह पूछ-तांछ करने का न किसी में साहस था, न कोई उसकी ज़रूरत समझता था और न किसी में अक्ल ही थी यह जानने की।

परन्तु आज की यह व्यवस्था बिल्कुल स्पष्ट थी। परिवार के सब लोग जो कुछ भी कर रहे थे अपने-अपने लिए कर रह थे। परिवार निश्चित रूप से तीन भागों में विभाजित हो चुका था और तीनों का एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं था। आपसी छीन-झपट की चालें चली जा रही थीं, जिनमें अग्निदत्त कोई हिस्सा नहीं ले रहा था। वह दूर परदेश में बैठा अपने बड़े भाई साहब और अपने भतीजों की कार्यवाहियों

का अध्ययन कर रहा था। देख रहा था कि ज़माना किधर-से-किधर को जा रहा है और उसमें किस क़दर तबदीलियाँ आती जा रही हैं।

अग्निदत्त किसी तरह एक दिन की छुट्टी लेकर आया था। अधिक दिन वह ठहर नहीं सकता था, उसकी नौकरी का मामला था। उसमें उसने जो कुछ भी किया वह इसी बात को ध्यान में रखकर किया कि आपसी भेद-भाव कम हों, लड़ाई झगड़े की नौबत न आये और दुनियाँ उसे नाइन्साफ़ी भी न कह सके।

लेकिन अग्निदत्त ने जो कुछ भी किया वह ज्ञानव्रत की नजरों में सख्त नाइन्साफ़ी था, उसके हक़ूकों को उससे छीन कर रामप्रकाश के हवाले कर देना था, वह क़ानूनन मालिक था उस सब ज़मीन का जो उसके हल के नीचे से निकलवा कर रामप्रकाश को दिलाई गई। और रामप्रकाश अग्निदत्त का कोई ख़ास अहसानमन्द नहीं था क्योंकि उहोंने जो कुछ भी उसे दिलाया वह उसका हक़ था, उसे मिलना ही चाहिये था। यदि वह न दिलाता तो वह ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत और हरकली जैसे पिदनों से मार जूतियाँ छीन लेता। वह अपने इलाक़े के चार ऐसे गुण्डों को लाकर कुए की मन पर बिठला देता कि जिनके सामने आकर जंगल की जमीन पर इन पहलवानों का पैर रखना भी हराम हो जाता।

रामप्रकाश उसके बाद सरावे में जम गया। धर्मप्रकाश को उसने हर प्रकार से मज़बूत कर दिया और चार आदमी उसकी हर समय हिफ़ाज़त के लिये छोड़ दिए। जब वह दस दिन की छुट्टी पूरी करके चला तो धर्मप्रकाश से कहता गया, "किसी हरामज़ादे की परवाह न करना। अगर तेरा बाल भी बाँका हो गया तो एक-एक की बोटी-बोटी उड़वा दूँगा। और धीमू पहलवान को हमेशा अपने साथ सुलाना उसको भाई की तरह मानना, खाने पीने का ख्याल रखना।"

रामप्रकाश की ये बातें हरकली, ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत तीनों ने सुनीं और उनके दिल सहम गये। अभी तक जो वे कुछ रामप्रकाश

के चले जाने के बाद धर्मप्रकाश के साथ करने की सोच भी रहे थे वह धीमू पहलवान के सरावे में धर्मप्रकाश के साथ रहने की बात सुनकर, काफ़ूर हो गई।

धीमू की नजरों से नज़रें मिलाना इनके लिए मुश्किल था। कहते हैं वह चार ख़ून कर चुका था और आख़िरी ख़ून करने के अपराध से उसे दीवान रामप्रकाश ने ही बचाया था। इसीलिये वह दीवान जी की उखड़ी हुई जड़ों को सरावे में जमाने की क़सम खाकर साथ आया था।

रामप्रकाश चलते समय खरकौदे के थाने में जाकर वहाँ के दीवान जी से भी मिला और अपने छोटे भाई को उनका ही छोटा भाई बतलाकर हर तरह की देख-भाल करने के लिए कह गया। इससे धर्मप्रकाश का दिल और भी मज़बूत हो गया और उसी दिन से उसने गाँव में आने वाले सिपाहियों की चापलूसी तथा उनके खाने-पीने का प्रबन्ध भी शुरू कर दिया।

: २० :

मुन्शी चतुरसिंह अपने परिवार के जिस पतंग को उड़ा रहे थे उसके दो कन्नों में से एक को काट कर हरकली और ज्ञानव्रत साफ़ कर चुके थे। शक्तिसिंह और उसकी औलाद के लिये अब मुन्शी चतुरसिंह के दिल में कोई स्थान बाक़ी नहीं रह गया था। पतंग का दूसरा कन्ना था अग्निदत्त और इसी को काटने के लिए अब ये दोनों अपने सब प्रकार के हथियारों का प्रयोग कर रहे थे।

मुन्शी चतुरसिंह के परिवार का पतंग एक कन्ने के कट जाने से हवा में बुरी तरह चकरा रहा था। एक भंवर से में वह फँस गया था। मुन्शी चतुरसिंह के हाथों की रील ढीली पड़ती जा रही थी और उन्हें ऐसा महसूस होने लगा था कि माना उनका पतंग उड़ाने का खेल ही समाप्त होना चाहता है। उनकी समझ में इसका राज़ नहीं आ रहा था। उनकी झुंझलाहट के शिकार हिर-फिर के वे कन्ने ही बनते थे

कि जो कट चुके थे या कटते जा रहे थे। उन्हें काटने वाले की तरफ़ कभी उनका ध्यान ही नहीं जाता था।

जब कभी कोई नास्तिक उनसे भगवान् के अस्तित्व के विषय में बहस करता था तो वह अपना अकाट्य प्रमाण लाकर उसके सामने रखते थे, "भाई कर्त्ता के बिना कार्य नहीं हो सकता। इस लिए ब्रह्माण्ड की रचना भी बिना बनाने वाले के नहीं हो सकती।"

लेकिन आज उनके परिवार के पतंग के कन्ने बिना ही कर्त्ता के कटते चले जा रहे थे। वह समझ ही नहीं पा रहे थे उस कार्य-व्यवस्था को कि जो न केवल उनके पारिवारिक पतंग के कन्ने काट रही थी वरन् उनको भी उनकी जीवन-शक्ति और जीवन-साथियों से विमुख करती हुई चली जा रही थी।

हरकली की नजर के सामने थी यह लड़खड़ाती हुई गुड्डी, जिसका एक कन्ना अभी तक पतंग की तीली से बँधा था। वह इसे जल्द-से-जल्द काट कर अपनी नई गुड्डी आसमान में उड़ाना चाहती थी।

कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। सर्दी यह कह रही थी कि तुझे जितना पड़ना है तू आज ही पड़के निपट ले। बड़े दिन की छुट्टियों के दिन थे। अग्निदत्त की इच्छा अपने बड़े भाई मुंशी चतुरसिंह से मिलने की हो रही थी। उसने किसी प्रकार अपनी स्त्री को भी चलने के लिए राज़ी कर लिया। अग्निदत्त का लड़का राजू भी छुट्टियों में उन्हीं के पास आया हुआ था। इस छोटे बच्चे की सलाह का तो कोई अर्थ ही नहीं था।

सहारनपुर से रात को नौ बजे की गाड़ी से अग्निदत्त अपनी स्त्री तथा बच्चे के साथ इस शीत-रात्रि में भाई से मिलने चला। छोटी लाइन में सफ़र करने का यह पहिला ही अवसर था। गाड़ी अग्निदत्त ने शुरू से आख़ीर तक देखी, लेकिन एक भी डिब्बा ऐसा न मिला जिसकी सब खिड़कियाँ सही सलामत हों। अग्निदत्त की स्त्री ने स्टेशन

से ही लौट चलने की सलाह दी, परन्तु अग्निदत्त अपनी ज़िद पर डटा रहा।

आखिर एक डिब्बे में ये लोग बैठ ही गये। गाड़ी चली तो खिड़कियों से साँय-साँय हवा ने अन्दर आना शुरू किया। डिब्बे में कुल गिनी-गिनाई पाँच सवारियाँ थीं, क्योंकि छोटी लाइन पर लोग-बाग रात को सफ़र करना पसंद नहीं करते थे। वह गाड़ी इतनी मंदी चलती थी कि कोई भी ज़रा तेज़ दौड़ने वाला इन्सान उसके साथ मीलों दौड़ सकता था। इसीलिए आम तौर पर इस लाइन में ख़तरनाक हादसे होते रहते थे।

भाई से मिलने का प्यार आज अग्निदत्त का ज़ोर मार रहा था। उनसे मिले काफ़ी दिन हो गये थे। जबसे उन्होंने मेरठ छोड़ा था तब से भेंट ही नहीं हो पाई थी। भाभी जी के भी दर्शन नहीं किये थे। खेखड़ा कुछ ऐसी जगह थी कि जो रास्ते से हटी सी हुई थी; आम रास्ते पर नहीं पड़ती थी।

काफ़ी दिन का बिछड़ा हुआ यह छोटा भाई न जाने क्या-क्या ख़यालात अपने दिमाग़ में लिए इस हिचर-पिचर करने वाली छोटी लाइन के डिब्बे की उस सीट पर बैठा था जिस पर पूरी तरह बैठ सकना भी दूभर हो रहा था।

डिब्बे की सीटें लेट सकने के बिलकुल क़ाबिल नहीं थीं। फिर भी अग्निदत्त ज़रा अपनी स्त्री को खुश करने के लिए बोला "तुम लेट जाओ देवी! और राजू को भी लिटालो अपने पास। मैं जाग रहा हूँ।"

अग्निदत्त की स्त्री अपने पति के इस फुसलाने पर ज़रा मुस्कुरा कर बोली, "यहाँ लेटने की जगह कहीं दीख रही है तुम्हें। बैठा तक तो जा नहीं रहा है ठीक से। नाहक़ की ज़िद सवार हो जाती है तुम्हें तो। अच्छे ख़ासे बैठे-बिठाये और नहीं तो खेखड़े जाने की ही ठान ली। जब वहाँ जाकर फटकारें खाने को मिलेंगी तो कहोगे कि इससे तो न ही

आते तो भला था।"

"फटकारें किस बात की मिलेंगी देवी!" अग्निदत्त बोला। "क्या फटकारें खाने के लिए मैं ही रह गया हूँ।"

"सिर्फ़ तुम ही नहीं, मैं भी हूँ। भगवान् ने तुम्हारे साथ व्याह दिया है न मुझे।" कहकर अग्निदत्त की स्त्री ने खिड़की से बाहर उस शीत-रात्रि में चमकते हुए चन्द्रमा की तरफ़ देखा।

अग्निदत्त अपनी स्त्री के इस व्यंग्यपूर्ण उपहास का आनन्द लेकर बोला, "देवी! उस दिन सरावे का क्या हाल सुनाऊँ तुम्हें कि हरकली ने तो लड़कों के भी कान काट लिये। रामप्रकाश ने बतलाया कि उसने उसकी धोती खींचकर खोल डाली और नंगा-नामजाद कर दिया उसे।"

हरकली का नाम आते ही अग्निदत्त की स्त्री में भी ज़रा जान पड़ गई। और वह सुधरती हुई बोली, "वह कनकटी! जो कुछ भी न कर ले, वही थोड़ा है। वह क्या नहीं कर सकती यह कहो। ईंट-से-ईंट भिड़ाकर न छोड़े तुम्हारे खान्दान की तो तब कहना।"

"हरकली वाक़ई बहुत छोटे ख़यालातों की लड़की है। उसके सामने हर समय उसके पिताजी, उसकी माताजी, उसके भाई, उसकी बहिनें ही रहती हैं। वरना जैसे वह बेवा हो गई है, उसके लिए सब बराबर होने चाहिए थे। उसे रामप्रकाश, धर्मप्रकाश, ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत और राजू में कोई फ़र्क़ नहीं समझना चाहिए था। ऐसा करती तो सब उसकी इज्जत करते। लेकिन उसने अपने को बहुत ही छोटी दृष्टि में महदूद कर लिया।"

"बस रहने दो इन बातों को। तुम जिन बातों को लेकर चल रहे हो, उनमें एक दिन देख लेना तुम ही ख़ता खाओगे। सब अपना-अपना सोचते हैं। तुम्हारी तरह नहीं कि जो कुछ भी करेंगे बड़े भाई साहब ही करेंगे। उनसे डरा-डरा कर तुमने हमें कहीं का नहीं छोड़ा।" दुखित मन से अग्निदत्त की स्त्री ने कहा।

"तुम सब कहीं की हो देवी ! तुम्हें कोई फ़िक्र नहीं करनी चाहिए। हमने जो कुछ भी किया है अपने परिवार की इज्ज़त के लिए किया है।" मन में धैर्य लेकर अग्निदत्त बोला।

"तुम्हारे परिवार की इज्जत ने ही तो हमें इस दीन का कर दिया। अब जा तो रहे हो दुम हिलाते हुए उनके पास। और मैं कहती हूँ, चाहे इस कान सुनो या उस कान, वह तुम्हारी रत्ती भर भी परवाह नहीं करते। उन्हें तुम्हारी इतनी भी परवाह नहीं कि तुम किस खेत के बथुवे हो।" भन्नाकर अग्निदत्त की स्त्री ने कहा।

"बस रहने भी दो देवी ! तुम तो हमेशा ऐसी ही जली-कटी बात करती हो और इधर मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारी यह आदत और भी ज्यादा बढ़ती जा रही है। मैं चुपचाप सुनता जाता हूँ तो तुम सिर पर ही सवार होती चली जा रही हो।" ज़रा गर्म होकर अग्निदत्त ने उत्तर दिया।

फिर दोनों चुप हो गये। अग्निदत्त की स्त्री ने अग्निदत्त की तरफ़ से मुँह फेर लिया। राजू को उसने अपनी गोद में सुलाया हुआ था। गाड़ी फकाफक आगे बढ़ती चली जा रही थी।

छोटे-छोटे बहुत से स्टेशनों पर रुकती हुई गाड़ी आगे बढ़ रही थी। यह लगभग सन् १६३२ का जमाना था। ये स्टेशन भी क्या स्टेशन थे, मामूली टीन डाल लिये गये थे और प्लेटफ़ार्म के स्थान पर लाल बज़री बिछा दी गई थी। टिकट बटने का भी प्रबन्ध स्टेशनों पर बहुत कम था। गार्ड ही टिकट बाँट देता था और वही गाड़ी से उतरने वाले पैसेंजरों से टिकट ले लेता था। इस तरह इस काम के कारण भी ट्रेन काफ़ी ठहर-ठहर कर चल रही थी।

सर्दी की इस रात में अग्निदत्त और उसकी स्त्री आपस में कमर-से-कमर लगाये सटे बैठे थे, परन्तु अब थे दोनों ही मौन। एक शब्द भी कोई एक-दूसरे से नहीं बोल रहा था।

सुबह के चार बजे खेखड़े का स्टेशन आया। स्टेशन पर कोई

सवारी नहीं थी क़स्बे तक जाने के लिए। तीनों प्राणी पैदल-ही-पैदल ख़रामा-ख़रामा क़स्बे में पहुँचे। अभी रात का सन्नाटा ही था, गो साढ़े पाँच बज चुके थे वहाँ पहुँचते-पहुँचते। किसी से मिडिल स्कूल का रास्ता पूछा तो उसने बतला दिया।

क़स्बे का बड़ा स्कूल था, उसे कौन नहीं जानता। और मुंशी चतुरसिंह हेडमास्टर साहब के नाम से भी यहाँ का हर आदमी वाक़िफ़ था। अग्निदत्त पौने छै बजे अपने भाई साहब के दरवाज़े पर अपनी स्त्री तथा लड़के को लेकर पहुँचा परन्तु उसे देखकर मुंशी चतुरसिंह के मुख पर कोई प्रसन्नता के आसार नुमाया नहीं हुए।

आज नमस्ते भी ठीक से नहीं ली मुंशी चतुरसिंह ने अग्निदत्त की। उनके मस्तक पर और बल पड़ गये, अग्निदत्त को देखकर। अग्निदत्त समझ न सका इस व्यवहार को, परन्तु इतना अवश्य ताड़ गया कि कुछ दाल में काला ज़रूर है।

थोड़ी ही देर में बातों का सिलसिला छिड़ गया। चतुरसिंह तो किसी बात को दाब कर रख ही नहीं सकते थे और जो उनके मन में आती थी उसे कहते थे। बला से सुनने वाले का दिल उन्हें सुनकर बचा रहे, या टूट जाये। अग्निदत्त की तरफ़ देखते हुए बोले, "क्यों बाबू साहब! अब तो आप बाप-बेटों की भी ख़तो-किताबत शुरू हो गई है न!"

"कैसी ख़तो-किताबत?" सीधे स्वर में अग्निदत्त बोला।

"कैसी ख़तो-किताबत? यह भी आप मुझी से पूछना चाहते हैं। अपने राजू से आप कुछ नहीं पूछ सकते। उसने तुम्हें क्या-क्या और किस-किस तरह के ख़त लिखे हैं, यह भी तुम नहीं जानते।" आश्चर्य के साथ अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए मुंशी चतुरसिंह बोले।

"मुझे राजू ने कोई इस तरह का ख़त नहीं लिखा।" गम्भीरता पूर्वक अग्निदत्त ने कहा।

"नहीं लिखा! हरकली!" हरकली को आवाज देते हुए बोले,

"बुलाओ ध्यानव्रत को।"

और हरकली का पढ़ा-लिखा कर, पुख्ता किया हुआ यह नाटक का पात्र मंच पर आ गया। अपनी गोल खोपड़ी पर हाथ फेरते हुए पहिले तो इसने अपने चाचाजी को तपाक से नमस्ते की और फिर पिताजी की तरफ़ मुखातिब होकर बोला, "क्या आपने बुलाया है मुझे।"

"हाँ मैंने ही बुलाया है। ज़रा अपने चाचाजी को बतला दे कि राजू ने क्या-क्या लिखा था उस ख़त में।"

ध्यानव्रत ने ए से लेकर ज़ेड तक हरकली की पढ़ाई हुई पूरी दास्ताँ सुना डाली। यह दास्ताँ अग्निदत्त आज पहली बार सुन रहा था। राजू ने कभी उन्हें इस प्रकार का पत्र नहीं लिखा। वह समझ गये कि भाई चतुरसिंह का मन अग्निदत्त की तरफ़ से फेरने के लिए हरकली ने गहरी चाल चली है। परन्तु वह कर भी क्या सकते थे इसके खिलाफ़।

अग्निदत्त ने मुस्कराकर ध्यानव्रत से पूछा, "तुमने यह ख़त कैसे पढ़ा?"

"पहिले राजू ने इसे एक काग़ज पर लिखा था और फिर पोस्टकार्ड पर उतारा था। वह काग़ज मेरे हाथ लग गया।" ध्यानव्रत ने कहा। और हरकली मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी कि उसके भाई ने नाटक का पार्ट खूब खूबी के साथ अदा किया।

"ज़रा वह पर्चा मुझे भी दिखला दो। मैं भी तो देख लूँ कि उसमें क्या लिखा है?" अग्निदत्त ने कहा।

"वह तो मैंने हरकली जीजी को पढ़ाकर तभी फाड़कर फेंक दिया था।" ध्यानव्रत बोला।

अब अग्निदत्त ने उससे और बातें करना बेसूद समझा और उसने मुंशी चतुरसिंह से साफ़ शब्दों में कह दिया कि यह सब ग़लत है। लेकिन आज मुंशी चतुरसिंह ने अग्निदत्त से भी साफ़ शब्दों में उनके कान खोल कर सुना दिया, "अग्निदत्त! मैं बहुत बेवकूफ़ बन चुका। अब और

ज्यादा मुझे बनाने की कोशिश न करो। तुम अपने बच्चों का विश्वास करते हो, मुझे अपनों का करने दो। मैं अब अपने बच्चों के अलावा दूसरों का विश्वास नहीं कर सकता।"

अग्निदत्त प्रस्तर-शिला के समान खड़ा रह गया। उसके शब्द उसके होठों पर जड़ हो गये, जम गये पाषाण बनकर वे भी। उनका अब और आगे बढ़ना निरर्थक था। वह अपने उन भाई साहब को, जिन्हें वह दिमाग़ का पुतला समझता था, अपनी आँखों के सामने एक खिलौने के रूप में बैठा देख रहा था। कठपुतली के खेल का वह एक दाढ़ी वाला गुड्डा मात्र रह गया था जिसकी चोटी हरकली के हाथों में थी और जिससे वह जो चाहे बुलवा सकती थी, जो चाहे करा रही थी।

हरकली मुस्कुरा रही थी अपने पिताजी के पीछे खड़ी और अग्निदत्त यह तमाशा देख रहा था। आज हरकली वाक़ई जीत चुकी थी और उसने मुंशी चतुरसिंह के पतंग का दूसरा भी कन्ना काट दिया था। परिवार का पतंग अब आसमान में बेसहारे उड़ रहा था और उसे लूटने के लिए न जाने कितने लोग पागलों की भाँति मुँह बाये आस्मान पर ताकते हुए उसके पीछे-पीछे लपक रहे थे। मुंशी चतुरसिंह के हाथों में रील से खाली चरखी रह गई थी और माँझा सब लूट चुका था।

अग्निदत्त ने अब और एक शब्द भी अपने भाई साहब से कहना मुनासिब नहीं समझा। जिन्हें आज तक पिताजी के मरने के पश्चात् उसने पिता के स्थान पर देखा था और कभी उनसे कोई झूठी बात नहीं कही थी, वह आज उससे कह रहे थे, 'तुम अपने बच्चों का यक़ीन करो और मैं अपनों का।' यानी सचाई कोई चीज़ ही नहीं रही और उसका निर्णय करना ही व्यर्थ हो गया आज भाई साहब की नज़रों में।

अग्निदत्त पहली ही गाड़ी से अपनी स्त्री और लड़के को लेकर खेखड़े से रवाना हो गया। उसने आज यहाँ खाना नहीं खाया। भाभी से कह दिया, "मेरा पेट कई दिन से ख़राब चल रहा है।

जरा भी कुछ खा लूँगा तो न जाने कितने दिन खटिया की मेहमानी करनी पड़ेगी।"

: २१ :

मुंशी चतुरसिंह ने रामप्रकाश और अग्निदत्त, दोनों को एक ही लाठी से हांकना आरम्भ कर दिया और हरकली की वह बात उनके मन में गुभ गई जब उसने क़रीने के साथ उनके सामने आराम कुर्सी पर बैठ कर मुँह बिचकाते हुए कहा था, "पिता जी! आप नहीं समझते, ये लोग सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं।" और पिता जी ने अपनी नासमझी स्वीकार कर ली थी।

आज कल मुंशी चतुरसिंह भगवान् का लाख-लाख शुक्रिया अदा करते थे कि जिसने उन्हें हरकली जैसी क़ाबिल और लायक लड़की तथा ज्ञानव्रत जैसा योग्य बेटा दिया, कि जिन्होंने वख्त पर ही उनकी आँखें खोल दीं, वरना बाद में पछतावा-ही-पछतावा रह जाता।

"देखा नहीं था आपने, उस दिन चाचा जी कैसे तुनक कर यहाँ से गये थे। चोरी और सोनाजोरी! अपने राजू को तो दूध का धुला सत्यवादी समझ रहे थे और हमारे भोले-भाले ध्यानव्रत को झूठा साबित करने के फ़िराक़ में थे। मैं कहती हूँ मैंने खुद अपनी आँखों से देखा था वह परचा। आख़िर संभाल कर रखने के लिए क्या वह कोई नक़दी की दस्तावेज़ थी जो उसे तिजोरी में बन्द करके रखा जाता।" हरकली जरा बातों की पेचीदगी पैदा करती हुई फिर उसी टापिक पर अपने पिता जी को ले आई।

ज्ञानव्रत भी एक तरफ़ कुर्सी पर बैठा था। वह ज़रा लपक कर हरकली की बात हाथों-हाथ सँभालता हुआ बोला, "वही पीले-पीले से कापी के फटे हुए पन्ने की बात है न जीजी! वह तो आपने मुझे भी दिखलाया था।"

"तुमने भी देखा था ज्ञानव्रत वह परचा।" मुंशी चतुरसिंह ने ज्ञानव्रत की तरफ़ देखते हुए पूछा। मानो वह अपने विचार को और

दृढ़ कर लेना चाहते थे। शायद उनकी अन्दर की आत्मा अभी तक पत्थर के समान कठोर बन कर उस परचे की सचाई पर स्थिर नहीं हो पाई थी।

"जी पिता जी ! मैंने देखा ही नहीं, पढ़ा भी था। क्या मैं नहीं पहचानता हूँ राजू के हाथ की लिखाई को। वह साफ़-साफ़ राजू के ही हाथ का लिखा हुआ था। उसमें आपके और माता जी के खिलाफ़ ज़हर उगला गया था। मैं तो उस परचे को पढ़ने से पहिले कभी सपने में भी नहीं सोच सकता था कि वह राजू, जिसे आज तक आप ध्यानव्रत की तरह छाती से लगाते चले आ रहे हैं, आपके खिलाफ़ ऐसी बातें चाचा जी को लिखने की जुरत कर सकता है।" गम्भीर मुख-मुद्रा बना कर ज्ञानव्रत बोला।

मुंशी चतुसिंह को ज्ञानव्रत से उस पत्र की यह कहानी सुन कर हार्दिक क्लेश हुआ। उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'दुनियाँ में बस छल-ही-छल भरा है। कोई किसी का भाई, भतीजा, सगा, सम्बन्धी नहीं है। सब मतलब के साथी हैं। अगर अपने कोई हैं तो वे अपने बाल-बच्चे ही हैं।'

कितनी मज़ेदार बात थी कि जिस खत को लेकर मुंशी चतुरसिंह ने अग्निदत्त को अपना अंतिम निर्णय सुना दिया कि, वह भविष्य में अपने बच्चों को छोड़ कर अन्य किसी का विश्वास नहीं करेंगे, उस पत्र का मज़मून आज तक उन्होंने नहीं सुना था। वह पत्र अग्निदत्त ने भी नहीं देखा था और हरकली, ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत ने तो उस पत्र को जन्म ही दिया था, लेकिन देखा उन लोगों ने भी नहीं।

आज एकांत में जाकर ज्ञानव्रत और हरकली की काफ़ी देर तक बातें हुईं। दोनों ही बहुत प्रसन्न थे। ज्ञानव्रत प्रसन्नतापूर्वक बोला, "जीजी ! अब तुमने सचमुच वह किला भी फ़तह कर लिया जिसकी मुझे ज़रा भी आशा नहीं थी। पिता जी के दिल और दिमाग़ से अग्निदत्त चाचा जी को इस तरह निकाल कर फेंक देना, तुम्हारा ही

काम था।"

"इस चाचा को पिता जी के दिमाग़ से निकाले बिना काम ही नहीं बनता था ज्ञानव्रत ! तुम नहीं समझ सकते कि पिता जी पर चढ़े हुए इन महाशय के ज़हर को धोने में मुझे कितनी तकलीफ़ों, और मान-हानियों का सामना करना पड़ा है। पिता जी की कितनी झिड़कियाँ खानी पड़ी हैं, कितने लोगों के सामने खानी पड़ी हैं; लेकिन आख़ीर में मियाँ चाचा को भी मैंने पिता जी के दरबार से वह बे-आबरू करके निकाला, वह बे-आबरू करके निकाला कि चचा भी ज़िन्दगी भर याद ही रखेंगे। सच जानो ज्ञानव्रत, यह कसक चाचा के दिल से ज़िन्दगी भर जाने वाली नहीं।" दिल में अपनी विजय का उभार लेकर हरकली बोली।

"इसमें क्या शक है। आपने कमाल किया है जीजी ! अनहोनी चीज़ को होनी करके दिखलाया है। सच कहता हूँ जीजी तुमने हम लोगों को तो बरबाद होने से बचा ही दिया। वरना सचमुच ही पिता जी की ज़िन्दगी भर की कमाई इन्हीं खांदानियों के पेट में उतर जाती और हम लोग इनका मुंह ताकते ही रह जाते।" अपनी जीजी के काम की दाद देते हुए ज्ञानव्रत ने कहा।

"मैं इन लोगों की चालों को बहुत पहिले से ध्यान में रख रही थी ज्ञानव्रत और सोचा करती थी कि आख़िर पिता जी इतने पढ़े-लिखे और अक्लमन्द आदमी होकर भी क्यों इन लोगों के हाथों में खेल रहे हैं? कुछ समझ में ही न आता था। कुछ कहने का प्रयास करती थी, तो डपट दी जाती थी। बेचारी माता जी मेरी बात सुनती भी थीं तो उनका सुनना-न-सुनना एक बराबर था, क्योंकि उन्हें घर के मामलात में पूछता ही कौन था। फिर पिता जी तो वैसे ही आफ़त के परकाले ठहरे। उनके सामने बोलना ही मानो अपनी आफ़त मोल लेना था। लेकिन मैं तो आज भी भगवान् को लाख-लाख शुक्रिया भेजती हूँ कि उसने ठीक समय पर पिता जी की अक्ल दुरुस्त कर दी।" हरकली ने कहा।

"भगवान् ने नहीं कर दी जीजी ! आपने करा दी।" ज्ञानव्रत बोला।

"ऐसा मत कहो ज्ञानव्रत ! करने वाला सब कुछ वही है। मैं क्या कर सकती थी उसकी मरजी के बिना ?" अपने दोनों हाथ जोड़ कर आँखें मीचे हुए आकाश की तरफ़ अपनी छोटी सी थूथड़ी उठा कर हरकली ने कहा। इस समय उसकी मुद्रा बहुत गम्भीर थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो वह कहीं भगवान् के ही आस-पास में बैठी ये बातें कह रही है। एक साध्वी, बाल-ब्रह्मचारिणी का भगवान् के साथ इतना सामीप्य कोई आश्चर्य की बात नहीं थी ज्ञानव्रत के लिए।

हरकली के अन्दर इस समय न केवल ज्ञानव्रात की ही पूरी आस्था थी वरन् मुन्शी चतुरसिंह का पूरा परिवार ही उसके गुणों पर लट्टू था। एक सती जन्म लेकर आई थी मुन्शी चतुरसिंह के घर में, और उसकी प्रशसा में उनका हलक़ सूखता था। अपने नायब टीचरों के बीच बैठतेतो हरकली की प्रशंशा में कहते, "हरकली जैसी संतान का अपने घर में जन्म लेना मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ।"

और मुन्शी जी के चाटुकार अध्यापक भी अवसर-बे-अवसर मुन्शी चतुरसिंह को प्रसन्न करने के लिये कहते, "मुन्शी जी ! कल मैं आपकी अनुपरिस्थित में कोठी पर गया था। आप सम्भवत ! आर्यसमाज के अधिवेशन में गये थे। कोठी पर बेटी हरकली से भेंट हुई और कल ही मुझे प्रथम बार उसके विचारों को जानने का अववसर भी मिला। कितने ऊँचे विचारों की लड़की है, कि क्या कहूँ ? मेरी तो आँखें ही नहीं ज्ञान-चक्षु भी खुल गये उससे चार बातें करके।"

मुन्शी जी यह सुनकर उछल पड़ते और मुस्कुराकर कहते, "मैंने कहा था उस दिन आप लोगों से कि आप अभी हरकली से बहुत सी बातें सीख सकते हैं। कमाल की बुद्धि अता की है उसे भगवान् ने और अब तो उसका अध्ययन भी बहुत बढ़ गया है। कभी अध्यात्म

पर बातें करके देखिये तो जौहर खुल आपके सामने।"

"अध्यात्म पर ?" आश्चर्य-चकित होकर और ज़रा नाटकीय मुद्रा बना कर नायब टीचर कहते।

हरकली की प्रशंसा मुन्शी जी अपनी कक्षा के विद्यार्थियों के सामने भी करने से न चूकते। जब कुछ विद्यार्थी पाठ याद न करते तो वह उनसे कहते, "आप लोग लड़कियों से भी गये बीते हैं। मेरी हरकली ने एक बार पढ़ना छोड़ दिया था और जब फिर पढ़ना प्रारम्भ किया तो फिर वही ताज़गी है उसके पढ़ने में। लेकिन एक आप लोग हैं जो ताज़ा होने पर भी बासी ही दिखलाई देते हैं।"

हरकली की तारीफ़ वह खाना खाते समय हरकली की माता जी से भी करने में पीछे नहीं रहते। मुस्कुरा कर कहते, "देख रही हो न ! एक खाने का तुम्हारा प्रबन्ध था और एक अब यह हरकली का। क्या मजाल जो कभी पाँच मिनट की भी देर हो जाए।"

अपनी बेटी की तारीफ़ सुनकर हरकली की माता जी भी प्रसन्नता में मुग्ध हो जातीं और उन्हें यह ध्यान ही न आता कि हरकली की इस तारीफ़ के पीछे उनको मूर्खता की सनद दी जा रही है।

आज ज्ञानव्रत और हरकली ने यह सलाह की थी कि रात्रि को किसी प्रकार पिता जी को घेरा जाये और उन्हें समझा-बुझा कर इस बात पर आमादा किया जाये कि वह अब अपने मुश्तर्का परिवार के झमेले को साफ़ कर डालें और अपनी जायदाद को क़ानूनन चतुरसिंह, अग्निदत्त और शक्तिसिंह के बेटों में तकसीम कर दिया जाये।

खाना खाकर मुन्शी चतुरसिंह जब कोठी से बाहर निकल कर अपने बग़ीचे में सैर को गये तो समय उपयुक्त समझ कर हरकली भी उनके पीछे-पीछे वहीं पर पहुँच गई और धीरे-धीरे उनके साथ घूमने लगी।

रात की रानी का पेड़ आज बहुत महक रहा था और बेला के फूलों की भी खुशबू आ रही थी। हरकली रात की रानी के पास

खड़ी होकर पिता जी का ध्यान ऊधर आकर्षित करती हुई बोली, "हमारे बाग़ीचे में तो बस एक यही पेड़ है जिसने सारे बाग़ीचे को मंहका रखा है।"

"यह पेड़ वाक़ई बहुत मेंहकता है।" मुन्शी चतुरसिंह बोले।

"यह दुनियाँ भी पिता जी ! एक बाग़ीचे के ही समान है। और इसमें भी चन्द ही पेड़ ऐसे होते हैं कि जो मंहकते हैं।" हरकली ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

मुन्शी चतुरसिंह की आत्मा हरकली के इन शब्दों को सुनकर खिल उठी और उन्हें लगा कि मानो उनकी हरकली ने कोई ज्ञान का पिटारा उनके सामने लाकर खोल दिया। वह मुग्ध हो उठे हरकली के इस वाक्य पर और गद्-गद् होकर प्रमोद-भाव से बोले, "तुमने बहुत ठीक कहा है बेटी ! महकने वाले पौदे संसार में कम ही होते हैं। अधिकांश तो गंदगी ही फैलाने के लिये आते हैं।"

"लेकिन मुझे नाज है अपने भाई बहिनों पर पिता जी !" बात का रुख़ बदलते हुए हरकली बोली। "मेरे भाई बहिन वे पौदे हैं कि जिनकी ख़ुशबू दिग् दिगन्त को मंहका देगी और आपके नाम तथा यश को वहाँ तक पहुँचायेगी कि जिसका क़यास भी आज नहीं किया जा सकता।"

"यह सब परमात्मा की महिमा है बेटी ! कि जिसने तुम लोगों को ऐसे गुण प्रदान किये।" भगवान् के ध्यान में लीन होकर मुन्शी चतुरसिंह ने कहा।

"भगवान् की महिमा अपरमपार है पिता जी ! जिसे ऊँचा उठाना होता है उसे वह सद्बुद्धि प्रदान करता है और जिन्हें नीचे गिराना होता है उनकी बुद्धि मलीन हो जाती है। आप दूर क्यों जाते हैं अपने भतीजे रामप्रकाश को ही देख लीजिए।"

"बस, उस नीच का नाम न लो मेरे सामने।" रामप्रकाश का नाम आते ही मुन्शी चतुरसिंह आग-बबूला होकर बोले और उनका मूड

ही बदल गया ।

हरकली ने यह बात जिस अभिप्राय को लेकर कही थी, वह पूरा हो गया। फिर जरा और बातें इधर-उधर फेर कर वह बोली. "पिता जी ! आज एक बात कहूँ आप से ?"

"हाँ हाँ कहो हरकली ! संकोच की क्या बात है ?"

और दोनों ही रात की रानी के पास बने चबूतरे पर पड़े हुए मुढ़ों पर बैठ कर बातें करने लगे ।

"आप देख रहे हैं पिताजी ! कि हम लोग अब रामप्रकाश भाईसाहब के दुर्व्यवहारों के काफ़ी शिकार हो चुके हैं। आपसी सम्बन्धों में अब प्रेम और सहानुभूति के लिए कोई स्थान बाकी नहीं रह गया है। ऐसी दशा में यदि हम लोग अपनी जायदाद का बँटवारा करके क़ानूनी तरीके से अलग-अलग हो जायें तो यह सभी के हक़ में बहुत अच्छा होगा।" हरकली ने निहायत संजीदगी के साथ कहा ।

"तुम्हारा ख़याल ठीक है बेटी ! मैं तो कई दिन से स्वयं भी इस दिशा में विचार कर रहा हूँ। कल मैं वकील साहब के पास गया भी था। जायदाद के सब कागज़ात उन्हीं को दे आया हूँ।"

"तो क्या विचार था उनका ! क्या जायदाद आप तीनों भाइयों में बराबर-बराबर तक़सीम होगी ?" निहायत सादगी के साथ हरकली ने पूछा। वह पिता जी के मन की बात जानकर तब अपनी बात कहना चाहती थी ।

"यह एक से लाख तक नहीं होगा हरकली ! मैं आज तक अपनी औलाद को भुलाकर भाई-भतीजों का ख़याल करता चला आ रहा हूँ। अब ज़िन्दगी के आख़िरी दिनों में भी मैं तुम लोगों को भुलाकर नहीं चल सकता।" गम्भीरता पूर्वक मुन्शी चतुरसिंह ने कहा और एक आशा भरी दृष्टि से उन्होंने हरकली के मुँह पर देखते हुए अनुभव किया कि इन्होंने वही सोचा और किया है, जो हरकली चाहती है।

"तब फिर क्या होगा पिता जी !" हरकली ने पूछा ।

"होगा क्या ? वही होगा जो मैं चाहूँगा । तमाम जमीन तो मेरे ही नाम है । ये सब लोग लाख सिर पटक कर मर जायें तब भी एक खूड़ जमीन अपने बारहवें हिस्से से अधिक नहीं पा सकेंगे । वकील साहब ने मुझे पूरा आश्वासन दे दिया है ।" दृढ़तापूर्वक मुंशी चतुरसिंह बोले ।

"ज्ञानव्रत भय्या का भी यही ख़याल है जो आप कह रहे हैं ।" अपने को फिर भी पीछे ही रखते हुए चालाकी के साथ हरकली बोली, "और इन्साफ़ भी यही कहता है । आख़िर रामप्रकाश को बिना ज़मीन में रुपया दिये किस प्रकार हिस्सा दिया जा सकता है । उसके पिता जी तो हमेशा परिवार पर एक भार बनकर ही रहे थे । कभी एक छदाम की कमाई उन्होंने करके शायद ही दी हो ।"

"कभी एक छदाम की क्या एक कौड़ी की भी नहीं । उल्टा जब-तब वह मुझी से रुपये ऐंठने के फ़िराक़ में रहता था ।" और मुंशी चतुरसिंह ने हरकली को कितने ही वे अवसर गिना डाले कि जब उन्होंने शक्तिसिंह को दो-चार, दस-पाँच रुपये दिये थे ।

"लेकिन अग्निदत्त चाचा जी के बारे में भी क्या आपका यही ख़याल है क्या ?" ज़रा और गम्भीर होकर हरकली ने पूछा ।

हरकली अपने पिता जी के दिल की थाह लेना चाहती थी । इस समय वह सब से ज़्यादा गम्भीर थी । उसके दिल की थाह का किसी को पता नहीं था ।

अग्निदत्त का नाम सामने आते ही मुंशी चतुरसिंह के दिल में एक कसक सी पैदा हो गई । वह बोले नहीं कुछ देर तक । मानो कोई बात उनकी समझ में ही नहीं आ रही थी ।

पिता जी को इस गम्भीर समस्या पर चुप होते देख कर हरकली समझ गई कि वह धर्म-संकट में फँस गये हैं । हरकली ने तुरन्त अपना सुझाव सामने रखते हुए कहा, "हमें किसी के साथ बेईमानी नहीं करनी

है पिता जी ! आप यह जान लें बस ! आपकी औलाद आपके नाम को बट्टा नहीं लगा सकती।"

"यह मैं जानता हूँ बेटी !" ज़रा सांस लेते हुए मुंशी चतुरसिंह ने कहा।

हरकली के इन शब्दों ने मुंशी चतुरसिंह को उस घुटन के वातावरण से खींच कर बाहर ला दिया जिसकी दलदल में अग्निदत्त का नाम आ जाने पर उनके प्राण फंस गय थे।

'मै अग्निदत्त के साथ बेईमानी नहीं कर सकता।" गम्भीरता पूर्वक मुंशी चतुरसिंह बोले।

"तो उन्हें आप पत्र लिख दीजिये और मालूम कर लीजिये कि वह मुद्दई बनना चाहते हैं या मुद्दायला। क्योंकि जब आप वकील साहब से भी सलाह ले चुके हैं तो मुश्तर्का जायदाद की तक़सीम तो आपको करा ही डालनी चाहिए।"

"तुम्हारा ख़याल ठीक है बेटी ! मैं आज ही अग्निदत्त को चिट्ठी लिखे देता हूँ और उससे भी साफ़-साफ़ मालूम कर लेना चाहता हूँ कि उसकी क्या राय है ?" उसी संजीदगी के साथ मुंशी चतुरसिंह ने कहा।

इसके पश्चात् और बातें आगे न बढ़ सकीं। मुंशी चतुरसिंह वहाँ से उठ कर बैठक में चले गये और उन्होंने एक पत्र भी अग्निदत्त के नाम लिख कर भेज दिया।

हरकली वहीं बैठी रही। पिता जी के चले जाने पर ज्ञानव्रत भी वहीं पहुँच गया। वह पहिले से ही कोठी की एक दीवार के नीचे रात की रानी की ओट में खड़ा ये सब बातें सुन रहा था।

ज्ञानव्रत की मुख-मुद्रा इस समय बहुत ही गम्भीर बनी हुई थी। वह हरकली के सामने पड़े मूढ़े पर बैठता हुआ बोला, "जीजी ! तुम देख रही हो कि पिता जी की ये बातें अभी तक इनका पीछा नहीं छोड़ रहीं। मुझे तो साफ़-साफ़ दीख रहा है कि यह हम लोगों को एक दिन

ख़ाना-ख़राब करके छोड़ेंगे।"

"ज़रा जल्दबाज़ी से काम लेने की कोशिश न करो ज्ञानव्रत! तुम नहीं जानते हो कि पिता जी को चचा अग्निदत्त से अलग करने में क्या-क्या किया है। जरा सी. बात सामने आई कि बस बिगड़ना शुरू हो गये। तुम्हारे मुँह से निकली हुई बात सीधी सरावे और सहारनपुर में ही जा कर दम लेगी और वह पिता जी के कानों में जहर का काम कर सकती है।"

"यह मानता हूँ जीजी! परन्तु······"

"परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं ज्ञानव्रत! तुम्हें जानना चाहिए कि जो माला मैं तय्यार कर रही हूँ वह कच्चे धागों की माला है। उस पर अभी से जोर आजमाने की कोशिश न करो। लेकिन इतना विश्वास रखो कि एक दिन यही माला सूत का वह मज़बूत रस्सा बन जायेगी कि यदि तुम चाहोगे तो वह फाँसी का भी काम दे सकेगी।" हरकली ने कहा।

इसी समय ध्यानव्रत भी वहाँ आ पहुँचा और उससे हरकली ने धीरे से कहा, "ज़रा बैठक में जाकर देखो तो ध्यानू! पिता जी क्या कर रहे हैं।"

और ध्यानू उछलता हुआ उधर को चल दिया। कुछ ही देर में उसने आकर सूचना दी, "कुछ लिख रहे हैं।"

वह दूर से यही देख सकता था। पिताजी के पास तक पहुँचते उसका दिल दहलता था। उनका वह मोटा सोटा उसे कभी नहीं भूलता था जो कितनी ही बार उसकी कमर-गद्दी कर चुका था और पिताजी के वह करारे-करारे तमाचे भी उसकी छोटी-सी खोपड़ी में हर समय चक्कर लगाते रहते थे जो वक़्त-बे-वक़्त उसके गालों पर चिपक कर रह गये थे।

हरकली की आज्ञा से जो कुछ भी अभिनय वह करता था, उसे करते समय उसके दिल की क्या दशा होती थी, यह वही जानता था।

एक तरफ़ पिताजी का भय लाल-लाल आँखे निकाले खड़ा रहता था और दूसरी तरफ़ जीजी का उसके लिए त्याग, प्यार और बड़प्पन। जीजी कहती, "ध्यानव्रत साहसी बनो ! अपने हक़ के लिए यदि एक दिन पिताजी से भी आमने-सामने होने की नौबत आ जाये तो वही कहो जिसमें तुम्हारा हित हो। जो आदमी दुनियाँ में अपना हित नहीं कर सकता, अपने हक़ को वसूल नहीं कर सकता, वह आदमी नहीं हिजड़ा है। तुम हिजड़े बनना चाहते हो या वीर ?"

"वीर" ज्ञानव्रत साहस के साथ कहता।

"तो वह करोगे जो मैं कहती हूँ। मैं तुम्हें वीर बनाऊँगी, साहसी बनाऊँगी।" हरकली ज़रा सीना उभार कर कहती।

"और तुम बन सकोगे ध्यानव्रत ! अपनी बड़ी बहिन की आज्ञा का पालन करना तुम्हारा धर्म है। सही या ग़लत का विचार करना तुम्हारा काम नहीं।" ज्ञानव्रत गम्भीर मुद्रा में कहता।

और ध्यानव्रत की छोटी खोपड़ी में यह पूरी तरह भर जाता कि वाक़ई सही-या-ग़लत पर विचार करना उसका काम नहीं है। उसका धर्म है बड़ों की आज्ञा-पालन करना। अपनी बड़ी बहिन की आज्ञा का पालन करना; अपने बड़े भाई की आज्ञा का पालन करना।

: २२ :

खेखड़े से अपने बड़े भाई साहब के पास से लौटने पर बाबू अग्निदत्त की समझ में आया कि वह धोखे में थे, मूर्ख बन रहे थे। उन्होंने आज तक अपने बड़े भाई साहब को पिता समझते रहे, वह उनकी ग़लती थी। पिता का स्थान भाई नहीं ले सकता। उनकी आँखों के सामने एक बार राम, लक्षमण और भरत का सुनहरा आदर्श आकर खड़ा हुआ और फिर मानो उस पर किसी ने काली स्याही पोत दी। उसमें फिर सुनहरी और रुपहली झलक मारी, कल्पना और आदर्शों की तस्वीरें निखर कर सामने आईं और फिर उनकी छाया मात्र भी अपना

अस्तित्व क़ायम न रख सकीं।

अपनी स्त्री की ओर देखता हुआ निराशा भरे शब्दों में बोला, "देवी ! सब धोखा-ही-धोखा निकला। भाई साहब का कल जैसा रूप क्या कभी तुमने भी सोचा था कि जिन्दगी में सामने आयेगा ?"

"मैं गँवार बेपढ़े-लिखे बाप की बेटी भला आपके धर्मावतार भाई साहब को क्या जान सकती थी, क्या परख सकती थी ?"

अग्निदत्त की स्त्री के शब्दों में एक तीखा व्यंग्य था, जिसे आज अग्निदत्त ने सुनकर भी बुरा नहीं माना। उन्हें याद आ रहे थे वे सभी अवसर जब उनकी स्त्री के द्वारा उनके भाई साहब की नीयत में शक की एक साधारण सी रेखा खिंच जाने पर भी उन्होंने उसे बुरी तरह फटकार और दुत्कार दिया था। अपने भाई साहब को अग्निदत्त सचमुच ही धर्मावतार समझते थे। उनकी सच्चाई और ईमानदारी में शक करने को वह ईश्वर की सच्चाई और ईमानदारी में शंका करना मानते थे।

आज अग्निदत्त को न केवल अपनी, वरन अन्य मित्रों, सम्बन्धियों और यों ही आपस की साधारण बातों में कही गईं वे सभी बातें याद आ रही थीं जिनमें उनके भाई साहब की नीयत पर शक किया गया था। सबसे जोरदार शब्द उनके ससुर के थे जो उन्होंने गाँव के सिवाने से अपनी लड़की को अग्निदत्त के साथ बिदा करते समय कहे थे। उन्होंने कहा था, "मुझे चतुरसिंह की ईमानदारी में पूरा-पूरा शक है। भाई मेरे भी हैं लेकिन उनकी जायदादों पर मैंने अपना नाम नहीं चढ़वाया हुआ। जिसकी जितनी जमीन है, उसका उतनी पर नाम है। मैं भी अपने घर में सबसे बड़ा हूँ और कार-मुखत्यार भी हूँ। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मैं सरकारी काग़ज़तों में से उनके नाम ही ग़ायब करा डालूँ।"

अग्निदत्त उस समय बच्चा नहीं था। नौकरी कर रहा था और एक

बच्चे का पिता भी वह बन चुका था। लेकिन सच बात यह थी कि उसे उस समय अपने ससुर का भी अपने बड़े भाई साहब की ईमानदारी में शक करना बुरा लगा था। उत्तर उसने कुछ नहीं दिया उन्हें, लेकिन एक खलिश सी उसके दिमाग़ पर अवश्य आई।

आज उसी खलिश ने उभर कर अग्निदत्त से कहा, "ओ नातजुर्बेकार इन्सान मैं अभी तक मौजूद हूँ। उस दिन तूने अपने एक हमदर्द पिता की बात पर नाराज़गी प्रकट की थी। आज तुझे उसी पर पश्चाताप करना पड़ रहा है।"

अग्निदत्त तिलमिला उठे इस बात के याद आते ही। लेकिन अब तीर प्रत्यंचा से छूट चुके थे। समय निकल चुका था। संतोष को छोड़कर अब और कोई चारा ही नही था उसके सामने ; और इसमें कोई शक नहीं कि अग्निदत्त मे संतोष ग़ज़ब का है।

संतोष की मात्रा उनकी स्त्री मे भी कम नही है, लेकिन इस हादसे ने उसे कुछ चिड़-चिड़ा बना दिया और उसका मन यह कहने लगा था कि यह सब ग़लती उसके पति ने ही की है। इसीलिए अब कभी-कभी इन घर के मामलात को लेकर उनकी आपस में झड़प भी होने लगी। और अग्निदत्त जैसे कर्मठ तथा साहसी व्यक्ति को बहुत सी बातें सुनकर भी चुप रह जाना पड़ता था। वह अपने दिल से अपनी दूर अंदेशी की नाक़ाबलियत को महसूस करता था और यह समझता था कि उसके भाई साहब के आचरण ने उसकी स्त्री और पुरुष की तराज़ू के पलड़ों में उसका पलड़ा हलका कर दिया।

इन्हीं दिनों अग्निदत्त के पास उसके भाँजे की चिट्ठी आई और उसमे लिखा था, "आदरणीय मामाजी,

मैं इन दिनों घर की कमज़ोर हालत से परेशान हूँ। देहली जाकर कुछ कारोबार करना चाहता हूँ। यदि आप कुछ दिन के लिए माताजी को अपने पास रखलें तो आपकी बड़ी कृपा होगी और मुझे इस कठिन परिस्थिति में मदद मिल जायेगी।"

अग्निदत्त यह पत्र पाते ही अपनी बहिन को अपने पास ले आये और उनकी स्त्री ने भी कहा, "यह घर क्या उनका नहीं है ? जब तक उनका जी चाहे, रहें। उनकी दो रोटियों में क्या हम ग़रीब हुए जाते हैं। दो रोटियाँ सभी के नाम की भगवान् देता है।"

अग्निदत्त का जीवन इस समय काफ़ी उथल-पुथल का चल रहा था। अपने घर की जमीन-जायदाद की तरफ़ से उन्हें भविष्य अंधकार-पूर्ण दिखलाई देने लगा था। इसलिए फ़िलहाल उन्होंने अपना ध्यान उस तरफ़ से हटा सा लिया और अपनी मौजूदा स्थिति में ही संतोष करके वह अपना पारिवारिक जीवन चला रहे थे। अपने लड़के को वह अपने ही पास ले आये थे।

अग्निदत्त का ख़ानआलमपुरा वाला नम्बरटेकरी का जमाना अब ख़त्म हो चुका था। क्लर्की के इम्तहान में वह पास हो गये थे और अब फिर उन्हें पुरानी दबदबे वाली हेडक्लर्की की कुर्सी मिल गई थी। कैरिज विभाग के लम्बे-चौड़े स्टाफ़ पर फिर वही पुराना रौब था। स्टाफ़ के आदमियों पर बाबू अग्निदत्त के लम्बे तजुरबे की धाक थी और बड़े-बड़े बाबू भी उनकी सलाह का लोहा मानते थे। इस बार यह कुर्सी अग्निदत्त को उसके इंचार्ज की मेहरबानी से नहीं मिली थी वरन् उसकी अपनी क़ाबलियत के आधार पर मिली थी।

अग्निदत्त की शहर सहारनपुर के सामाजिक क्षेत्र में भी ज़बरदस्त इज्जत थी। वह यहाँ पर भी प्रधान थे आर्यसमाज के। शहर के बड़े-बड़े अफ़सर और लाले उनकी इज्जत करते थे। विशेष रूप से आर्य-समाजी क्षेत्र में तो वह पुजते ही थे। उनकी ईमानदारी, दियानतदारी, कर्मठता और मिलनसारी ने उन्हें हरदिल अज़ीज बना दिया था।

आर्यसमाज के काम की उन्हें ऐसी धुन थी कि क्या रात, क्या दिन, हर समय वह तैयार रहते थे। उनके मकान पर आर्य समाजी पंडितों, भजन-उपदेशकों, प्रचारकों और ज्ञानी ऋषि-मुनियों का ताँता

जूतियाँ। फिर बैठक के कोने में रखा हुआ अपना गोल मूँठ का वह सोटा लिया, जिसे देखकर ध्यानव्रत का दिल सुबकियाँ लेने लगता था और जिसकी करारी मार को अभी तक ज्ञानव्रत भी लाख कोशिश करने पर नहीं भुला पाया था।

हवन के पात्र की चिकनाई से जहाँ सिर, हाथ, मुँह और दाढ़ी को मुंशी चतुरसिंह ने चिकनाया था वहाँ अपने सोटे पर भी वह हाथ फेरना नहीं भूले। फिर ज्ञानव्रत की तरफ़ इशारा करके बोले "देखो, ज़रा उस डेक्स के अन्दर से हमारे क़ानूनी काग़ज़ात का बस्ता तो निकाल लो।"

ज्ञानव्रत ने विद्युत-गति के साथ आज्ञा का पालन किया।

चलते समय बहुत संजीदगी और दृढ़ता के साथ मुंशी चतुरसिंह हरकली से बोले, "बेटी, आज निपटारा ही करके आऊँगा इन मामलों का। इन लोगों ने अभी तमाशा समझ रखा है। जब दूध से मक्खियों की तरह निकाल कर फेंक दूँगा, तब दिमाग़ अपने आप ठिकाने पर आ जायेंगे।"

मुंशी चतुरसिंह चल दिये वकील साहब की तरफ़ और ज्ञानव्रत काग़ज़ात का बस्ता बगल में दबाये उनके साथ-साथ जा रहा था।

हरकली आज अपने लक्ष पर पहुँच चुकी थी। उसकी इच्छित बात आज उसके पिता जी करने जा रहे थे। उसे नाज़ था अपनी दूर-अंदेशी पर कि आखिर उसके पिता जी को भी वही करना पड़ा जो वह चाहती थी।

हरकली बैठक से बाहर निकल कर अपने बाग़ीचे में घूमने लगी और उसने मन-ही-मन कहा, 'भगवान् तू बड़ा ही दयालू है। तूने पिता जी को सही रास्ता दिखला दिया; नहीं तो न जाने हम लोगों की क्या दशा होती।'

हरकली के शरीर की नसें इस समय उत्साह से फड़क रही थीं। उस दिन का स्वप्न उसकी आँखों के सामने था जब अदालत अग्निग्रस्त

और रामप्रकाश तथा धर्मप्रकाश के नाम जायदाद की तक़सीम में बारहवाँ-बारहवाँ हिस्सा लगा देगी और उसे क़ानूनन हक़ होगा कि वह सरकारी पुलिस की मदद से अपनी कुल जायदाद के दस हिस्सों पर क़ाबिज होकर अपने भाई ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के लिए एक लम्बा-चौड़ा खेती का फ़ार्म तय्यार करा सकेगी।

इस फ़ार्म में नये क़िस्म की खेती होगी। नये तरीक़ों पर खेती की जायेगी। एक ट्यूबवेल लगेगा और नये बाग़ात भी लगाये जायेंगे। स्वर्ग बन जायेगा उसके दोनों भाइयों का वह घर, जिसमें उनके बाल-बच्चे किल्लोलें करते फिरेंगे। हरकली को जीजी-जीजी, बुआजी-बुआजी कहते सबके हलक़ सूखेंगे और उसका अपार प्यार उन पर ईश्वरीय वर्षा के समान सर्वदा बरसता रहेगा।

उसकी पूजा की जायेगी उस परिवार में। उसकी भावजें उसके संकेत पर नाचेंगी और वह शासन करेगी इस इतने बड़े अमले-के-अमले पर।

: २३ :

रामप्रकाश सरावे में अपने भाई धर्मप्रकाश को स्थापित करके अपनी नौकरी पर चला गया। वह अपना हिस्सा सरावे की जायदाद में एक तिहाई ही समझता था और इस समय की धांधले बाज़ी में उसके हाथ लगभग आधी ज़मीन आ गई थी। इस ज़मीन के अपने हल के नीचे से निकल जाने का ज्ञानव्रत और हरकली को जबरदस्त मलाल था। जितना उन्हें मलाल था उससे कई गुनी ख़ुशी रामप्रकाश को थी कि उसने बिना हल्दी और फिटकिरी लगाये ही अपना वह रंग जमा लिया कि जो मुंशी चतुरसिंह तथा अग्निदत्त अपनी मेहनत और मशक्कत के बावजूद भी न जमा सके।

परिवार के पतंग की दोनों कन्नियाँ हरकली काट चुकी थी और वह इस समय निराधार वायु-मण्डल में उड़ रहा था। उसकी धज्जियों को लूटने के लिए रामप्रकाश, धर्मप्रकाश, हरकली, ज्ञानव्रत और

ध्यानव्रत मुंह बनाये बैठे। अग्निदत्त दूर सहारनपुर में बैठा-बैठा यह तमाशा देख रहा था और अपनी स्त्री के पास बैठ कर कभी-कभी अपनी लाचारी पर कुढ़ लेता था। पतंग की लूट मे शामिल होने का न तो उसके पास समय ही था और न उसके पास आदमी ही थे। उसका लड़का अभी छोटा ही था और वह उसे तालीम दिलाना ज्यादा आवश्यक समझता था बनिस्बत उस परिवार की लूट में शामिल करने के।

इस प्रकार चौधरी आभाराम के परिवार के अब स्पष्ट तीन दल हो गये थे जिनका संचालन हरकली तथा ज्ञानव्रत, रामप्रकाश और अग्निदत्त द्वारा हो रहा था। परिवार का पुराना मकान बटवारा न होने के कारण चारों तरफ से ढह गया था। उसकी मरम्मत मे कोई भी फ़रीक़ रुपया लगाना नहीं चाहता था। आधे-आधे मकान मे धर्मप्रकाश और ज्ञानव्रत रह रहे थे।

पारस्परिक द्वेष और एक दूसरे की चालों के आघातों से दिलों पर बने घावों को लिए एक ही मकान में रहना सम्भव नही था।

सरावा जिन दिनो खुशहाली पर था, उन दिनों जहाँ साहूकार और व्यापारी लोग यहाँ रहते थे, वहाँ सुनारों के भी घर आबाद हो गये थे। लेकिन ज्यों-ज्यों इस खुशहाली ने किनारा किया त्यों-त्यों सुनारे जैसे कारीगरों का भी वहाँ रहना दूभर हो गया। इन लोगों ने भी अच्छी रकमें पैदा की थीं और बड़ी-बड़ी हवेलियाँ गाँव में बनाली थीं। इन्हीं सुनारों की एक हवेली पर मुंशी चतुरसिंह ने कुछ वर्ष पूर्व तीन सौ रुपया कर्ज़ दे दिया था। यह कर्ज अब बढ़ कर छै सौ रुपये पर पहुँच गया था। यह तीन सौ रुपया रामप्रकाश, अग्निदत्त और मुंशी चतुरसिंह ने शामलात ही दिया था और तीनों के नाम से ही कागज भी लिखा गया था।

पुराने फूटे घर में हरकली और ज्ञानव्रत को रहते शर्म आने लगी थी। हवेली के स्वप्न तो उनके पुराने ही थे और अब धर्मप्रकाश जैसे नालायक के साथ एक मकान में उनका निभना कठिन हो गया था।

जहाँ एक ओर इनका हवन, भजन, पूजा, पाठ और ज्ञान-ध्यान चलता था और वहाँ दूसरी ओर धर्मप्रकाश की चंडाल-चौकड़ी जुटती थी ।

"भय्या ज्ञानव्रत !" एकदिन धर्मप्रकाश की किसी बात से तंग आकर हरकली ने कहा, "अब हम लोगों का इस मकान में रहना बिलकुल दुश्वार होगया है । हमारी बहू बेटियों के सामने धर्मप्रकाश का इस तरह आवारा चौकड़ी के लोगों को बुलाकर उनके साथ हुक्का सट्याना मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती । फिर रोज़-रोज की आपसी झगड़े बाजी करना भी कठिन है ।"

"देख तो मैं भी रहा हूँ जीजी ! और मन-ही-मन जलन भी होती है । लेकिन इन गुण्डों को मैं मुँह नहीं लगाना चाहता ।" ज्ञानव्रत बोला ।

"तुम्हारा ख़याल ठीक है ज्ञानव्रत ! इन लोगों के मुँह नहीं लगना चाहिए । इन्हे तो जहाँ तक भी बन पड़े बस क़ानूनी पेंच से ही मारना ठीक है । अदालती समन आते ही इन के दिमाग़ दुरुस्त हो जायेंगे । लेकिन मेरा कुछ और ख़याल हो रहा है ।"

"वह क्या जीजी !" ज्ञानव्रत ने गम्भीर मुद्रा बना कर पूछा ।

"क्यों न हम लोग उस सुनारों वाली हवेली को ख़रीदलें और इस मकान को ही छोड़ कर वहाँ चले जायें ? रोज़-रोज़ का झंझट खत्म हो जायेगा" । हरक़ली बोली ।

"बात तो आपने लाख रुपये की कही है जीजी ! लेकिन सुनार तो दो हज़ार रुपया माँग रहे हैं हवेली का ।" ज्ञानव्रत ने सूचना दी ।

तो क्या बात है, देगें दो हज़ार भी ! ज़रा आँखें तो खुलेंगी रामप्रकाश की, और गाँव वाले भी समझेंगे कि इन से झगड़ा लेना लोहे के चने चबाना है ।"

हरकली की यह साहसपूर्ण बात सुनकर ज्ञानव्रत का दिल गुदगुदा उठा और सती साध्वी बहिन के प्रति श्रद्धा से उसका मस्तिष्क झुक गया ।

"तो फिर कैसे रुपये का प्रबन्ध होगा जीजी ?" ज्ञानव्रत ने पूछा।

"होगा क्या ? छै सौ रुपया तो उन्हें हमारा देना ही है। चौदह सौ रुपये में से पाँच सौ मेरे पास हैं। अब रह जाती है नौसौ रुपये की बात, सो तीन सौ रुपया पिता जी ने रखा हुआ है। बाक़ी छै सौ रुपया तुम अपने ससुर से मांग लाओ। वह इंकार नहीं करेंगे, पैसे वाले आदमी हैं और मुझे पता है कि एक बार उन्होंने चाचा जी को हज़ारों की रक़म उधार देने के लिए कहा था।"

हरकली का सुझाव ज्ञानव्रत की समझ में सोलहों आने आ गया और वह दूसरे ही दिन अपने ससुर साहब के पास यह प्रस्ताव लेकर पहुँच गया।

ससुर महोदय को भी रुपया देने में देर न लगी और ज्ञानव्रत तीसरे ही दिन रुपया लेकर हरकली के पास आ पहुँचा। छै सौ रुपया लेकर हरकली ने उन्हें कई बार गिना और फिर उनमें अपने पाँचसौ मिलाकर ये दोनों मुन्शी चतुरसिंह के पास जा पहुँचे। मुन्शी चतुरसिंह के लिए अपने बच्चों की इस क़ाबिल सलाह पर सहमत न होने का कोई कारण ही नहीं था। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक अनुमति ही नहीं दी वरन् दो दिन के अन्दर सब मामला तीन-पाँच करके समाप्त कर दिया।

धर्मप्रकाश आज कल भी ऐश कर रहा था। अपने यहाँ जो पैदा होता था वह तो सब था ही उसका और अपने नाना के यहाँ से भी कुछ छीन-झपट लाता था। बड़े भाई साहब भी मदद में कोई कसर नहीं छोड़ते थे। ख़ासतौर पर मवेशियों की तो इसके पास कमी रहती ही नहीं थी, क्योंकि रामप्रकाश के थाने के पास वाले काँजीहौज़ में जो कोई भी अच्छा मवेशी आ जाता था वह तो कभी रामप्रकाश के हाथ से निकल कर जा ही नहीं सकता था। चंद टकों में ही वह अपने किसी आदमी के नाम नीलामा कराके सरावे को रवाना कर दिया जाता था।

इस तरह के मवेशियों को रखना धर्मप्रकाश के लिए एक मुसीबत थी क्यों कि जो मवेशी रामप्रकाश भेजता था उनको बेचने की उसे

आज्ञा नहीं थी। उनके चारे का प्रबन्ध करना धर्मप्रकाश के लिए हमेशा ही एक समस्या बनी रहती थी।

वह तो उसके भाग्य से उसे अपने नाना का सहारा था कि जो बटाई पर खेती कराते थे और अपना कोई मवेशी रखते ही नहीं थे। एक आध गाय या भैंस अपने और धर्मप्रकाश की माता जी के खर्च के लायक रख छोड़ी थी, इसलिए यहाँ का चारा भी धर्मप्रकाश के मवेशियों के ही काम आ जाता था।

धर्मप्रकाश अपनी बैल-गाड़ी लेकर जब एक दिन सुबह-ही-सुबह खरखौदे से लौटा तो क्या देखता है कि तमाम मकान खाली पड़ा है और एक छप्पर में उसकी माट-मटोलियाँ रखी हुई हैं। घर का सब सामान ध्यानव्रत और हरकली ने रातों-रात इसलिए यहाँ से उठवा कर सुनारों वाली हवेली में पहुँचा दिया कि कहीं धर्मप्रकाश उसमें से भी हिस्सा न मांगने लगे, क्यों कि सामान तो वह भी मुश्तर्का ही खानदान का था।

यह सामान अधिकांश में कुछ नहीं था, वही अग्निदत्त का भेजा हुआ सामान था, जो रेलवे के कारीगर अपने बाबू को खुश करने के लिए बनाकर दे जाते थे। कुछ लोहे के कील-कांटे थे और कुछ लकड़ी की मेज-कुर्सियाँ; कुछ आलमारी और खाना रखने की ढोलियाँ थीं और कुछ खाट पीढ़े, कछ डोल बाल्टियाँ और इसी तरह का घर गृहस्थी का अल्लम-गल्लम सामान था।

"बहुत खूबी से निकाल लाये सब सामान जीजी! वरना इस पर भी नाहक की सिर फुटव्वल होती। यह मैंने सोच रखा था कि छने तो मैं धर्मप्रकाश को एक कील भी नहीं देता लेकिन बेफ़ायदा की गाँव में चर्चा तो फैलती ही।" बड़े विचार के साथ ज्ञानव्रत ने कहा।

इसलिए मैंने इस काम को रातों-रात खत्म कराया क्यों कि इन लोगों की नीचता को मैं भली प्रकार जानती हूँ। जब सब सामान सही सलामती से यहाँ आगया तब मेरे मन में ज़रा शांति हुई।" हरकली बोली।

"यह तुम्हारा ही काम था जीजी ! कि तुमने उस नर्क से हमें निकाल लिया । वरना तो दिमाग़ सड़ जाता वहाँ हर समय की हुक्के की दुर्गंध से ।" ज्ञानव्रत ने नाक चढ़ाते हुए कहा ।

इस समय ये बातें ऊपर के चौबारे में बैठ कर हो रही थीं जहाँ से उनका कुआँ, उनके खेत और बाग़ सब साफ़-साफ़ दिखाई देते थे ।

एक नज़र ज़रा उधर भी फेंक कर हरकली बोली, "लो स्वर्ग में बिठला दिया है तुम लोगों को । अब तुम जानो और तुम्हारा काम । तुम्हारा सारा जंगल तुम्हारी नज़रों के सामने है । यदि चाहो तो यहीं बैठ कर अपनी खेती की रखवाली कर सकते हो ।"

और फिर अपने पुराने फूटे मकान की तरफ़ नज़र घुमाते हुए बोली, "यह हमारे बाप-दादों का मकान है । इसी मे रहकर सड़ना चाहिए, मैं इन दक़ियानूसी ख़यालातों को नहीं मानती । अब देखना धर्मप्रकाश के जौहर ज़रा । हुक्का ही नहीं जहाँ हम लोग हवन करते थे वहाँ शराब की बोतलें खुलेंगी, गोश्त की रकाबियाँ चाटी जायेंगी, और हड्डियाँ चचोड़ी जायेंगी ।"

"बस यही तो ज़रा सी कसस रह गई दिलमें जीजी ! उस मकान को मैं इस तरह छोड़ना नहीं चाहता था ।" ज्ञानव्रत बोला ।

"दर्द मेरे दिल में कम नहीं हुआ ज्ञानव्रत उसे छोड़ने और इस तरह धर्मप्रकाश के हवाले कर देने में लेकिन और चारा नहीं था इस समय" गम्भीरता पूर्वक हरकली ने कहा ।

और वाक़ई उसी दिन उस बैठक में धर्मप्रकाश ने अपनी चौकड़ी के लोगों की दावत की । ठर्रा शराब की ठेके पर से चार बोतलें मंगाई गई और फिर सबने एक दूसरे की तंदुरुस्ती के लिये अपने जामों को आपस में टकरा-टकरा कर होठों से लगाया ।

शराब के नशे ने इस चौकड़ी के मेम्बरों को आपस में बुरी तरह जकड़ लिया । सभी ने धर्मप्रकाश के हाथ पर हाथ मारकर जीदारी के साथ उसका साथ देने की क़सम ली । सभी ने एक स्वर में कहा, "जमे

रहो प्यारे ! हम सब देख लेंगे । इन बाबू लोगों का पत्ता हमारे सामने सरावे में नहीं जम सकता ।"

इस पार्टी में सिर्फ़ गाँव के ही उसके साथी शामिल थे । तीन-चार दिन बाद उसने एक दावत पुलिस थाने के अपने हल्के में तैनात सिपाहियों को भी दी और उन्होंने भी धर्मप्रकाश की कमर थपथपाते हुए कहा, "खूब खुलकर खेलो भय्या धर्मप्रकाश ! रामप्रकाश के भाई हो तुम, हमारे भी भाई हो । हममें और अपने में कभी कोई फ़र्क न समझना ।"

"आप लोगों के सहारे तो यहाँ आकर बस ही गया हूँ भाई साहब ! यह आप लोगों का ही रौब है जो ये ज्ञानव्रत बाबू कान कटी दबी बिल्ली की तरह सामने घूमते नज़र आते हैं । नहीं तो सच कहता हूँ मुए नोंच-नोंच कर खा जाते ।"

"इनकी फ़िक्र न करो तुम ।" उन्होंने आश्वासन दिया ।

"आप लोगों का साया चाहिए सिर पर ।" धर्मप्रकाश प्रसन्नता पूर्वक बोला ।

धर्मप्रकाश तमाम मकान में इधर-से-उधर तक घूमता फिरा । उसे शक्तिसिंह का भी वह ज़माना याद आया जब आज की ही तरह उनका इस मकान पर पूरा कब्ज़ा था ।

बैठक में अब ठसके के साथ धर्मप्रकाश का हुक्का जम गया और चबूतरे के एक कोने पर उपलों की आग सुलगने लगी । वही पुराना रंग-ढंग इस घर के वातावरण में आ गया ।

: २४ :

मुन्शी चतुरसिंह ने जायदाद की तक़सीम अदालत में दायर करदी । आज दिन जो भ्रम था, वह खुलकर सामने आगया । अग्निदत्त, रामप्रकाश और अन्य उनके निकट के मित्रों तथा सम्बन्धियों के लिए जो राज़ की बात थी वह स्पष्ट हो गई । मुन्शी चतुरसिंह की ईमानदारी जग-जहाँन पर रोशन हो गई लेकिन वह अपने दिमाग़ से अपनी कार्यवाही को न्यायपूर्ण समझ रहे थे, इन्साफ़ मान रहे थे और उन के निकट-

तम सम्बन्धियों तथा सलाहकारों की भी यही राय थी कि जो कुछ वह कह रहे थे वह न्यायपूर्ण था।

ज्ञानव्रत और हरकली के अतिरिक्त ज्ञानव्रत के ससुर ने भी मुन्शी चतुरसिंह के इस कार्य की सराहना की, और ठीक ही बतलाया। इनके अलावा उनकी छोटी लड़की के दामाद को भी उनके इस कार्य में कहीं कोई ग़लती दिखलाई नहीं दी, वरन् उसने पूर्ण आश्वासन दिया कि वह अपने ससुर तथा सालों का इस महान् कार्य की सफलता में पूर्ण योग देगा।

तक़सीम के अदालती समन अग्निदत्त, रामप्रकाश और धर्मप्रकाश के पास पहुँचे। एक महीने का समय दिया अदालत ने उज़् पेश करने को, यदि कोई उज़् करना चाहे।

अग्निदत्त ने निश्चय कर लिया था कि वह भाई साहब के खिलाफ़ अदालत में नहीं जायेगा और इसी लिए उसने अपनी तरफ़ से कोई उज़् भी पेश नहीं किया। उसने किसी वकील या मुखत्यार के पास जाना भी ठीक नहीं समझा और सोच लिया कि यदि भाई साहब बेईमान हो गये हैं तो वह जिन्दगी भर गाँव में जाने का नाम नहीं लेगा। जायदाद का बारहवाँ हिस्सा लेकर वह क्या करेगा।

लेकिन रामप्रकाश अवसर पर चूकने वाला नहीं था। चन्द दिन तो उसने देखा कि उसके चाचाजी उस दिशा में क्या करते हैं। परन्तु जब वह मौन ही रहे तो उसने एक सप्ताह की छुट्टी ली और वह सीधा अपने चाचाजी के पास पहुँचा। उसने उनसे पूछा, "क्या आपकी नज़रों में यह इन्साफ़ हो रहा है? क्या ताऊजी को यही करना चाहिए था?" वह बहुत गम्भीर था इस प्रश्न को करते समय और इस इरादे से आया था कि अपने चचा को भी वह अपने ताऊजी के खिलाफ़ मुक़दमा लड़ने पर आमादा कर लेगा।

"मेरे विचार से यह सख्त नाइन्साफ़ी है। तुम्हारे कहने से पूर्व ही मैं अपने विचार भाई साहब पर व्यक्त कर चुका हूँ। मैंने उन्हें लिखा

था कि यदि भाई साहब शक्तिसिंह ज़िन्दा होते तो चाहे आप उन्हें हिस्सा देते या नहीं, लेकिन आज उनके लड़कों को हिस्सा न देना, दुनियाँ भर में अपने को बेईमान घोषित कर देना है। लोग कहेंगे कि भाई के मरने पर उसकी औलाद को इन लोगों ने दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया।

अपने सिर्फ़ इसी क़ुसूर के लिए कि मैंने उनकी कार्यवाही को ना-इन्साफ़ी कहा और अदालत में मुद्दई बनकर जाने से इन्कार कर दिया, मुझे भी उसी अदालती कटघरे में उन्होंने दाख़िल कर दिया है जिसमें तुम खड़े हो।"

यह कह कर अग्निदत्त ने रामप्रकाश के हाथों में मुन्शी चतुरसिंह के वे पत्र दे दिये और फिर उसके मुँह की तरफ़ देखने लगे कि अब वह क्या कहता है।

रामप्रकाश ख़तों को पढ़कर बोला, "तो ठीक है। यदि आपके लिख-देने के बावजूद भी वह बेईमानी पर आमादा हैं तो हमारा ताऊ-भतीजे का और आपका भाई-भाई का नाता समाप्त हो जाता है। अब भविष्य में हम लोगों को अदालत में उनके सामने खड़े होकर इन्साफ़ के लिए लड़ना चाहिए। और इसमें मैं कोई शरमिन्दगी महसूस नहीं करता।

"ताऊ-भतीजे और भाई-भाई के नाते यों समाप्त नहीं हो जाते रामप्रकाश! उनकी, तुम्हारी और मेरी नसों में चौधरी आभाराम का ख़ून बह रहा है। वह ख़ून अभी पानी नहीं हो गया, उसमें सुर्ख़ी बाक़ी है, उसमें गर्मी बाक़ी है।

तुम लाख कहो, लेकिन मैं भाई साहब के सामने अदालत में नहीं जा सकता। मुझे शर्म आती है। देखने वाले क्या कहेंगे? बिरादरी वाले क्या कहेंगे? सगे-सम्बन्धी क्या कहेंगे? हमारे परिवार की सभ्यता और उसके बड़प्पन का क्या यही अन्त होना है? क्या भगवान् को यही मंजूर है?"

"आपको कोई क्या कहेगा? जो कोई कहेगा वह ताऊजी को ही तो

कहेगा। बेईमानी वह कर रहे हैं, आप नहीं।" गम्भीरता पूर्वक रामप्रकाश बोला।

"मैं और वह दो नहीं हैं रामप्रकाश! तुम भूलते हो। दोनों का ख़ून एक है।" उतनी ही गम्भीरता के साथ अग्निदत्त ने कहा। "तुम अभी परिवार की इज्ज़त और बेइज्ज़ती को नहीं समझते।"

रामप्रकाश पाँच दिन सहारनपुर ठहरा और तब कहीं जाकर वह अपनी चाचीजी को इस बात के लिए रज़ामन्द कर सका कि वह चाचाजी को अदालत में एक गवाह के बतौर पेश होने और सही बात कहने के लिए भेज देंगी। उसने स्पष्ट कह दिया, "चाचाजी ताऊजी के सामने न खड़े हों, मैं खड़ा हूँगा और अपने तथा आपके हक़ के लिए जद्दोजहद करूँगा। चाचाजी सिर्फ़ गवाह के बतौर अदालत में आयें।"

रामप्रकाश चलते समय अपने चाचाजी और चाची के चरण छूकर बिदा हुआ। वह चाचाजी से जितनी मदद की आशा करके आया था, वह तो उसे न मिल सकी, लेकिन फिर भी वह बहुत हद तक अपने ध्येय में कामयाब रहा और लौटते समय वह प्रसन्न था कि उसने मुन्शी चतुरसिंह के खिलाफ़ एक जबरदस्त मोर्चा तय्यार कर दिया। अग्निदत्त चाचाजी इस तरह टूट जायेंगे, इसमें उसे शक था, लेकिन चाचीजी को रज़ामन्द, कर लेगा वह यह विश्वास लेकर ही वह सहारनपुर की तरफ़ रवाना हुआ था।

रामप्रकाश दूसरे ही दिन मेरठ पहुँचा और उसने एक वकील के मुहर्रिर को पकड़ा। यह मुहर्रिर कचहरी के काम में काफ़ी दक्ष था और यार भी था रामप्रकाश का। उसने दो ही दिन में तमाम काम पूरा कर दिया। तक़सीम का स्टे-आर्डर (कार्यवाही रुकने का हुक्म) लेकर मुन्सिफ़ की अदालत में दीवानी दावा दायर करा दिया। इस दावेमें सरकारसे प्रार्थना की गई थी कि रामप्रकाश और धर्मप्रकाश के साथ उनके ताऊजी बेईमानी करना चाहते हैं। उससे अदालत उनकी हिफ़ाज़त करे। उनका परिवार एक सम्मिलित परिवार है, जिसके मुखिया उनके ताऊजी हैं। ताऊ-

जी बेईमानी से, सम्मिलित परिवार की जायदाद को अपने ज़ाती नाम करके, अब तकसीम में अपने भाई और भतीजों को उससे महरूम करना चाहते हैं।

इस प्रकार मुन्शी चतुरसिंह का तक़सीम का मुक़दमा तो रुक गया और रामप्रकाश का दीवानी-मुक़दमा चालू होगया।

एक ही महीने में इस परिवार के प्राणियों के दिल और दिमाग़ों पर दो तरह की लहरें दौड़ीं। तक़सीम दायर करके हरकली और ज्ञानव्रत दो चार दिन गाँव के गली मुहल्लों में ख़ूब अकड़े-अकड़े फिरे थे और दो चार बार उन्होंने धर्मप्रकाश के मकान के सामने खड़े होकर ये तख़मीने भी लगाये थे कि किस तरह उस मकान को भी तक़सीम किया जायेगा। बारहवाँ हिस्सा होता ही क्या है। एक किनारे पर एक-एक कोठरी धर्मप्रकाश और अग्निदत्त के लिए छोड़ देंगे। बाकी सब मकान पर अदालत उन्हें दख़ल दिला देगी। तब देखा जायेगा कि यह रामप्रकाश की गुण्डई क्या काम देती है। पुलिस को वह अपना मा-बाप समझता है और उसके नाजायज़ दबाव से हम पर रौब गाँठता चला जा रहा है। अदालत का हुक्म पाकर यह पुलिस ही इसकी कमर पर डंडे लगाकर इसे इस मकान से निकाल बाहर करेगी।

लेकिन ज्योंही तक़सीम की कार्यवाही रुकी और दीवानी मुक़दमे की जड़ें जमीं तो उनके विचारों के नक्शे ही बदल गये। जो बातें चन्द दिनों की प्रतीत हो रही थीं वे वर्षों की नज़र आने लगीं। अब कुछ ज़रा-ज़रा समझ में आया कि रामप्रकाश और धर्मप्रकाश से मकान ख़ाली कराना इतना आसान नहीं है।

अब धर्मप्रकाश को भी ज़रा साँस लेने का मौक़ा मिला और उसने भी अपनी चौकड़ी में सीना उभार कर कहना शुरू किया, "भाई साहब ने इनका मुक़दमा रुकवा दिया है अदालत में और अपना मुक़दमा शुरू कर दिया है। अब देखना है इन महाशय लोगों को ज़रा कि ये कितने पानी में हैं।" लेकिन अंतरात्मा में भी भय ही था, क्योंकि काग़ज़ात सब

ताऊजी के ही हक़ में थे ।

उसी दिन से दोनों फ़रीक़ों, यानी मुंशी चतुरसिंह और रामप्रकाश की तरफ़ से मुक़दमे की पैरवी में मर गर्मी शुरू हो गई । अपने-अपने पक्ष को दोनों मजबूत बनाने के लिए सबूत तालाश करने लगे और अपने ख़ास रिश्तेदारों के पास अदालत में अपने पक्ष की गवाहियाँ दिलाने के लिए चक्कर लगाने लगे ।

अग्निदत्त एक तरफ़ शांति के साथ बैठा हुआ यह तमाशा देख रहा था और मन में समझ चुका था कि यदि रामप्रकाश को अदालत में कामयाबी मिली तो उसका हिस्सा एक से लाख तक बड़े भाई साहब हज़्म नहीं कर सकते । उनकी दिली हमदर्दी इस समय रामप्रकाश के साथ थी ।

ज्ञानव्रत और हरकली की तेज़ी को मानो इस दीवानी दावे ने एक ब्रेक सा लगा दिया । जिस फ़र्राटे के साथ वे हवा पर उड़े जा रहे थे, उसके बहाव में कुछ कमी आगई । लेकिन इस कमी को उन लोगों ने अपने हाव-भावों पर विजय नहीं पाने दिया । उनके रहन सहन, तर्ज़ें-अमल में किसी भी प्रकार का फ़र्क नहीं आया और वे अन्दर-ही-अन्दर अपने मुक़दमे की मज़बूती पर विचार करने लगे । अदालत में रामप्रकाश के दाँत खट्टे करने की तरफ़ ही इस समय उनकी सारी शक्ति लग गई ।

"अब हम लोगों के सामने मुक़दमे की मज़बूती के लिए गवाहों की ज़रूरत होगी ।" हरकली ने आज गम्भीरता पूर्वक ज्ञानव्रत से कहा ।

"इसमें कोई शक नहीं जीजी ! अब हम लोगों को मुक़दमे की पैरवी में कुछ उठा नहीं रखना चाहिए । चाहे जितना भी रुपया ख़र्च क्यों न हो जाये, और चाहे जितनी भी सिफ़ारिशें लाकर खड़ी क्यों न करनी हों, परन्तु यह मुक़दमा नहीं हारना चाहिए । यदि यह मुक़दमा हार गये तो समझलो कि सब बना-बनाया खेल बिगड़ जायेगा, और हमारी आबरू मिट्टी में मिल जायेगी ।"

"इसमें क्या शक है भय्या ज्ञानव्रत ! मुक़दमा हारकर तो हम लोगों के लिए गाँव में मुँह दिखलाना भी कठिन हो जायेगा ।" बहुत ही

गम्भीरता पूर्वक हरकली बोली। "रामप्रकाश हमारा उपहास करेगा और हमें उसकी हरकतों को बरदाश्त करना होगा।"

ज्ञानव्रत अपनी खोपड़ी को खुजलाता हुआ नई ख़रीदी हुई सुनारों वाली हवेली में ऊपर के चौबारे के अन्दर इधर-से-उधर घूम रहा था। हरकली आराम कुर्सी पर इस क़रीने के साथ बैठी थी कि मानो किसी ने एक छोटी सी पुटलिया बांध कर कुर्सी के बीच में टिकादी हो।

ज्ञानव्रत के हाथों की बार-बार क्रोध से मुट्ठियाँ बँध जाती थीं और दाँतों को किटकिटा कर वह बड़बड़ाता सा खड़ा होकर, फिर उसी तेज़ी से घूमना शुरू कर देता था। वह अचानक हरकली के सामने रुकता हुआ बोला, "जीजी! एक बात समझ में आई और उससे तुम देखोगी कि मैं इस मुक़दमे का पासा ही पलट दूँगा।"

हरकली ने देखा कि अकस्मात एकदम उसके भाई का चिंता-ग्रस्त मुख-मण्डल गुलाब के समान खिल उठा और उसकी मुस्कुराहट में वह जीवन का आनन्द अनुभव करती हुई बोली, "तुमने ज़रूर कोई पते की बात खोज निकाली है ज्ञानव्रत! नहीं तो तुम्हारे मुख पर इतनी प्रसन्नता के आसार नुमाया नहीं हो सकते थे।"

"बस कमाल हो जायेगा जीजी! मैं परसों दिल्ली में बुआजी के लड़के हरचरन से बात-चीत कर रहा था। उसका काम अब अच्छा-ख़ासा चल निकला है। चाँदनी चौक में जो दूकान उसने डाली थी उससे अच्छी-ख़ासी आमदनी होने लगी है। क्या कहने हैं उस दूकान के। अगर पिताजी ने अपना रुपया भाई भतीजों में बरबाद न करके जमा किया होता तो आज मैं ही उस दूकान का मालिक होता। लेकिन ख़ैर......"

"लेकिन इससे हमारे मुक़दमे का क्या मतलब!" हरकली बीच में ही ज्ञानव्रत की बात को काटती हुई बोली, "उन्हें अच्छी आमदनी होने लगी है तो क्या वह उस आमदनी को हमें देने के लिए आते हैं?"

"आमदनी देने-लेने की बात नहीं है जीजी! इस समय! इस समय तो केवल मुक़दमे को मज़बूत करने की बात है। पिछली बार जब मैं

अपनी ससुराल गया था तो वहाँ पिताजी (ससुर जी) ने अपनी एक भांजी के रिश्ते के विषय में बातचीत की थी। यदि वह रिश्ता हरचरन से करा दिया जाये तो हरचरन और फूफ़ाजी हमारे एहसान से दब जायेंगे।"

हरकली अब कुछ-कुछ बात की गहराई तक पहुँचती जा रही थी। वह एकदम उभर कर बोली, "तुमने खूब दूर की सोची भय्या ज्ञानव्रत! बस कमाल कर दिया तुमने। तुम भी क्या समुद्र के मोती चुनकर निकालते हो। इतनी गहरी बात तो मेरी समझ में भी नहीं आई थी।

फूफ़ाजी की गवाही हमारे मुक़दमे में बहुत वज़नी पड़ेगी।"

और ज्ञानव्रत ने तालमेल लगाकर यह रिश्ता अपने ससुर से सम्पन्न करा दिया। शादी उसके ससुर को ही करनी थी, इसलिए अधिक कठिनाई का सामना भी न करना पड़ा। ज्ञानव्रत का ससुर इन दिनों ज्ञानव्रत के बेइन्तहा प्रभाव में था और ज्ञानव्रत से क़ाबिल आदमी कोई दूसरा उसकी नज़र में था नहीं।

मुक़दमा अदालत के सामने पेश हुआ और ज्ञानव्रत के फूफ़ाजी ने गवाही में कहा, "सब ज़मीन मुन्शी चतुरसिंह की अपनी ख़रीदी हुई है। पुरानी जमीन तो इनके पास थी ही नहीं।"

मुंसिफ़ को हँसी आई काग़ज़ात पर नजर डालते हुए। क्योंकि उनके सामने जो काग़ज़ात मौजूद थे उनमें नई ख़रीदी हुई ज़मीन एक खूड़ भी नहीं थी, सब जद्दी जायदाद थी।

"बस चुप रहो।" अदालत ने डपटते हुए कहा।

इसके पश्चात् मुंशी चतुरसिंह और अग्निदत्त के मामाजी का बयान हुआ और उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया, "चतुरसिंह बेईमानी कर रहा है सरासर अपने भाई-भतीजों के साथ। ज़मीन सब जद्दी है। इसकी ख़रीदी हुई नहीं है। अदालत को इंसाफ़ करके सब का हिस्सा बराबर-बराबर बाँटना चाहिए।"

अग्निदत्त भी अदालत में गवाह के बतौर पेश हुआ और उसने सब

क़िस्सा बयान किया कि जिस तरह से खत्री साहुकार का रुपया अदा किया गया था। वह काग़ज़ स्वयं मुन्शी चतुरसिंह ने अदालत के सामने रखा जिस पर खत्री को दी गई रक़में दर्ज थीं।

अदालत ने वह काग़ज देखा तो कुल रक़म का तीन बटा चार हिस्सा उसमें में अग्निदत्त के नाम से दर्ज था।

मुंसिफ़ ने मुंशी चतुरसिंह को अपने दिल में उसे देखते ही नाइंसाफ़ और बेईमान मानकर व्यंग्य के साथ पूछा, "क्यों मुंशीजी! इस काग़ज में जो रक़में अग्निदत्त के नाम से दर्ज हैं इनके बारे में आप क्या कहते हैं?"

कुछ ठिठक कर मुंशी चतुरसिंह अपने वकील साहेब के रटाये हुए बयान को मन-ही-मन दुहरा कर सूखे हलक़ को ज़रा थूक सटक कर तर करते हुए बोले, "यह रुपया मैं अग्निदत्त को दे आया करता था और यह वहाँ अकेला जाकर जमा करा देता था।"

मुंसिफ़ ने फिर उस पुराने काग़ज़ पर नज़र डाली तो देखा कि जब वह काग़ज़ लिखा गया था तो उस समय भी अग्निदत्त और शक्तिसिंह के उस पर हस्ताक्षर कराये गये थे। उन्हें देख कर ज़रा चौंकते हुए मुंसिफ़ ने आप-ही-आप कहा, "अच्छा! तो यह बात उस दिन भी आपके दिमाग़ में थी"। और फिर मुंशी चतुरसिंह की तरफ़ गम्भीर नज़रों से देखते हुए बोले, "काग़ज़ी काम तो आपका बहुत पक्का है मुंशीजी!"

मुंशी चतुरसिंह न समझ सके मुंसिफ़ के व्यंग्यपूर्ण स्वर को और उनकी मुस्कुराहट में प्रसन्नता की झलक का अनुभव करते हुए ज़रा गर्व के साथ बोले, "हाँ हुज़ूर! जब यह काग़ज़ लिखा गया था तब भी अग्निदत्त और शक्तिसिंह ने इस पर अपने हस्ताक्षर किये थे। इन लोगों की ला-इल्मी में मैंने कभी कुछ नहीं किया। हमेशा जो किया है साफ़-साफ़ और सबको जतलाकर ही किया है।"

अदालत का यह रुख़ देखकर रामप्रकाश, धर्मप्रकाश और अग्निदत्त के मुँह फ़क्क पड़ गये और उन्हें एक क्षण के लिए दिखलाई दिया कि

बस अब मामला मुन्शी चतुरसिंह की तरफ़ पलटा ।

"जिस समय आपने अग्निदत्त और शक्तिसिंह के हस्ताक्षर लिये थे उस समय ये लोग मुंशी जी ! बालिग़ थे या नाबालिग़ ?" मुंसिफ़ ज़रा आँखों से चश्मा उतार कर आँखें मिचमिचाते हुए बोले ।

इस प्रश्न का करना था कि मानो मुन्शी चतुरसिंह को किसी भारी वज़न ने ऊपर से दबा दिया । वह किसी प्रकार अपने को संभाल कर बोले, " थे तो हुज़ूर नाबालिग़ ही लेकिन…………"

"लेकिन वेकिन मैं कुछ नहीं पूछता," मुंसिफ़ ने डपटते हुए कहा, "बस रहने दीजिये मुन्शी जी ! आपकी बुज़ुर्गी का ख़याल करके छोड़े देता हूँ, वरना तो जेल जाने का काम किया है आपने ।"

मुंसिफ़ के ये शब्द मुक़दमे की गहराई को समझने के लिए काफ़ी थे । आज जब मुन्शी चतुरसिंह, ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत और ज्ञानव्रत के ससुर अदालत से निकले तो उनके चेहरों पर हवाइयाँ उड़ी रही थीं और मुँह फ़क्क पड़ गये थे । एक शब्द भी किसी की ज़बान से नहीं निकल रहा था, मानो सभी बेज़बान थे ।

रामप्रकाश के फ़रीक़ की आज बांछें खिली हुई थीं । अदालत से बाहर निकलते ही रामप्रकाश ने मुन्शी चतुरसिंह को चिड़ाने के लिए उनके सामने अपने चचा अग्निदत्त के पैर छूते हुए गम्भीर मुद्रा बनाकर आँखों में आँसू लाते हुए कहा, "चाचा जी ! आप ही हैं अब पिता जी की जगह हमारे सिर पर । अगर आप न आते तो मुक़दमे की यह सूरत न बनती ।"

अग्निदत्त भी मन में अपने आने की अहमियत को समझ रहे थे । अन्दर से गर्व अनुभव करते हुए बोले, "रामप्रकाश ! मैंने जो कुछ भी किया है वह न तो बड़े भाई साहब की मुख़ालफ़त करने के लिए किया है और न ही तुम्हें ग़लत मदद करने के लिए किया है । मैंने सब कुछ इंसाफ़ के लिए किया है और मैं आज भी चाहता हूँ कि किसी तरह यदि आपसी फ़ैसला हो जाये तो वही अच्छा है । हरकली और ज्ञानव्रत

ने भाई साहब को ग़लत रास्ते पर डाल दिया है। भगवान् उन्हें सद्बुद्धि प्रदान करे।"

इस समय गाँव के तथा रिश्तेदार भी सब वहाँ इकट्ठे थे। अग्निदत्त की नेकनीयती देख कर सभी पर असर हुआ लेकिन, मुन्शी चतुरसिंह ने इस बन्धु-द्रोही अग्निदत्त का मुँह देखना भी पसन्द नहीं किया।

अग्निदत्त शराबी, कबाबी, अय्याश, बदमाश रामप्रकाश की मदद कर रहा था मुक़दमे में, फिर उससे भला मुन्शी चतुरसिंह जैसे कर्म-काण्डी, सत्यार्थप्रकाश का पाठ करने वाले, नित्य संध्या-हवन, सत्संग करने वाले; प्याज, शराब और माँस खाना तो दूर रहा उनकी तरफ़ देखने को भी पाप समझने वाले धर्मात्मा का क्या मेल हो सकता था।

रामप्रकाश ने धर्मप्रकाश को एक दस रुपये का नोट देते हुए कहा, "इन गाँव के लुच्चों का दो ठर्रा की बोतल लेकर मुँह काला कर देना। मैं अब गाँव नहीं जाऊँगा। कल तक का रोज़नामचा खाली पड़ा होगा। उसे जाकर पूरा करना है।" और उसके कंधों पर अपने दोनों हाथों को रखकर झंझोड़ते हुए बोला, "ज़रा ताक़त ला बदन में। क्या लालों की तरह से फूलता जा रहा है। यह तोंद निकालना मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं है। पहलवान ठीक काम कर रहा है न! उससे कह देना कि कोई डरने की ज़रूरत नहीं है किसी से। हरकली, उसकी माँ, ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत में से कोई भी यदि सामने पड़े तो सीधा गंडासा लेकर सामने जाना। मारना नहीं, लेकिन रौब में कमी न आने पाये। उसका नाम मैंने दस नम्बरियों में से काट दिया है, यह उसे कह देना।"

रामप्रकाश मन-ही-मन अपने चचा के बयान की अहमियत को समझ रहा था और वह इस समय कृतज्ञ भी था उनका, लेकिन अन्दर से यह भी जानता था कि यदि उन्होंने उसके पक्ष में बयान दिया है तो यह चचा के अपने भी पक्ष में उतना ही जाता है। वह

कचहरी से अग्निदत्त चचा के साथ स्टेशन तक गया और उसने स्पष्ट कह दिया, "चाचा जी ! यह मुक़दमा तो चल ही रहा है। लेकिन अगर कोई फ़ैसले की बात आयेगी तो मैं पीछे नहीं हटूँगा।"

अग्निदत्त रात्रि की गाड़ी से सहारनपुर के लिए रवाना हो गये और रामप्रकाश भी अपनी नौकरी पर चला गया।

: २५ :

जमीन का तक़सीम होना और ज्ञानव्रत के एक लम्बे-चौड़े इरादे का पूरा होना, दोनों ही बातें लम्बी पड़ती जा रही थीं। दीवानी का मुक़दमा ज्ञानप्रकाश ने किसी से सुना कि दोनों ही फ़रीक़ों को दीवाना बना देता है। दीवानगी के आसार ज्ञानव्रत को इस मुक़दमे के अन्दर दिखलाई देने शुरू हो गये थे और अब वह यह भी समझने लगा था कि मामला इतना जल्दी ख़त्म होने वाला नहीं है। इस मुक़दमे ने उसके विचारों के फैलाव में एक उलझन पैदा करदी थी। लम्बे-चौड़े फ़ार्म की खेती का नक्शा बदलता नज़र आने लगा था। दस हिस्सों के स्थान पर तीन हिस्सों में जायदाद बँट सकती है, इस ओर भी ज़रा-ज़रा नज़र जाने लगी थी। जो नया बाग़ उसने लगाया था उसके आधे हिस्से पर धर्मप्रकाश का दख़ल होजाने से वह उजड़ चुका था। उसके अंदर सिंचाई के लिए जो नई कुइया उसने बनवाई थी, वह भी पिछली बरसात में उसके नीचे का गोला ठीक न बैठने के कारण ख़राब हो गई थी।

ज्ञानव्रत अब और अधिक अपनी ज़िंदगी का अमूल्य समय इन बेकार की बातों में ख़राब नहीं कर सकता था। ये सब उलझनें उसके विचार से उसके पिता जी की पैदा की हुई थीं। इसलिए वह ही इन्हें सुलझाने के ज़िम्मेदार थे।

ज्ञानव्रत का दिमाग़ इस समय चारों दिशाओं में कस्तूरिया मृग के समान चौकड़ियाँ भर रहा था। कभी वह दिल्ली में चाँदनी चौक के अन्दर कोई ज़बरदस्त दूकान डालना चाहता था, तो कभी अफ्रीका

जाकर सोने-चाँदी की खान तलाश कर लेने पर उतारू हो जाता था। चाँदनी चौक में दूकान डालने के लिए उसके पास पैसा नहीं था। उसके पिता जी इतना भी पैसा आज तक जमा नहीं कर सके, इस बात को लेकर उसके दिमाग़ में तरह-तरह की झुँझलाहट पैदा होती थी। लेकिन मजबूरी थी, काबू तो इस पर कुछ था ही नहीं उसका। पिता जी पर झुँझलाने से रुपया नहीं झड़ सकता था।

अंत में ज्ञानव्रत ने बावजूद सब के मना करने के भी अफ्रीका जाने का निश्चय किया और एक दो सूट भी सिलवाये गये। एक फ़ेल्ट हेट ख़रीदा और जूता भी जरा बढ़िया सा मोल लिया। छोटे क़द का, छरहरा सा यह हल्की मूछों वाला अपटूडेट बाबू तय्यार हो गया विदेश जाने के लिए क्योंकि इस देश में उसके विशाल मंसूबे पूरे नहीं हो सकते थे। कुल जमीन के दस हिस्से पा जाने में उसे शक होने लगा था और दिल्ली चाँदनी चौक में भी दूकान डालना उसके लिए मुश्किल था। इनके बाद अब तीसरा रास्ता सोने-चाँदी की खान खोज निकालना ही था उसके दिमाग़ में।

घर के आदमियों के पास कोई तरीका नहीं था इस बुलंद इरादे के जबरदस्त पैसे की हविस वाले नौजवान को हिन्दुस्तान में रोकने का। वह जा रहा था परदेश और उसकी स्त्री एक ओर किवाड़ों की आड़ में खड़ी आँसू बहा रही थी। उसकी माताजी की आँखों से तो आज सुबह से ही आँसुओं की धारा बन्द नहीं हुई थी। हरकली का मन भी भारी था लेकिन उसने वीर भग्नि के रूप में ही अपने को प्रदर्शित किया। आशीर्वाद दिया छोटे भाई को, "भगवान् तुम्हारी मनोकामनाओं को पूर्ण करे भय्या! तुम अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल हो और विदेश जाकर खूब धन कमाओ।"

मुंशी चतुरसिंह एक ओर खड़े अपनी परवशता पर आँसू बहा रहे थे। अन्दर-ही-अन्दर से उनका मन कह रहा था, 'बेटा! यह सब मेरी ही मूर्खता का परिणाम है कि आज तुम मेरी आँखों के सामने से

चले जा रहे हो। अगर मैं भाई-भतीजों में न फंसकर सिर्फ़ अपनी चौक-चाँदनी के मिले रुपयों को ही जोड़ता रहता तो आज एक अच्छी-ख़ासी रक़म मेरे पास होती और वह मैं तुम्हें कार-बार करने को दे देता।"

ज्ञानव्रत विदेश चला गया। यह सूचना जब रामप्रकाश को धर्मप्रकाश ने पत्र द्वारा दी तो उसका हाथ अनायास ही अपनी लम्बी-लम्बी मूंछों पर गया और संतोष की साँस लेते हुए बोला, "चलो एक बला तो टली। अब धर्मप्रकाश की तरफ़ से जो हर समय खटका बना रहता है, वह कम हो गया। ध्यानव्रत और धर्मप्रकाश आपस में निबटते रहेंगे।"

गाँव में आजकल ध्यानव्रत भी अपने को तीसमारखाँ समझता था। चौधरी था वह गाँव का। आधी से ज्यादा जायदाद उसके कब्जे में थी और अब वह कोरा आर्यसमाजी महाशयजी मात्र नहीं रह गया था, जरा अपने हल्के के कांग्रेसी क्षेत्र में भी क़दम रखने लगा था। उसी के सहारे जिले के कांग्रेसी क्षेत्र में भी कुछ मेल-जोल उसने अपना बढ़ाया था। उसके पिताजी के एक आर्यसमाजी मित्र संयुक्त प्रदेश की संसद के सदस्य बन गये थे। उनका नाम भी वह इधर-उधर मित्र-मंडली में रौब छाँटने के लिए ले ही सकता था। सरावे के आस-पास हापुड़, पिलखुवा इत्यादि वह जाता था तो गाँधी आश्रमों की दूकानों पर घंटा-दो-घंटा राजनीति की बातें भी फटकारता था, अपने बड़े भाई साहब के विदेश जाने की भी बात करता था। चर्खा-संघ के जो कार्यकर्त्ता इधर गाँव में आते थे उनकी अपनी बैठक पर आवभगत करता था, कभी-कभी खाना भी खिलाता था। इस प्रकार काँग्रेसी क्षेत्र में वह अपनी पैठ पैदा कर रहा था।

खेती का प्रबन्ध उसने मेहनत और तिकड़म दोनों के साथ किया था। खेती को सरकार की तरफ़ से मिलने वाली हर मदद की तरफ़ उसकी नजर रहती थी। सोसायटी से बीज और खाद की जो मदद

मिलती थी उसका सर्व प्रथम ध्यानव्रत ने ही सरावे में उपयोग किया।

ध्यानव्रत ने अपने घर के मामलों में, हरकली और ज्ञानव्रत की आज्ञा का पालन करने में, चाहे जो कुछ झूठ बोला हो और वैसी कुछ बान पड़ जाने से चाहे अन्य गाँव के मामलों में भी वह राजनीति के बतौर झूठ बोल लेता हो, परन्तु जहाँ तक उसका खेती का क्षेत्र था उसकी नीयत बेईमानी की नहीं रहती थी। वह गर्व के साथ हरकली जीजी से कहता था, "जीजी! धर्मप्रकाश की नीयत खराब है। तभी तो इसके खेतों में भगवान् पैदावार नहीं देता। दुनियाँ भर के खेतों में से यह न्यार कटवाता फिरता है और अपने नाना के यहाँ से गाड़ियों-पर-गाड़ियाँ भर कर लाता है, लेकिन इसका पोतपूरा ही नहीं पड़ता। खेती में मेहनत तो होती नहीं चोरी-चकोरी पर नीयत रहती है। ऐसी नीयत वालों को भगवान् भी नहीं देता।"

और प्यार से हरकली अपने छोटे भाई को गोद में भरकर यह सुनने के बाद कहती, "भय्या ध्यानव्रत! नेकनीयती से अपनी ही कमाई में भगवान् बरकत देता है। खांदानियों ने हमें लूटने और बरबाद करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, लेकिन जिसके सिर पर भगवान् का साया है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। ये बराबर में धर्मप्रकाश के खेत खड़े हैं, इन्हें देखलो और ये तुम्हारे खेत खड़े हैं, इन्हें देख लो। क्या लीजो-दीजो है दोनों में। यह सब भगवान् का ही प्रताप है।"

मुंशी चतुरसिंह के परिवार का अभी तक भगवान् में अथाह विश्वास बना हुआ था क्योंकि उन्हें इस पदवी, शोहरत और सम्पन्नता तक भगवान् की ही कृपा ने पहुँचाया था।

मुंशी चतुरसिंह अपनी नौकरी के आखरी दिनों में तबादला होकर फिर मेरठ मिडिल स्कूल में आ गये थे। केवल एक वर्ष बाक़ी था रिटायर होने में। हरकली भी इन दिनों मेरठ ही चली गई थी।

आज संध्या को कोठी के सामने बाग़ीचे में मुंशी चतुरसिंह और

हरकली घूम रहे थे। इस बग़ीचे में कुछ शीशमें, कुछ शहतूत, एक आम, बहुत से अमरूद और जामुन के पेड़ खड़े थे। इनमें एक शहतूत का पेड बहुत बड़ा था। उसकी लकड़ी को देखकर ज़रा तने पर हाथ फेरते हुए हरकली बोली, "पिताजी ! यह कट्ठा शहतूत का पेड़ यदि कटवा कर बेच दिया जाय तो दस-पन्द्रह रुपये का बिक सकता है।"

"हाँ लकड़ी तो काफ़ी है इसमें।" मुंशी चतुरसिंह ने भी ज़रा उसके तने को छूते हुए कहा।

"तो बेच डालिये ! यहाँ कौन पूछने वाला है।" हरकली प्रसन्नता-पूर्वक बोली।

बात निश्चित हो गई। स्कूल के बग़ल में ही लकड़ी की टालें थीं। एक टाल वाले को बुलाकर उसे काटने का ठेका दे दिया गया। पेड़ बारह रुपया आठ आने का बिका। लेकिन दुर्भाग्यवश, दूसरे दिन जब यह टालवाला वृक्ष को काट रहा था तो स्कूलों के डिप्टी इंसपेक्टर साहब मुआयने के लिए चले आये और मुंशीजी के किसी मुख़ालिफ़ टीचर ने उनके कानों में यह बात डाल दी।

डिप्टी साहेब स्कूल की क्लासों का मुआयना करके मुंशी चतुरसिंह तथा अन्य नायब टीचरों के साथ स्कूल की बौंड्री में घूमते-घूमते उसी पेड़ के पास जा पहुँचे जिसे लकड़हारा काट रहा था और वहाँ खड़े होकर उन्होंने लकड़हारे को अपने पास बुलाते हुए पूछा, "यह हरा पेड़ तुम किसकी इजाज़त से काट रहे हो ?'

"हुज़ूर सरकार के हुक्म से।" साथ ही खड़े मुंशी चतुरसिंह की तरफ़ इशारा करते हुए उसने कहा।

"आपने काटने की इजाजत दी है इसे मुंशीजी !" डिप्टी साहेब ने मुंशी चतुरसिंह की ओर मुख़ातिब होकर पूछा।

"जी हुज़ूर !" मुंशी चतुरसिंह ने कहा।

"लेकिन इन सरकारी दरख़्तों को कटवाने की तो आपको इजाज़त

नहीं है। आपने ऊपर से इसकी कोई इजाजत ली, या कोई अर्जी भेजी हुई है।"

"जी नहीं।" मुंशी चतुरसिंह ने दबी जबान से कहा।

"कितने में बेचा है इस लकड़हारे को यह पेड़ ? रुपया वसूल कर लिया आपने ? और वह सरकारी कागजात में जमा किया ?" डिप्टी साहब ने पूछा।

"जी नहीं।" और भी शर्मिंदगी के साथ मुंशी चतुरसिंह बोले।

"तो आप यह सरकारी रुपया हज्म कर जाना चाहते थे। सरकारी माल हज्म करने के लिए फौलाद का पेट चाहिए मुंशी जी!" डिप्टी साहब ने कड़क कर कहा।

इसी जरा से हादसे पर मुंशी चतुरसिंह को चार-शीट मिल गई। और समय से पूर्व ही किसी प्रकार नौकरी से स्तीफा देकर वह अपनी जान छुड़ा सके। मुंशी चतुरसिंह की सुनहरी हेडमास्ट्री की यह दर्दनाक समाप्ति हुई, जिसका रंज उनके परिवार पर कितने ही दिन तक काली घटा की तरह छाया रहा।

हरकली ने पिताजी को इस वृद्धावस्था में साहस बँधाते हुए कहा, "चिंता न कीजिये पिताजी! जो भगवान् को मंजूर था वह होगया। जिस भगवान् ने यह संकट दिया है वह इसके निवारण का भी मार्ग सुझायेगा।"

इस प्रकार हरकली ने उस समय अपनी और अपने पिताजी की लोभ-भावना से उत्पन्न इस हानि को आनंद-कंद-भगवान् की इच्छा के सिर आसानी से थोप दिया और मौन भगवान् ने भी अपने सिर इसे चिपका लेने में कोई आपत्ति प्रकट नहीं की।

मुंशी चतुरसिंह की नौकरी समाप्त होगई। उनके जीवन का स्वर्ण-युग ढलना प्रारम्भ हो गया। उनकी उपयोगिता उनके अपने परिवार तथा उनके बाल-बच्चों की दृष्टि में कम होगई, परन्तु अभी एक सुनहरी

रेखा उनके जीवन में विद्यमान थी और वह थी उनका प्रोविडेन्ट फंड[१], जो कि शिक्षा-विभाग से उन्हें मिलना था और वह था पूरा दो हजार रुपया।

: २६ :

मुंशी चतुरसिंह की हेडमास्ट्री छूट गई तो कोई बात नहीं, हरकली अपनी मास्ट्री में तरक्की कर रही थी और उसका वेतन भी अब चालीस रुपया माहवार हो गया था। ध्यानव्रत ने खेती का सिलसिला अच्छा खासा जमा लिया था, लेकिन ये सब मिलकर भी परिवार के खर्च को किसी प्रकार मुश्किल से ही संभाल पाते थे। दूसरी तरफ मुकदमे बाजी चल रही थी और उसमें भी खर्च होता था।

जो रुपया मुंशी चतुरसिंह को प्रोवीडेन्ट फंड का मिला था उसमें से अठारह सौ रुपया उन्होंने अपने चचाजाद भाई की खरीदी हुई जमीन के बाकी रुपये की अदायगी में दे दिया और इस प्रकार पूरी जायदाद पर कानूनी तरीके से अपने वकील की सलाह के मुताबिक अपना नाम चढ़वा लिया। अब उन्हें कोई अंदेशा नहीं था अपने मुकदमा हारने का, क्योंकि दीवानी अदालत कागजात के खिलाफ नहीं जा सकती थी। यही तो आज उनके वकील ने आँखो को मिचमिचाते हुए चश्मा उतार कर कहा, "मुंशीजी! क्या बचपने बातें कर रहे हैं आप मेरे सामने। यह मुंसिफ बेचारा है ही कितने दिन का और इसे अभी तजुरबा ही क्या है। अदालत में इन्साफ और गैर-इन्साफी को कौन देखता है। यहाँ तो कागजी सबूत चलता है। उसी पर मुकदमा हारा या जीता जा सकता है। आपके पास कागजी सबूत की कमी नहीं है। हर काम आप शुरू से ही पुख्ता करके चले हैं।"

कानूनी वकील से अपनी इस दानिशमंदी की प्रशंसा सुन कर मुंशी जी के दिल की कली अन्दर-ही-अन्दर खिल कर महक उठी और उनके पास बैठा हुआ उनका छोटा लड़का ध्यानव्रत भी दिल-ही-दिल में खुश

---

[१] वह रकम जो नौकरी छोड़ते समय नौकरी-विभाग से मिलती है।

हुआ। मुंशी जी बोले, "आप जानें वकील साहब ! कमी तो लिखत-पढ़त में मैंने शुरू से ही नहीं आने दी है। हमेशा अपनी मर्जी से लिखाया है और बिला एक हरुफ बदले ही भाइयों से हस्ताक्षर कराये हैं।"

"यही तो तुम्हारी कामयाबी का एक बड़ा राज होगा मुंशी जी ! यदि आपके भाई लोग शुरू से ही आप पर विश्वास न करते तो ये बेशकीमती कागजात कभी भी आपके हाथ न पड़ते और वे लोग कदम-कदम पर फूंक-फूंक कर पैर रखते।" वकील साहब बोले।

"तो आपके खयाल से मुकदमा हमारे पक्ष में जाता है।" जरा ध्यानव्रत ने उभर कर पूछा। क्योंकि जब से ज्ञानव्रत विदेश चला गया था तब से ध्यानव्रत को आगे बढ़ने और घर के मामलात में दखल देने का जरा-सा मौका मिला था।

"सोलहों आने बेटा ! सोलहों आने। मुकदमा तुम जीतोगे। तुम्हारे हारने का तो कोई कारण ही नहीं है। अदालत को झक मार कर फैसला तुम्हारे हक में लिखना होगा। और कोई चारा ही नहीं है अदालत के पास।" दृढ़ता पूर्वक वकील साहब बोले। उन्हें पूर्ण विश्वास था अपनी कामयाबी का और यदि पूर्ण विश्वास था भी नहीं तो तब भी वह अपने मुअक्किल पर उसकी कमजोरी जाहिर करना अपने पेशे की हिमाकत समझते थे।

मुंशी चतुर सिंह जब वकील साहब के पास से लौटते थे तो उन्हें सनद सी मिल जाती थी अपनी कामयाबी की। सीने में बुढ़ापा होने पर भी जरा एक उभार सा आ जाता था और अन्दर-ही-अन्दर अग्निदत्त पर कुढ़कर कहते थे, 'बड़ा आया है इन्साफ-पसंद बनकर। रामप्रकाश जैसे शराबी-कबाबी गुण्डे को मदद करता है और बनता है ऋषि दयानन्द का चेला।' और फिर जरा भगवान् की तरफ मुखातिब होकर कहते, 'भगवान् बस तुम ही देखने वाले हो इन सब चीजों को। कितना पाखण्ड भरा है दुनियाँ में ? मैं अग्निदत्त को कितना सीधा-सच्चा समझता था और वह निकला अन्दर से कितना काला। मेरे ही मुकाबले पर आकर

अदालत में खड़ा हुआ। इससे वड़ी नीचता भला वह क्या कर सकता था ?"
और इतना कहते हुए वह अपने कानों की मुलयम लौ को छूकर भगवान्
का अनेक बार नाम लेते।

हेडमास्ट्री छूट जाने पर भी मुंशी चतुरसिंह ने घर बैठकर अपने
बच्चों पर भार बनना पसंद नहीं किया। उन्होंने तीन रुपये महावार की
एक कोठरी स्टेशन-रोड पर मेरठ-शहर में ही किराये पर लेली और
आर्य-समाज-मंदिर में आर्य-कन्या-पाठशाला के अन्दर तीस रुपया महावार
पर अध्यापन-कार्य प्रारम्भ कर दिया।

अब मुंशी जी अकेले ही मेरठ में रहते थे। अपना खाना पास
में ही एक प्राइवेट बोर्डिंग-हाउस के रसोईखाने में बनवा लेते थे।
मिडिल स्कूल का वह रौब-दौब और कोठी का रहन-सहन तथा चारसौ
लड़कों, टीचरों और चपरासियों पर हकूमत समाप्त हो चुकी थी। अब
हर काम उन्हें अपने हाथ से ही करना होता था। उनकी पत्नी भी
गाँव में खेती के काम की देखभाल के लिए चली गई थीं।

मुंशी चतुरसिंह मुकदमा लड़ रहे थे अपने बाल-बच्चों के लिए।
मुकदमे के खर्च का भार वह अपनी ही आमदनी से चला रहे थे, क्योंकि
यह बला उन्होंने अपनी ही गलती से अपने बच्चों के गलों में फंसाई थी।

मुंशी चतुरसिंह का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। इस बुढ़ापे में भी
वह अपनी मूंगरियाँ घुमाते और कसरत करते थे। प्रात:काल घूमने
जाना नहीं छोड़ते थे। लेकिन इन दिनों उनकी खूराक वह नहीं रह
गई थी, जो पहिले खाने को मिलती थी। न तो उतना घी ही था और
दूध की तो बिलकुल ही छुट्टी हो गई थी। मोल का लेकर शहर में दूध
पीना वर्तमान आय में असम्भव था। खाना भी घर का न होने के
कारण बहुत साधारण किस्म का ही होता था। लेकिन बचपन का घी-
दूध हड्डियों की मजबूती में काम दे रहा था।

हरकली और मुंशी जी जो कुछ कमाते थे तथा खेती से जो होता
था वह सब मिलकर किसी प्रकार परिवार का काम चलता था। कोई

बचत नहीं थी लेकिन फिर भी परिवार का खर्चा आराम से चल रहा था। किसी का लेना-देना नहीं था, बस यही एक बड़ी भारी जीत थी।

ध्यानव्रत ने अपना खेती का सिलसिला अच्छा जमा लिया था और जो जमीन उसके पास थी उसे उसने खाद-वगैरह देकर अच्छा तैयार किया। खूब मेहनत और दिलजमई के साथ उसने खेती की और जब कभी भी उस लहलहाती हुई खेती पर उसकी नजर जाती थी और पास में खड़ी धर्मप्रकाश की खेती को वह देखता था तो अपने पुरुषार्थ पर उसे अभिमान हो उठता था। उसके भुजदण्ड आप-से-आप फड़कने लगते थे और वह गर्व के साथ अपने पिताजी से कहता था, "इसे कहते हैं खेती। जरा अपने खेतों पर नजर डालिए और फिर धर्मप्रकाश के खेतों को देखिए। यह ईमानदारी की खेती है और वह छीन-झपट की। अग्निदत्त चाचा जी ने ये खेत हमारे हलों के नीचे से निकलवा कर इन्हें दिला दिये तो क्या, लेकिन यह तो इनसे अपना पेट भी नहीं भर सकता। इन महाशय को तो मैं देखता हूँ गाँव की गुण्डा-चौकड़ी में बैठने से ही फुरसत नहीं मिलती। फिर नौकरों की खेती कराते हैं। दीवान जी के भाई साहब ठहरे। हकूमत घुसी हुई है दिमाग में।"

मुंशी चतुरसिंह अपनी इस दशा में भी बेटे की यह बात सुनकर प्रसन्नता पूर्वक कहते, "मेहनत और ईमानदारी को परमात्मा देखता है बेटा! आज मेरे दिल पर भी मलाल है कि अग्निदत्त तुम्हारे खेत इन बदमाशों को दिला गया। वरना इस चक्क-के-चक्क पर तुम्हारी ही लहलहाती हुई खेती दिखाई देती और मुझे इस बुढ़ापे में शहर में रह कर लड़कियाँ न पढ़ानी पड़तीं।"

"इस बात का अफसोस हमारे दिलों में भी कम नहीं है पिताजी! कि आपको रिटायर होने के बाद भी काम करना पड़ रहा है और हम लोग आपको बिठला कर आपकी सेवा न कर सके। लेकिन इसमें हमारा दोष कितना है यह आप भी भली भाँति जानते हैं।"

"सब जानता हूँ बेटा! जानता क्या नहीं हूँ मैं? सब भाग्य के

फेर है। बुढ़ापे में मुझे ये दिन देखने नसीब होंगे कि जिन्हें छाती से लगा कर पाला-पोसा, ब्याहा-वरा किया, वे ही आज मेरे सामने मुकदमा लड़ने को खड़े होंगे और अदालतों में मेरी टांगें घसीटते फिरेंगे, इसका मुझे ख्वाब में भी पता नहीं था।" एक दर्द दिल में लेकर मुंशी चतुरसिंह बोले।

इस समय हरकली भी अपनी हवेली के ऊपरी चौबारे से उतर कर खरामा-खरामा चलती हुई चार खेत का फासला तै करके अपने कुएँ के पास, जहाँ ध्यानव्रत और उसके पिता जी आपस में बातें कर रहे थे, पहुँच गई।

हरकली को देख कर ध्यानव्रत हाथ जोड़ता हुआ बोला, "नमस्ते जी जी! आओ आज तुम्हें अपना लुढ़िया आलू का खेत दिखलाता हूँ जिसका बीज मैं खास तौर पर लाया हूँ। तमाम गाँव में यह आलू किसी के खेत में भी नहीं मिलेगा।"

हरकली अपने छोटे भाई से यह आदर-सत्कार पाकर अन्दर-ही-अन्दर मग्न हो उठी और अपने पिताजी की तरफ मुखातिब होकर बोली "देखी पिताजी! आपने ध्यानव्रत की खेती। तमाम गाँव की नजरें हैं आज इस खेती पर।"

"देख रहा हूँ बेटी! और दिल से आशीर्वाद दे रहा हूँ तुम लोगों को। तुमने मेरे कंधों का बोझा हलका कर दिया। वरना तो इस बुढ़ापे में परिवार वालों ने तो मुझे कहीं का भी नहीं छोड़ा था।"

हरकली परिवार का नाम आते ही व्यंग्य-पूर्ण दृष्टि से मुस्कराई और बोली, "पिताजी! वह तो आपका भ्रम मात्र था केवल। कौन किसका सगा-सम्बन्धी है इस जमाने में। दुनियाँ खुदगर्जी की जगह है। लेकिन हम लोगों को तो तालीम ही ऐसी मिली है कि हममें वे दुनियाँ के अवगुण आ ही नहीं सकते। आपके संस्कारों की छाया है और महऋषि दयानन्द का प्रताप है कि हम लोगों के आचरण शुद्ध और पवित्र हैं।"

महऋषि दयानन्द का नाम आते ही मुंशी चतुर सिंह गद-गद हो उठे और उनके नेत्रों से श्रद्धाश्रु बह निकले। फिर हृदय की वाणी को

होठों से प्रस्फुटित करते हुए बोले, "ईश्वर तू न्याय कारी है। तू कृपा निधान है। तू अंतरयामी है। तू सब कुछ देखता है। तू ही मेरे बच्चों का सहायक है। तेरी कृपा अपरमपार है।"

मुंशी चतुर सिंह ने फिर कुए पर स्नान किया। उसी के पास एक पत्थर की शिला पर बैठ कर संध्या करने लगे। ध्यानव्रत और हरकली अपनी खेती को देखने के लिए जरा आगे बढ़ गये।

ध्यानव्रत में इस समय नई जवानी की उमङ्गें फूट रही थीं। कान तक ऊँची लाठी वह नाप कर अपने साथ में चौबीसों घंटे रखता था। रात को सोते समय उसे अपनी खाट की पट्टी के पास दरी के नीचे लगा लेता था। नजरें उसकी हर समय पहलवानी के जोश को लेकर सामने फैलती थीं और छाती का उभार भी कभी पीछे को नहीं होता था। ब्रह्मचर्य की शक्ति उसके टखनों, घुटनों और गट्टों में भरी पड़ी थी। धर्म-प्रकाश को वह कीड़े-मकौड़े के समान समझता था, लेकिन उसके बड़े भाई रामप्रकाश का नाम दिल पर आते ही कुछ घबराहट की लहर सी दौड़ जाती थी। फिर रामप्रकाश ने जो एक पहलवान अपने भाई की रक्षा के लिए गाँव में छोड़ा हुआ था, उसे देखकर तो वह अन्दर-ही-अन्दर थर-थर काँपता था। ध्यानव्रत सुन चुका था कि वह अपने इलाके में कई खून कर चुका था।

हरकली ने आज फिर ध्यानव्रत को समझाते हुए कहा, "भय्या ध्यानव्रत। इन नीच लोगों के मुँह नहीं लगना चाहिए। इन्हें अपनी जान की तो परवाह है नहीं, फिर दूसरे की जान लेने में कै मिनट लगते हैं। इनसे दूर ही रहना अच्छा है। दो चार दिन में अब मुकदमे का फैसला सुनाया जाता है। सब मामला आप ही ठीक हो जायगा। जमीन पर अदालती दखल मिल जाने के बाद ये गुण्डे अपने आप यहाँ से रफू-चक्कर हो जायेंगे और तुम्हारे रास्ते में एक भी काँटा नजर नहीं आयगा।"

"जीजी ! मैं तो इन आवारा आदमियों से दूर-दूर बचकर निकलता हूँ। ऐसा मौका ही नहीं आने देता कि उससे तू-तू मैं-मैं की नौबत आ जाये।

अभी उस दिन माता जी घास की गठरी लेकर बाग की तरफ से आ रही थीं। रास्ते में पता नहीं उनसे उस पाजी की क्या कहा-सुनी हो गई। मैं यहाँ से दौड़कर वहाँ पहुंचा और बस खून का घूंट पीकर रह गया। लेकिन मैंने मामला आगे नहीं बढ़ने दिया। माताजी को मैं सीधा घर पर छोड़ आया।"

"तुमने बहुत अच्छा किया ध्यानव्रत! माताजी बेचारी बिना पढ़ी-लिखी हैं। उन्हें क्या पता कि आपसी झंझट-बाजी में जिस तरह सुई का फावड़ा बनाया जा सकता है।" हरकली ने ध्यानव्रत की सहनशीलता और तुरत-बुद्धि की दाद देते हुए कहा।

ध्यानव्रत इन दिनों अपने को आस-पास के हल्के का नेता समझता था। गाँधी जी की अहिंसात्मक नीति पर चाहे उसने अन्दर से विश्वास नहीं किया था परन्तु जहाँ अपने विपक्षी को वह अपने से मजबूत देखता था वहाँ उस नीति का इस्तेमाल वह करने का प्रयत्न करता था। उसने अब दो गांधी टोपियाँ भी करीने की सिलवाली थीं और पिलखवे के खद्दर जैसा जचने वाले गाढ़े के गेरवाँ दो कुर्ते भी बनवा लिये थे। पायजामे में धोती से कम खर्च आता है, इसलिए उसने धोती का पहनावा न अपना कर पायजामे को ही अपनी रोजाना की वर्दी के लिए चुना था। सर्दियो के लिए एक काले पट्टू की जवाहर-कट-जाकेट भी सिलवाई थी और जब अपनी यह पूरी वर्दी पहनकर वह हरकली के सामने खड़ा होता था तो हरकली एक बार अपने भाई ध्यानव्रत की तरफ देखती थी और फिर बैठक में सामने लगे पंडित जवाहर लाल के चित्र पर। दोनों में उसे आँख, नाक, कान इत्यादि के जरा से फर्क के अलावा सिर्फ यही फर्क दिखलाई देता था कि जवाहरलाल की खोपड़ी जरा मोटी है और उसके भाई की गोल तथा छोटी। परन्तु यह कुछ विशेष फर्क नहीं था उसकी नजरों में।

हरकली आजकल ध्यानव्रत की कार्य-कुशलता पर लट्टू थी और वह अब उसकी शादी की ताल-मेल के गुनताले लगाने में जुटी हुई थी।

: २७ :

ज्ञानव्रत के ससुर ने अपनी छोटी लड़की को ज्ञानव्रत के छोटे भाई ध्यानव्रत के साथ मिलने-जुलने की पिछली बार जब वह उनके यहाँ आया था तो पूर्ण स्वतंत्रता दे दी थी। आधुनिक युग की चाहे अन्य किसी दिशा में भी इस परिवार के ऊपर कोई छाप नहीं पड़ी थी, परन्तु इस कार्यवाही में ज्ञानव्रत के ससुर को कोई आपत्ति नहीं हुई। उसे मुंशी चतुरसिंह की वर्तमान हालत का पूरी तरह से पता था और उनकी भविष्य की उन्नति भी उसकी आंखों के सामने थी। उसकी एक लड़की मुंशी चतुर सिंह के यहाँ रजपटे पर बैठी थी। उसे मालूम था कि जिस दिन से वह ब्याह कर उस घर में गई थी, सब ताला-कुंजी की वही मालकिन थी। इसी रजपटे की आधी हिस्सेदारनी बनाकर वह अपनी छोटी लड़की को भेजने में कोई हानि नहीं समझते थे।

दूसरी तरफ हरकली पर जब यह राज खुला तो उसने भी इस रिश्ते में कोई आपत्ति नहीं की। अपने मन में ही सब हिसाब-किताब बिठलाकर सोचा, चलो अच्छा ही रहेगा। दोनों बहिनें होंगी तो देवरानी और जिठानी के झगड़े भी पैदा नहीं होंगे। फिर सबसे बड़ी बात यह है कि पुरानी रिश्तेदारी होने से कोई दिखावट की जरूरत नहीं पड़ेगी। जो कुछ देना-लेना होगा, वह भी घर में ही रहेगा। सुनारों वाली हवेली के लिए जो रुपया उनसे कर्ज लिया था, कम-से-कम वह तो दात-दहेज में पूरा हो ही जायगा।

उधर ज्ञानव्रत के ससुर भी यही सोच रहे थे कि और कुछ नहीं तो व्यर्थ का तूल न बाँधकर केवल आठ-दस आदमियों को ही बारात में बुला लिया जायगा। दात-दहेज वगैरह का जो दिखावा होगा, वह तो होगा ही, लेकिन और जो खर्च होता उसे उस पुराने दिये गये रुपये की अदायगी में समझ लिया जायगा।

मुंशी चतुरसिंह को आजकल इन मामलात में पड़ने की आवश्यकता

ही नहीं थी। बच्चे सब काविल हो चुके थे, तो वह क्यों व्यर्थ अपना दिमाग 'खराब करें इन वातों में समधी से वह पहिले से ही प्रसन्न थे क्योंकि वह इनकी हर कार्यवाही को उचित समझकर उसमें हर प्रकार का भरसक योग दे रहे थे।

इस प्रकार जहाँ एक ओर प्रेम-कहानी अंकुरित हो चुकी थी, वहाँ दूसरी ओर आर्थिक तथा गृहस्थ-सम्बन्धी समस्याओं का भी मन्वय होता जा रहा था। और सबसे बड़ी वात थी हरकली जीजी की समझ में आ जाना।

शादी यह भी इस परिवार में अपने ढंग की निराली ही हुई, जिसमें केवल आठ बाराती थे और परिवार का कोई आदमी भी शामिल नहीं हुआ था। फूफाजी के उस लड़के को खास तौर पर बुलाया गया था जिसकी शादी ज्ञानव्रत ने अपने ससुर की भांजी से कराकर अपने फूफाजी को मुकदमे की गवाही के लिये खरीदा था। दो मुंशी चतुरसिंह के दामाद थे बारात में और बस एक-दो गाँव के अन्य लोग।

इसी वीच में, नहीं बल्कि इससे भी पूर्व, धर्मप्रकाश की भी शादी हुई और वह शादी सरावे में न होकर उसके नाना ने खरखोदे में ही की। उस शादी में भी परिवार का कोई आदमी शामिल नहीं हुआ। बारात वहीं से गई और नाना ने ही बहू को चीजें भी चढ़ाईं। रामप्रकाश भी बारात में इस तरह शासिल हुआ, जिस तरह कि कोई बाराती शामिल होता है।

परिवार का अब यह रूप बिलकुल ही साफ हो चुका था। चौधरी आभाराम ने जिस इमारत की नींव डाली, उसका एक भाग तो मुंशी चतुरसिंह के चचा के लड़के ने इनके होश सँभालते ही अलग कर लिया था। उस पुराने मकान के कोने में एक दीवार डालकर उसका घर अलग कर दिया गया था और उसकी जंगल की जमीन भी बाँट दी गई थी।

लेकिन वह महाशय अपने हिस्से की जायदाद में और तरक्की न

करके उसपर कर्ज ले बैठे। आखिर यह जायदाद मुंशी चतुरसिंह को साढ़े तीन हजार रुपये में खरीदनी पड़ी, जिसका बाकी अठारह सौ रुपया उन्होंने अभी कुछ दिन पूर्व अपने प्रोवीडेन्ट फण्ड की रकम में से अदा किया था।

चौधरी आभाराम की हवेली का इस प्रकार यह अलग हुआ हिस्सा फिर से उसी हवेली में आ मिला था, लेकिन उसके अन्दर बसने वाले उनके पड़पोते और तड़पोतों का उससे कोई सम्बन्ध नहीं रहा था।

यह सब कानून की बातें थीं, लेकिन मुंशी चतुरसिंह का वह चचा-जाद भाई और उसका परिवार अभी उसी मकान में आबाद थे। एक खेत उसका मारूसी हो गया था, जिस पर रामप्रकाश, धर्म प्रकाश और ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत का पूरा-पूरा दाँत था। लेकिन इन लोगों के आपसी झगड़ों के कारण वह उसी पर बना रहा और उसमें खेती करके वह अपने परिवार का पालन-पोषण करता रहा।

मुंशी चतुरसिंह वाली इमारत के रहने वालों की दशा भी अब सम्मिलित परिवार का उपहास मात्र ही था! जहाँ रामप्रकाश की शादी मुंशी चतुरसिंह ने अपने हाथ से की वहाँ ज्ञातव्रत की शादी में झगड़ा खड़ा हुआ और अन्त में ये ध्यानव्रत और धर्मप्रकाश की शादियाँ तो ऐसी हुईं कि मानो इनका चौधरी आभाराम के परिवार से कोई सरोकार ही नहीं था।

जब यह सरावा गाँव आबाद हुआ था तो इसमें एक ही परिवार था। इस परिवार की पाँच पट्टियाँ बनीं और उन पट्टियों में कई सौ परिवारों ने जन्म लिया। कितने सगे भाइयों ने आपसी बटवारे के साथ जुदा होकर अपना चूल्हा और अपनी तवा-परातें लेकर पुराने मकानों में दीवारें खींचलीं। और कितने परिवार आपसी निपटारा न करके अदालती मुहर्रिरों, वकीलों, पटवारियों, गवाहों और इंसाफ के मालिक मुंसिफ तथा जजों की भेंट चढ़ गये। कितने मकानों में बटबारे की दीवारें खिचीं और कितने परिवारों के लावल्द होने पर वे दीवारें फिर बिस्मार कर दी गईं। इसका एक लम्बा-चौड़ा इतिहास बन गया है जो सरावे के पटल पर

उसकी खंडहर इमारतों में आज भी साफ-साफ लिखा हुआ है। कस्बे का हर मकान उसके इतिहास की पुरानी कहानी से बना एक रोचक और शिक्षाप्रद उपन्यास है जिसमें यथार्थ के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

कस्बे के इन परिवारों के मेल और द्वेष भी आपस में चलते हैं और जहाँ पुरानी खलिशें हैं वहाँ नए वाकात भी साथ में नत्थी होकर एक नया अध्याय खोलते जाते हैं। हर परिवार के पेट से एक नया सम्मिलित परिवार निकलता चला गया और हर नया परिवार पुराने परिवार के बूढ़े ढाँचे पर मुस्करा कर बोला, "खत्म करो अपने दकियानूसी तौर तरीकों को। हमें आगे बढ़ने दो और खामखा के लिए हमारी उन्नति के मार्ग में काहिलों की भीड़ जमा करने की कोशिश न करो। हमें नई इमारत बनानी है। हम इस पुरानी बिला हवादार इमारत में अपने को बन्द करके नहीं रह सकते।"

हरकली और ज्ञानव्रत ने भी इस नई इमारत का ख्वाब देखा था और उनसे भी पूर्व रामप्रकाश ने उस ओर कदम बढ़ाया था। लेकिन यह पुरानी जायदाद और सम्मिलित सम्पत्ति की जंजीर उनके गलों में, उनके टखनों में, उनकी बाहों में बुरी तरह पड़ी हुई थी। फिर कुछ मोह भी हो गया था उसका क्योंकि सब इस जंजीर को बेश-कीमती समझते थे। उस सम्पत्ति की जंजीर के चन्द टुकड़े पा जाने के लिए ही यह मुकदमेबाजी हो रही थी और दूर परदेश में पड़ा अग्निदत्त वहाँ से कमाकर भी अपनी जंजीर की इन शृंखलाओं की रक्षा कर रहा था।

जहाँ एक ओर मुकदमेबाजी का सिलसिला था वहाँ दूसरी ओर रिश्तेदारों की तरफ से आपसी फैसले की भी बातचीत चल रही थी। रामप्रकाश फैसले के बीच में खुद न आकर अपने बहनोई के बड़े भाई को ही भेजता था।

कई बार इन फैसला करने वालों ने जमीन के कुरे लगाये और बात कुछ ठिकाने पर आती दिखलाई दी लेकिन अन्त में आकर नतीजा शून्य पर ही ठहरा। रामप्रकाश जमीन में तिहाई हिस्सा लेने के लिए ढाई

हजार रुपया तक देने को अमादा हो गया लेकिन मुंशी चतुरसिंह की समझ में यह राग नहीं आया।

हरकली ने इस फैसले को ठुकराते हुए अपने पिता जी से कहा, "हम जमीन में किसी भी हालत पर हिस्सा देने के लिए तय्यार नहीं हैं। रामप्रकाश और धर्मप्रकाश को तो हिस्सा देने का सवाल ही नहीं उठता। चचा अग्निदत्त को जैसा आपने कहा था, हजार-बारह सौ रुपया धीरे-धीरे लौटा दिया जायेगा। जमीन में हिस्सा वह भी नहीं पा सकते।"

मुंशी चतुरसिंह ने जो थोड़ा बहुत अपने को फैसले की राह पर लगाया भी था वह हरकली ने एक ही वाक्य से काट डाला और फ़ैसले की बात रद्द हो गई।

चन्द दिन पश्चात मुंसिफ ने फैसला सुनाया तो मुकदमा रामप्रकाश ने जीता और मुंशी चतुरसिंह पर उसके खर्चे की सात सौ रुपये की डिग्री भी अदालत ने मंजूर की।

रामप्रकाश का मुकदमा जीतना था कि मुंशी चतुरसिंह और हरकली के पैर उखड़ गये। रामप्रकाश मजबूत होकर सरावे में आया। इस बार उसके आने का दबदबा और ही था। हरकली तथा ध्यानव्रत कान पूंछ दबाकर इधर-उधर को निकल जाते थे। उन्हें अपनी हार की शरमिंदगी अन्दर-ही-अन्दर कचोट रही थी।

मुकदमा हारकर मुंशी चतुरसिंह फैसले की तरफ झुके, परन्तु अब रामप्रकाश फैसले के लिए तय्यार नहीं था। फैसले की बात तो सब कानूनन ही समाप्त हो चुकी थीं। अदालत ने परिवार को सम्मिलित परिवार घोषित करके तीनों फरीकों का हिस्सा बराबर मंजूर किया था।

"धर्मप्रकाश ध्यान रखना कि इस बार ध्यानव्रत का पैर उठकर घर में न जाने पाये। मुहर्रिर से मिलकर और डिग्री इजरा करा कर पैर कुर्क करा लेना।" रामप्रकाश ने कहा।

"बहुत अच्छा भाई साहब!" धर्मप्रकाश ने गर्दन झुकाये-झुकाये कहा। आज उसके दिल में भी साहस और उमंग के लड्डू फूट रहे थे और उस

दिन के लात-घूँसों की चसक तथा अपमान का दर्द अब कम होता जा रहा था जिस दिन वह रामप्रकाश के साथ खरखोदे से सरावे में आया था और घेर के अन्दर खोर पर बैलों को बाँधने के मामले पर उसकी पिटाई हुई थी।

जरा कुछ रुककर त्यौरी चढ़ाता हुआ बोला, "एक दाना भी इन लोगों के घर में नहीं पड़ने दूँगा भाई साहब ! ये लोग मेरे साथ जो-जो कुछ यहाँ करते हैं वह सब खून का घूंट पीकर मैं ही बरदाश्त करता हूँ। वह हरकली तो आपको 'गुण्डा' के अलावा और कुछ कहना ही पसंद नहीं करती।"

"गुण्डा" रामप्रकाश ने कहा और फिर जरा मुस्कराकर मूँछों पर ताव देता हुआ बोला, "कोई बात नहीं धर्मप्रकाश ! आखिर हमारी बहन ही तो है। कहने दो जो कहती है।"

रामप्रकाश दो दिन की छुट्टी लेकर आया था। संध्या की गाड़ी से चला गया। इस बार उसके साथ स्टेशन तक जाने वाले वे कई लोग थे जिनके घर सिपाहियों की रात को आवाजें पड़ती थीं। वे लोग नम्बरी बदमाशों की लिस्ट में पुलिस ने दर्ज किये हुए थे।

रामप्रकाश ने इनसे वायदा किया कि अब की बार आने पर वह थाने में जायेगा और उनके नाम पुलिस के रजिस्टर से कटवा देगा। साथ ही उन लोगों ने भी जी-जान से मदद करने का वायदा किया और पीछे धर्मप्रकाश का बाल भी बाँका न होने देने की कसमें खाईं।

रामप्रकाश का सितारा बुलन्दी पर देखकर मुंशी चतुरसिंह का चचा-जाद भाई भी, जिसकी जायदाद को मुंशीजी ने खरीद लिया था, उसके साथ स्टेशन तक पहुंचाने गया और कहा, "रामप्रकाश जरा मेरा भी खयाल रखना ! भाई साहब ने मुझे कहीं का भी नहीं छोड़ा। उनका विश्वास करके, जैसा उन्होंने कहा, मैंने कागजों पर दस्तखत कर दिये। मुझे क्या पता था कि वे दस्तखत करने के बाद मेरा जमीन, घर और

जायदाद के कोई सरोकार ही नहीं रहेगा।" सब कुछ जानते हुए चालाकी से कहा।

"आपके साथ ताऊजी ने बहुत बेईमानी की है चचा !" केवल एक ही वाक्य में रामप्रकाश ने भी चचा के दिल की मक्कारी को पढ़ते हुए ऊपर से कहा और अन्त में आश्वासन दिया कि वह उनका हर तरह मददगार रहेगा। लेकिन उन्हें भी ध्यानव्रत को उस अठारह बीघे खेत का लगान न देकर रामप्रकाश को ही देना चाहिए।

और चचा यह बात मंजूर करके वहाँ से लौटे। इनके आपसी झगड़े में चचा भी जिधर की बाजी भारी देखते थे उधर को ही झुकने लगते थे।

: २८ :

मुंशी चतुरसिंह मुकदमा हार गये तो उन्हें लगा कि मानो रामप्रकाश ने उन्हें स्वर्ग की उस पगडंडी से जिस, पर कि वह अपनी स्त्री और बाल,-बच्चों के अपने छोटे से नये परिवार को लिए बुलन्दी की तरफ जा रहे थे, टाँग पकड़ कर अपने बराबर में घसीटते हुए कहा, 'जरा ठहरिये तो ताऊ जी ! हम लोग भी उन्ही चौधरी आभाराम के परिवार से सम्बन्ध रखते हैं जिससे आप। फिर आप पंजों के बल चलें और हम एड़ियाँ घसीटें, भला यह कैसे होगा ?'

मुंशी चतुरसिंह को क्रोध आगया रामप्रकाश के इन शब्दों पर। वह क्रोध में बुड़बुड़ाते हुए बोले, 'कमीने ! तू मुझे ताऊजी कहकर पुकारने का हकदार नहीं है। तूने परिवार को कलंक लगाया है। तू शराब पीता है, मांस खाता है। तेरी सोहबत में गुण्डे लोग बैठते है। तू उनका सरदार है।.........तू ही क्या ? अब तो अदालत भी लुच्चों और गुण्डों का ही साथ देती है। मैंने अपनी जिंदगी भर की कमाई से जो जायदाद पैदा की, उसे अदालत ने बिला हिसाब-किताब तीनों फरीकों में बराबर-बराबर बाँटने का हुक्म सुना दिया। यह अन्याय नहीं तो क्या है ?'

'यह अन्याय नहीं, इन्साफ है ताऊजी ! यह जायदाद हमारे पूर्वजों की थी, आपने खरीदा नहीं इसे। आपने कमाया और इसमें दिया तो आपने तालीम भी तो घर के ही पैसे से पाई। हमारे वालिद खेती कराते थे और जो पैदा होता था उसे आप बेचते थे। वह रुपया कहाँ जाता था।' रामप्रकाश ने मुस्कुराकर पूछा।

'मैं तेरे मुँह नहीं लगना चाहता। मेरा हिसाब लेने वाला तू पैदा हुआ है।' मुंशी चतुरसिंह क्रोध में बोले।

वालिद ने आपकी गुलामी की, इसीलिए मरते समय आपने उनका इलाज कराना भी ठीक नहीं समझा। मैं अगर गुलामी करूँगा तो मेरा भी वही हशर होगा। लेकिन ताऊजी ! मैं वालिद के जैसी मूर्खता नहीं कर सकता। मैं अपने हिस्से का एक-एक खूड आपकी दाढ़ के नीचे से निकाल कर दम लूंगा।' और इतना कहकर रामप्रकाश फिर व्यंग्य-पूर्ण हँसी में हँसा।

मुंशी चतुरसिंह अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ रहे थे। कलेजा तंदूर की तरह दहक रहा था, परन्तु अन्दर की तपिश को बाहर निकालने का रास्ता उन्हें दिखलाई नहीं दे रहा था।

मुंशी चतुरसिंह ये सब बातें स्वप्न में रामप्रकाश से कर रहे थे। यों आमने-सामने पड़कर रामप्रकाश से बातें करना वह पसंद नहीं करते थे, लेकिन जब स्वप्न में रामप्रकाश मुस्कराता हुआ अपनी जीत का खुमार ताऊजी पर उतारने चला आया तो उनसे भी भागते न बना।

गाँव के मुल्ला ने अजान दी तो मुंशी जी की आँखें खुलीं। वह उठकर पलंग से खड़े हो गये और बैटक का दरवाजा खोल कर बाहर के कच्चे चबूतरे पर नीम के नीचे आ गये। सुबह होगई थी।

मुंशी जी ने अपना घुटनों तक का खद्दर का अंगोछा बाँधा हुआ था। बदन पर बनियान था। यज्ञोपवीत कान पर कई अलबेटों के साथ चढ़ाया और एक लोटा पानी लेकर जंगल की तरफ शौच इत्यादि से निवृत्त होने के लिए निकल गये।

कुए पर जाकर देखा तो धर्मप्रकाश की हरट चल रही थी। धर्म-प्रकाश की हरट देखकर दिल पर जरा ठेस सी लगी। उनके खयाल से धर्मप्रकाश और रामप्रकाश दो कांटेदार वृक्ष थे, जो उनकी जमीन में उग आये थे। उन्हें काट फेंकने और अपनी जमीन को साफ करने के लिए मुंशी जी ने माल की अदालत में तकसीम की अर्जी दी थी। लेकिन दुर्भाग्य वश वह कांटेदार वृक्ष इतना कड़ा निकला कि उसे काट डालने के लिए जो उन्होंने कुल्हाड़ी का वार किया वह कुल्हाड़ी उसके सख्त तने से टकरा कर गद्दा खा गई और उल्टी उनके माथे में आ लगी। इस पीड़ा ने आजकल मुंशी चतुरसिंह को बेचैन बना रखा था।

× × × ×

अग्निदत्त को जब यह मालूम हुआ कि अदालत ने खांदान को मुश्तर्का करार दे दिया तो उनकी भी बाँछें खिल गईं और आज संध्या को जब वह दफ्तर से लौटे तो उनकी स्त्री ने देखा कि अग्निदत्त के चेहरे पर एक आभा थी, मुस्कराहट थी और वह मन की बात को अपनी स्त्री पर खोलने के लिए उद्विग्न हो रहे थे।

कोट उतार कर उसकी जेब से रामप्रकाश का खत निकाला और चश्मा आँखों पर चढ़ाते हुए बोले, "लो देख लो देवी ! भगवान् का न्याय कैसा अटक है। आदमी के करने से कुछ नहीं बनता। होता वही है जो राम रच राखा।"

"आखिर बात क्या है ?" प्रसन्ता पूर्वक बाबू अग्निदत्त के हाथों से कोट संभालते हुए उनसे सट कर उनकी स्त्री ने पूछा।

"बात क्या है, वही बात है पुरानी। रामप्रकाश का खत आया है। भाई साहब मुकदमा हार गये और अब मेरा हिस्सा भी उन्हें देना ही होगा। उसे हज्म कर जाना अब उनके बूते की बात नहीं रही। यदि सहूलियत से मेरा हिस्सा वह नहीं देंगे तो मेरे लिए भी रामप्रकाश ने रास्ता साफ कर दिया है।"

"मेरे जी को तो, सच जानो, आज शांति मिली है।" बाबू अग्निदत्त की स्त्री ने कहा। "जेठ बन्दे ने जैसा हमारे साथ किया, उसका फल उसे भगवान् ने दे दिया।" हलके मन से प्रसन्नतापूर्वक बाबू अग्निदत्त की स्त्री बोली।

यह अवसर बाबू अग्निदत्त ने हाथ से नहीं जाने दिया और गर्म लोहे पर चोट लगाने के लिए एक दिन मठारते हुए वह भी मुंशी चतुरसिंह के पास जा पहुंचे। कुछ झिझक थी उनके मन में, क्योंकि अभी तक कभी सामने पड़कर उन्होंने बड़े भाई से कोई बात नहीं कही थी। परन्तु इस बार उनके अन्दर उनकी स्त्री द्वारा खूब सख्ती के साथ हवा भरी गई थी और कह दिया गया था कि यदि इस बार उन्होंने साहस से काम नहीं लिया तो फिर सरावे के अन्दर कदम रखना नामुमकिन हो जायगा।

और वह भी कसम लेकर चले थे कि इस बार, चाहे जो भी क्यों न हो, भाई साहब से खूब खुल कर बातें होंगी।

बाबू अग्निदत्त का अब सरावे में जाना उसी प्रकार था जिस प्रकार कि कोई बाहर गाँव का आदमी किसी गाँव में जाता है। धर्मप्रकाश तो फिर भी चाचाजी कह कर जरा सहूलियत के साथ उनसे बोला, लेकिन मुंशी चतुरसिंह की हवेली पर तो उन्हें देखते ही घर के हर आदमी पर मुर्दनी सी छा गई।

मुंशी चतुरसिंह बैठक में बैठे 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ रहे थे। बाबू अग्निदत्त ने सकुचाते हुए आगे बढ़ कर उन्हें प्रणाम किया, तो तब कहीं उनका पुस्तक में से ध्यान हटा। बाबू अग्निदत्त की तरफ देखकर व्यंग्यपूर्ण स्वर में बोले, "ओह बाबू साहब पधारे हैं। गलती हुई जो मैं खड़ा नहीं हो गया।"

बाबू अग्निदत्त पर भाई साहब के इस व्यंग्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह सामने से एक मूढ़ा खिसका कर उस पर बैठ गये। फिर धीरे से बोले, "अब आपका मेरे जमीन के हिस्से के बारे में क्या खयाल है भाई साहब ?"

"आपके बारे में क्या खयाल होगा ?" अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ कर मुंशी चतुरसिंह बोले। "मैं क्या किसी के साथ बेईमानी करना चाहता हूँ। मैंने तो ज्ञानव्रत को तुम्हारे बारे में पहिले ही कह दिया था कि अग्निदत्त ने जो रुपया दिया है, वह उसे मिल जाना चाहिए। मेरा लड़का मेरी हुक्मउदूली नहीं कर सकता। वह शक्तिसिंह का बेटा नहीं है जो........" कहते-कहते मुंशी चतुरसिंह का गला रुक गया और शब्दों को मानो पाला मार गया।

"तो ज्ञानव्रत मुझे मुकदमा जीत कर रुपया अदा करता और जमीन तो सब आपने अपने बाल-बच्चों के लिए ही खरीदी थी। हम लोग तो आपके खयाल से लावल्द ही जा रहे हैं।" उसी सरलता के साथ बाबू अग्निदत्त ने कहा।

अग्निदत्त की बात मुंशी चतुरसिंह के कलेजे को चीरती चली गई, परन्तु समय की कमजोरी को देखते हुए वह बोले एक शब्द भी नहीं। उनका मन कह रहा था कि अब तो यह भी अपना हिस्सा उनसे मार जूतियों अलग करा लेगा, तो फिर नाहक झुँझलाने और बात बिगाड़ने से क्या लाभ ?

बाबू अग्निदत्त को इस बार सरावे से मुंशी चतुरसिंह ने हाँ-हूँ करके ही बिदा कर दिया। वह जानते थे कि यह नौकरी-पेशा आदमी एक दिन नहीं तो दो दिन ठहरेगा। इस लिए इसे क्यों न कुछ इलझे जवाबों में ही लटका कर झोंटा दे दिया जाय।

और इसी प्रकार मुंशी चतुरसिंह ने बाबू अग्निदत्त को कई वर्ष टलकाया, परन्तु अब अग्निदत्त भी पीछे ही पढ़ गया था उनके। मामला उसका मजबूत था और किसी तरह भी कानूनन उसे उसके हक से बर-तरफ नहीं किया जा सकता था।

इस दौरान में सरावे की जमीन पर ध्यानव्रत और धर्मप्रकाश पूरी तरह काबिज हो चुके थे। शुरू में रामप्रकाश को बाबू अग्निदत्त की जरूरत थी, लेकिन वह जरूरत धीरे-धीरे समाप्त हो गई और आज

तो उसके दिल में वे पुरानी बातें ताजा थीं जब बाबू अग्निदत्त ने ज्ञान-व्रत की शादी में आकर उसके रचे हुए तमाम जाल को काट डाला था। उसकी चाची जी के हाथों मुँह दिखाई में ज्ञानव्रत की स्त्री को दी जाने वाली माला का एक-एक दाना उसके कलेजे पर फफोले की तरह उभर रहा था और उसका बदला लेने की चाह उसके दिल में हर समय ताजा रहती थी।

अब इस सम्मिलित परिवार की सब जायदाद इन दोनों ही फरीकों के पास थी। अग्निदत्त अपनी नौकरी से जब-तब छुट्टी लेकर मुंशी चतुरसिंह के पास जाते और कहते, "भाई साहब! अगर मुझे दुबारा मुकदमा करना पड़ा तो भला उससे क्या लाभ होगा? व्यर्थ के लिए दोनों फरीकों का रुपया बरबाद होगा और हाथ किसी के कुछ भी नहीं आयगा। इन मुकदमेंबाजियों से यह जमीन बढ़ने वाली तो है नहीं।"

मुंशी चतुरसिंह इन बातों को सुनते और अन्दर-ही-अन्दर जल-भुन कर कहते, 'कैसा आया है मुझे शिक्षा देने के लिए। चार दिन का बच्चा और हमारे कान काटना चाहता है।' लेकिन ऊपर से अब प्रेम-भाव ही जतलाने का प्रयत्न करते।

जब बाबू अग्निदत्त चले जाते तो हरकली दबे पैर बैठक में दाखिल होती और कहती, "चले गये चाचा जी?"

"चला जायगा! मुझे क्या पूछना पड़ा था? जिन भतीजों के हक में गवाही दी है, वे जानें। मैं तो आ बैठने पर दो चार बातें भी मामले को जरा तूल देने के लिए ही करता हूँ। वरना तो इस नालायक से मेरी बात करने को भी रूह नहीं चाहती।"

"चचा अग्निदत्त अन्दर और बाहर से एक से ही स्याह निकलेंगे इसका तो मुझे स्वप्न में भी गुमान नहीं था। मैं दावे के साथ कहती हूँ कि यदि चाचा जी रामप्रकाश का साथ न देते तो वह हरगिज-हरगिज दीवानी में जाने की जुरत न करता और हम लोगों को इस प्रकार हार, हानि और बदनामी का मुँह न देखना पड़ता।" हरकली ने अपनी छोटी

नाक को दो-चार बार चढ़ाकर मस्तक में सलवटें डालते हुए कहा।

"जबरदस्त स्याह दिल का निकला अग्निदत्त! लेकिन तुम भी देखना कि मैं भी इसे कितने नाच नचाता हूँ। यह समझ बैठा है कि जमीन यूं ही आसानी से पा जायगा। रामप्रकाश मुकदमा जीत गया, तो जीत जाये, अग्निदत्त तो मुकदमा नहीं जीता है। मुश्तर्का खांदान की बात भी अब खत्म हो चुकी। अब तो जो जिसके कब्जे में है, वह उसकी रहेगी।" मुंशी जी ने दृढ़ता पूर्वक कहा और पिछले दिन मेरठ में उनके समधी महोदय ने भी उन्हें यही सलाह दी थी। एक सप्ताह पूर्व उनका छोटा दामाद जब सरावे आया था तो उसकी भी यही राय थी।

"आपने बिलकुल ठीक सोचा है पिता जी! चाचाजी को जब तक भी रखा जा सके, झमेले में ही रखना चाहिए। उन्हें किसी बात के लिए मना भी नहीं करना चाहिए और कुछ करने की भी आवश्यकता नहीं है।" हरकली ने चतुराई के साथ कहा।

मुंशी चतुरसिंह हरकली की हर बात से सहमत थे।

हरकली की नीति पर कदम रखकर मुंशी चतुरसिंह अपने बाल-बच्चों सहित जिस लिफ्ट पर चढ़ कर आसमान की सैर करना चाहते थे वह लिफ्ट अब उन्हें केवल जाम ही हुई प्रतीत नहीं होती थी, वरन उन्हें लग रहा था कि वह बीच की मंजिल से भी नीचे खिसकनी प्रारम्भ हो गई थी।

ध्यानव्रत ने फसल भर मेहनत करके जो अनाज पैदा किया था वह जंगल के खलिहान में पड़ा था और किसी प्रकार अब तक का खर्चा हरकली के वेतन से चलाया गया था, लेकिन था वह बहुत नाकाफी। मुंशी चतुर सिंह जो मेरठ में आर्य-कन्या-पाठशाला में अध्यापन कार्य कर रहे थे, वह उनकी नौकरी छूट गई और इससे उनकी पारिवारिक-आर्थिक-व्यवस्था को जबरदस्त ठेस लगी।

इसी समय दैव ने उन पर दूसरी आपत्ति डाल दी और वह यह कि रामप्रकाश ने उनका अनाज पैरों में ही कुर्क करा लिया। सात सौ रुपये

की रकम एक मुश्त दे देनी पड़ी और जो अनाज उनके घर में आकर कोठियों में भर जाता, वह बनिये की दूकान पर पहुंच गया ।

मुंशी चतुरसिंह के परिवार की लिफ्ट का वह तख्ता जो आकाश की ओर बढ़ने जा रहा था, एक मंजिल नीचे खिसक आया । मुंशी जी को लगा कि उनके जीवन का सर्वस्व ही नष्ट हो गया । उन्होंने एकांत में जाकर अपना माथा ठोका और अपनें भग्य को कोसने के अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई चारा ही नहीं था इस समय ।

मुंशी चतुरसिंह ने मुंसफ़ी से हारकर जजी में भी अपील की थी, परन्तु दुर्भाग्यवश वहाँ भी उनकी उम्मीदों का चिराग़ गुल-का-गुल रहा, उसमें रौशनी न आ सकी, वह मुकदमा न जीत सके। इसीलिए अंतिम दशा में उनके अनाज की कुर्की कराके रामप्रकाश एक दबदबे के साथ सिर ऊँचा करके मूँछों पर ताव देता हुआ उनके सामने से निकला था, और सिर्फ नज़रों-ही-नज़रों में बिला एक शब्द भी मुँह से कहे कहता था, 'आखिर लेकर दिखला दिया न मैंने कुल जायदाद का एक तिहाई हिस्सा । बारहवाँ हिस्सा आप मुझे देना चाहते थे, वह कहाँ है अब आपकी इंसाफ़-पसंदी ?"

मुंशी चतुरसिंह का बड़ा लड़का अफ्रीका गया हुआ था । वहाँ जाकर उसने व्यापार किया और उस व्यापार में रुपया लगा उन महाशय का, जिनकी पूँछ पकड़कर यह अफ्रीका गये थे । सुनते हैं मूँगफलियों का व्यापार किया, परन्तु जब विधाता उल्टा पड़ता है तो चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार छा जाता है । इन दिनों मुंशी चतुरसिंह का विधाता उल्टा पड़ा हुआ था । इसलिए वह जो भी चाल चलते थे उसमें मात ही सामने नज़र आती थी । दुर्भाग्यवश उनकी इस समय हर गोट पिटती जा रही थी और कहीं भी कामयाबी नज़र नहीं आती थी ।

मुंशी चतुरसिंह का अपना पौरुष थकता जा रहा था । बड़ा लड़का विलायत व्यापार करने गया तो उसे भी घाटा आ गया । अपनी पूँजी तो कुछ थी नहीं, दूसरे हिस्सेदार की पूँजी भी नुकसान

की भेंट चढ़ गई। तब नौकरी का सहारा लेना पड़ा। नौकरियाँ जो मिलती थीं वे एक मैट्रिक पास तालीमयाफ्ता हेडमास्टर साहब के लड़के और सरावे के नामी ज़मींदार की पोज़ीशन से छोटी थीं। दिल न चाहते हुए भी ज़रूरत ने ज्ञानव्रत से वे नौकरियाँ दस-दस पाँच-पाँच दिन कराईं, परन्तु उनसे केवल उसके अपने ही खाने-पीने का पोत-पूरा भर हुआ। उस आमदनी में से बचाकर वह अपने आपत्ति-ग्रस्त सरावे के परिवार के लिए कुछ नहीं भेज सका।

इसी आपत्ति-काल में मुंशी चतुरसिंह की आर्य-कन्या-पाठशाला वाली नौकरी भी छूटी थी, मानो विधाता ने आँखें ही मींच लीं मुंशी चतुरसिंह की तरफ से। ध्यानव्रत की कमाई का अनाज कुर्क हो ही चुका था। अब सारे परिवार की आँखें अपनी अन्न-दात्री हरकली देवी पर ही टिकी हुई थीं। इस मुसीबत-ज़दा परिवार के लिए वही एक तिनके का सहारा थी।

लेकिन थी मजबूत वह भी। अपनी ज़िद की पक्की, एक इंच अपने इरादों से जुम्बिश खाने वाली नहीं थी। पत्थर की शिला थी वह, जो टूट सकती थी, परन्तु मुड़ना उसने नहीं सीखा था। किसी जमाने में जो परिवार पर मुंशी चतुरसिंह का तहत था, वह आज उनकी इस कटी-छटी गृहस्थी पर हरकली का था। इस घर का हर प्राणी उसके संकेत पर नाचता था। यहाँ तक कि मुंशी चतुरसिंह को भी हरकली से अब भय लगने लगा था।

: २६ :

मुंशी चतुरसिंह ने अपनी गृहस्थी के इस आपत्ति-काल में एक बार फिर साहस से काम लिया और अपनी कर्मठता को ललकारकर वह इस बुढ़ापे में नौकरी तालाश करने के लिए निकले। भाग्य से उन्हें फिर अपने एक मित्र की बदौलत चालीस रुपये महावार की नौकरी मिल गई।

मुंशी चतुरसिंह का कर्मकाण्डी जीवन अब भी उसी प्रकार चल रहा था, लेकिन अब उसमें धीरे-धीरे कुछ शिथिलता आनी प्रारम्भ हो गई थी। नित्य-नियमों में तो कोई विशेष कमी नहीं थी, लेकिन हवन अब वह सप्ताह में केवल एक बार करते थे। रोजाना सामग्री और घी का खर्च बर्दाश्त करना उनके लिए कठिन था और हरकली ने भी उन्हें ऐसा ही करने का परामर्श दिया था। इस मामले में उनकी भगवत-भक्ति अब कर्मकाण्डी रूप से अंतरयामी रूप की ओर अधिक आकृष्ट होती जा रही थी।

मुंशी चतुरसिंह मुकदमा हारजाने पर कुछ विचार-शून्य से हो गये थे और उन्हें लगता था कि उनकी जीवन भर की कमाई रामप्रकाश की गहरी खंदक में गिरकर सर्वदा के लिए उनके हाथों से जाती रही। अपने बाल-बच्चों के लिए उन्होंने जो सम्पत्ति कमाई थी, उसे वह उनके हाथों में न सौंप सके और इस प्रकार उन्होंने उन्हें अनाथ-का-अनाथ मात्र ही छोड़ दिया। ऊँचे उठने का जो ख्वाब उन्हें हरकली ने दिखाया था वह हवा का बबूला मात्र साबति हुआ। अपने बच्चों के लिए वह कुछ भी न कर सके, इसका उनके दिल पर गहरा मलाल था। रामप्रकाश जायदाद पा गया सो पा गया परन्तु अग्निदत्त को वह जहाँ तक भी उनसे बन पड़ेगा सरावे की तरफ झाँकने नहीं देंगे। उनसे जहाँ तक भी होगा वह उसे झमेले में ही रखते रहेंगे।

मुंशी चतुरसिंह की यह नई नौकरी एक बोर्डिंग-हाउस में क्लर्की की नौकरी थी और भाग्यवश या दुर्भाग्यवश अग्निदत्त का लड़का भी उसी बोर्डिंग-हाउस में रहकर मेरठ-कालिज में पढ़ रहा था। अग्निदत्त का लड़का राजू बी० ए० में था और यहाँ उसके रिश्ते के लिये भी बिरादरी के आदमियों ने आना-जाना शुरू कर दिया था।

तगा-जाति, जिसका आम पेशा खेती-बाड़ी है, राजू की बिरादरी थी और इस बिरादरी में ज़मीन-जायदाद का होना ही परिवार का बड़प्पन माना जाता है। गो तालीम के इस युग ने पढ़े-लिखे लोगों

का भी समाज ने कुछ मूल्यांकन करना शुरू कर दिया है, परन्तु फिर भी अधिकांश लोग खास तौर पर शादी-विवाहों के समय जमीन-जायदाद को ही अधिक महत्व देते हैं।

अग्निदत्त के लड़के को जो लोग देखने आते वे साथ ही उसके ताऊजी से भी मिलते और राजू की आर्थिक स्थिति से भी भिज्ञ होना चाहते। लेकिन मुंशी चतुरसिंह आज अपनी प्रसिद्धि और नाम का सहारा अग्निदत्त के लड़के के रिश्ते के पुख्ता होने के लिए करने को तैयार न थे। राजू के रिश्ते के संबंध में जो भी उनसे मिलता था वह स्पष्ट कह देते थे, "लड़का आपने देख लिया। बी० ए० में पढ़ रहा है। लेकिन जमीन-जायदाद मुझे खेद है कि मैं इसे देने वाला नहीं हूँ। इसके वालिद महाशय ने मेरे साथ जो कुछ भी किया है उसे बस मेरा ही दिल जानता है। ऐसी दशा में आप यदि रुपया देकर लड़के को घेरना चाहते हैं तो मुझे बहुत खुशी होगी।"

राजू को देखने के लिए आने वाले सहम जाते कि अपनी लड़की को इस रास्ता चलते के हवाले भला वह किस प्रकार कर दें। जब इसके पास दो खूड जमीन ही न रहेंगे तो खाली पढ़ाई-लिखाई को ही लेकर क्या करेंगे। भगवान् कल-कलाँ को न करे कि लड़के को कोई हर्ज-मर्ज हो जाये तो लड़की के लिए तो जिन्दगी भर को भूखों मरना हो जायेगा। माँ-बाप भला लड़की को कहाँ तक निभा सकते हैं।

फिर वे लोग राजू से मिलते। वह आव-भगत के साथ उनसे बातें करता। बातें करके उनकी तबियत खुश होती, परन्तु जब जमीन-जायदाद का प्रश्न सामने आता तो लड़के का खून खौल उठता और वह गर्मी खाकर पूछता, "आप अपनी लड़की का रिश्ता मुझ से करना चाहते हैं या मेरी जमीन-जायदाद से। अगर जमीन से करना है तो पटवारी के कागजातों में जाकर टक्कर मारिये मुझे कुछ पता नहीं ताऊजी क्या कहते हैं और पिताजी क्या। जो ताऊजी ने कहा है वह ठीक है उनके खयाल से, लेकिन मुझे उनकी जायदाद से कोई लगाव नहीं है।"

अंत में एक दिन वह भी आ गया जब परिवार के इस अंतिम बच्चे के रिश्ते का भी सवाल हल हो गया और यह सवाल अग्निदत्त के लड़के ने स्वयं ही हल कर डाला। अपने रिश्ते का रुपया उसने स्वयं ले लिया और रस्म पूरी करने के लिए अपने भावी ससुर को अपने पिताजी के पास भेजकर एक पत्र लिख दिया, "यह रिश्ता मुझे मंजूर है। आप रुपया लेकर बात पक्की कर लें।"

बाबू अग्निदत्त ने अपने लड़के की शादी का रुपया ले लिया, लेकिन वह रुपया इतना भारी था कि उसे वह अपने पास न रख सके। आज इतने तफ़रकों के पश्चात् भी वह अपने बड़े भाई साहब मुंशी चतुरसिंह की इज्ज़त कम नहीं करते थे। रुपया लेकर वह सीधे सरावे पहुंचे और भाई साहब के हाथों में रुपया रखते हुए बोले, "यह राजू के रिश्ते का रुपया है भाई साहब! जिस तरह आपने सब बच्चों की शादियाँ की हैं, उसी तरह आपको राजू की भी शादी करनी है।"

मुंशीजी रुपया हाथ में लेकर सहमे से रह गये। उन्होंने समझा कि कहीं शादी का खर्च भी उनके सिर पर न आ पड़े। इसलिए स्पष्टता-पूर्वक बोले, "रुपया तो मैंने ले लिया अग्निदत्त! लेकिन शादी के खर्च का क्या होगा? मेरे पास तो तुम जानते ही हो, आजकल शादी में लगाने को एक पैसा भी नहीं है। किसी तरह अपनी गृहस्थी का काम चला रहा हूँ।"

"होगा सब आपके ही हाथों और, रुपया सब मैं दूँगा।" अग्निदत्त ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। "शादी उस ठसके की होगी कि जिससे आपका और आपके परिवार का मान बढ़े।"

इसमें मुंशी चतुरसिंह को कोई आपत्ति नहीं थी। उन्होंने हर-कली की माताजी को बुलाकर रुपया उनके हाथों में दे दिया। इस समय का वातावरण कुछ ऐसा बन गया था कि मानो परिस्थिति ने पारस्परिक वैमनस्य की भावना में कुछ कमी करदी हो।

दूसरा प्रश्न अब सामने था कि यह शादी कहाँ पर की जाय। क्या

बाबू अग्निदत्त वहीं पर शादी करें जहाँ वह नौकरी करते हैं अथवा शादी सरावे में हो। मुंशी चतुरसिंह ने पूछा, "तो फिर शादी कहाँ करने का विचार है तुम्हारा ?"

"जहाँ आप आज्ञा करें।" अग्निदत्त ने छोटे भाई की हैसियत से जवाब दिया।

"शादी की शोभा तो सरावे में ही है, मेरे ख़याल से।" और फिर उन्होंने हरकली की माताजी की तरफ़ देखते हुए कहा, "क्यों हरकली की माता जी ! तुम्हारा क्या ख़याल है इस बारे में ?"

"शादी तो सरावे में ही होनी चाहिए। यहीं पर शादी करने में हमारे परिवार की इज्जत है।" हरकली की माता जी ने कहा।

"मुझे यहाँ शादी करने में कोई ऐतराज नहीं है, लेकिन यहाँ शादी किस मकान में की जायगी ? पुराना मकान जिसमें धर्मप्रकाश रहता है, इस काबिल नहीं है कि उसमें शादी की जा सके। वह इस बुरी तरह से फूटा पड़ा है कि उसकी तो मरम्मत में ही हजारों रुपया लग जायगा।" अग्निदत्त ने कहा।

इस समय दो भाइयों का हृदय मिलकर एक धारा में बह रहा था। दोनों ही परिवार के उस पुराने बन्धन में, बँधकर बातें कर रहे थे जिसमें बँधकर इन महारथियों ने पुराने कर्ज की दलदल से इस परिवार को एक दिन बाहर लाकर सख्त जमीन पर चलने योग्य बना दिया था। उसी परिवार की संस्था के नाम की शौहरत और उसके बड़प्पन को आगे बढ़ाने की दिशा में इस समय ये दोनों भाई सोच रहे थे। दोनों का दिल साथ था और वहीं खिड़की के सहारे खड़ी हुई हरकली की माता जी को भी कहीं कोई भेद-भाव की बात दिखाई नहीं दे रही थी।

आज हरकली की माताजी के सामने उनका पति और देवर पारस्परिक स्नेह के उसी प्रांगण में बैठे थे, जिसमें उसने एक दिन अपने जवानी-पहरे में उन्हें देखा था। उसी तरह आपस में सलाह-मशवरा

करते हुए जिस तरह बाप और बेटे आपस में बातें करते हैं। वही अदब, वही ममता, वही सहृदयता, वही सहयोग और वही प्रेम की भावना दोनों ओर वर्तमान थी।

मुंशी चतुरसिंह ने अग्निदत्त के हृदय की भावना को परखा और यह भी जाना कि वाक़ई राजू की बहू उस फूटे हुए पुराने खंडहर में नहीं उतरनी चाहिए। बिरादरी के एक बड़े घराने की लड़की हमारे परिवार की इज़्ज़त के बारे में भला क्या ख़याल लेकर जायगी। वह उभर कर बोले, "राजू की शादी उस फूटे हुए मकान में नहीं होगी अग्निदत्त! राजू की शादी इस हवेली में होगी, जिसमें अभी तक एक भी शादी नहीं हुई। और राजू की बहू इसी हवेली में आकर उतरेगी।"

बाबू अग्निदत्त का चित्त प्रसन्न हो गया अपने भाई की सहृदयता पर। वह भाई साहब के इस समय के सहयोग की इज़्ज़त मन में लेकर सरावे से अपनी नौकरी पर चले गये और उन्होंने राजू के विवाह के निमंत्रण-पत्र इत्यादि छपा कर सब रिश्तेदारों के पास भेज दिये। हर बात निश्चित हो चुकी थी।

बाबू अग्निदत्त के सरावे से प्रस्थान करने के दूसरे ही दिन हरकली भी हापुड़ से सरावे आई। वह पहिले से ही इस चाँस-बाँस में लगी थी कि देखें दोनों भाइयों की राजू की शादी के बारे में क्या बातें होती हैं। हरकली अपने चचा अग्निदत्त को चुप-बदमाश समझती थी। बड़ा ही खतरनाक था यह चचा उसकी नजरों में और उसके डंक (साँप-बिच्छू इत्यादि की भांति) से वह अपने पिताजी की हर समय हिफाजत करने में लगी हुई थी।

हरकली ने वे सब बातें सुनीं जो मुंशी चतुरसिंह और बाबू अग्निदत्त के बीच में तै हुई थीं, और उन्हें सुनकर वह एकदम झल्लाती हुई अपने पिताजी के पास जाकर बोली, "पिताजी! आपने तो बस हद ही कर दी सादगी में। चाचा जी जब आते हैं अपना जाल आप पर फैला जाते हैं और आपको मूर्ख बना जाते हैं।"

मुंशी चतुरसिंह हक्के-बक्के रह गये हरकली की बात सुनकर और उनके दिमाग पर परिवार की शानोशौकत का जो पहिला बड़ा नक्शा था उसे हरकली ने उतार कर उनके सामने चीर-चीर करते हुए कहा, "अब यह नहीं है आपका परिवार। ये वे जोकें हैं जिन्होंने आज तक आपका खून चूंस-चूंस कर अपने को फुलाया है और आपकी आज बुढ़ापे में यह दशा कर दी है कि जिन्दगी भर कमाने के बाद भी चैन की दो रोटियाँ नसीब नहीं होतीं।"

मुंशी चतुरसिंह की अक्ल अभी तक हरकली के विचारों की बुलन्दी को नहीं छू पाई थी।

हरकली अपने पिताजी के सामने मूढ़े पर जम कर बैठ गई और फिर गम्भीर मुद्रा बनाकर बोली, "आप जानते हैं यह चाचा जी ने कौनसी चाल चली है?"

मुंशी चतुरसिंह को अपने दिमाग से अभी तक कहीं पर भी अग्निदत्त की कोई चाल दिखाई नहीं दे रही थी। उन्होंने सरल भाव से पूछा, "अग्निदत्त की चाल?"

"जी हाँ आपके भाई साहब बाबू अग्निदत्त की चाल; और वह गहरी चाल कि जिस पर आपका कदम पड़ते ही वह आपको इस हवेली से बाहर निकाल कर फेंक दें।"

"हवेली से बाहर? यह क्या कह रही हो हरकली तुम? आखिर वह मुझे इस हवेली से बाहर निकाल कर कैसे फेंक देगा। हवेली की रजिस्ट्री मैंने पुख्ता तरीके से ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के नाम में कराई है। उसमें............."

"यह बात कुछ नहीं है पिताजी!" बीच में ही हरकली बोल उठी। "चाचा जी इस मकान में राजू की शादी करके इस मकान पर अपना कब्जा साबित करना चाहते हैं। आप नहीं जानते, अदालती दाव-पेचों में ऐसी बातें सबूत बन जाती हैं।"

बात बहुत गम्भीर थी। मुंशी चतुरसिंह ने सोचा कि वाकई वह

अग्निदत्त की इस गहरी चाल को नहीं पकड़ सके और धन्य है उस परमात्मा को कि जिसने उन्हें हरकली जैसी बुद्धिमान लड़की दी कि जिसकी विचारशील बुद्धि ने अग्निदत्त की चालाकी को जड़ से ही पकड़ लिया ।

मुंशी चतुरसिंह हँस पड़े हरकली के सामने और अपनी अग्निदत्त से की गई बातों को स्वप्न की बातें समझ कर बोले, "हुई तो वाकई गलती है मुझसे, लेकिन अब किया क्या जाय हरकली ?"

हरकली अपनी तुरत-बुद्धि से बोली, "इसमें कठिनाई ही क्या है । उन्हें साफ लिख दीजिये कि गाँव भर में अफवाह है कि तुम राजू की शादी के बहाने हमारी हवेली पर कब्जा साबित करना चाहते हो ।"

और इसी मजमून का एक पत्र मुंशी चतुरसिंह ने अग्निदत को लिख दिया । अग्निदत ने यह पत्र पढ़ा तो पहिले तो उनके पैरों के नीचे से जमीन निकल गई । वह जरा घबराये कि अब क्या होगा ? राजू की शादी वह सरावे में करने का निश्चय ही नहीं कर चुके थे, वरन् नाते रिश्तेदारों और मित्रों को शादी के निमंत्रण-पत्र भी भेज चुके थे । उधर भाई साहब ने बहाना बनाकर अपने मकान पर शादी करने देने से साफ इंकार कर दिया ।

लेकिन बाबू अग्निदत्त साहसी व्यक्ति थे और उन्होंने इस मुसीबत से परेशान होने की कोई आवश्यकता नहीं समझी । तुरन्त ही अपने विचारों का संतुलन ठीक करके सोचा कि चलो भाई साहब से अब एक चुटखी ही ली जाय । वह समझ चुके थे कि यह सब दुर्घटना हरकली के परामर्श का फल है ।

बाबू अग्निदत ने भाई साहब के पत्र के उत्तर में लिखा, "आपको शक है कि कहीं मैं राजू की शादी के बहाने से आपके घर पर कब्जा न कर लूँ । गाँव की अफवाह को आप जाने दीजिये, वह तो किसी समय कैसी और किसी समय कैसी होती ही रहती है । अपने इस अंदेशे को

दूर करने के लिए यदि आप चाहें तो मुझसे पाँच-सात दिन का किराये-नामा लिखा लें। मकान पर दखल लेने की मेरी नियत ही नहीं है तो मुझे फिर किरायेनामा लिखने में भी क्या उजर हो सकता है?"

यह पत्र बाबू अग्निदत ने भाई साहब का मन टटोलने के लिए लिखा था, हवेली का किरायेनामा लिखने के लिए नहीं।

और सचमुच ही मुंशी चतुरसिंह का उन्हें पाँचवें दिन पत्र मिला, "यह तुमने बहुत ठीक सोचा अग्निदत्त! तुम किरायेनामा लिखकर हवेली में शादी कर सकते हो। इसमें मुझे और बच्चों को कोई ऐतराज नहीं।"

बाबू अग्निदत इस समय अपने लड़के की शादी करने जा रहे थे, इसलिए पत्र के मजमून को कुनैन-मिक्सचर का घूंट समझ कर पी गये और होठों की मुस्कुराहट को नहीं जाने दिया। लेकिन दिल में सोच लिया, 'अब इस हवेली में भी यदि कभी दाखिल हूँगा तो इसे अपनी बनाकर ही हूँगा वरना इसके अन्दर पैर नहीं रखूँगा।'

शादी सरावे में होगी ही, यह वह निश्चित कर चुके थे। सरावे में उनका कोई नहीं है, इसका भी अंदाज अब उनके दिमाग में था। दिल से उन्होंने महसूस किया कि उन्होंने सरावे में शादी करके एक बड़ी भूल की है। संध्या को उनके मित्र बाबू भज्जूमल ने यही तो कहा था उनसे, "बाबू अग्निदत जी! आपने गाँव में शादी करने का जो निश्चय किया है यह बड़ी जबरदस्त गलती की है। मैं भी आफत का मारा भाई-भतीजों के कहने-सुनने में आकर लड़के की शादी करने गाँव चला गया था। वहाँ जाकर जो मेरी हजामत उन लोगों ने की, वह बस मैं ही-जानता हूँ। जिस काम को भी उन लोगों ने हाथों में लिया उसमें एक-एक के पाँच-पाँच खर्च कराये और उनकी नियत में यही रहा कि किसी तरह भज्जूमल की नाक कट जाये तो बैठ कर तमाशा देखें।"

बाबू भज्जुमल ने यह भी कहा था, "अगर मैंने शादी यहीं पर की

होती तो आप सब लोगों के रहते शायद मुझे किसी काम को हाथ लगाने की भी जरूरत न होती।"

लेकिन अब तो जो होना था सो हो चुका था। शादी के निमंत्रण-पत्र सब जगह जा चुके थे और बारात जाने का भी केवल एक ही सप्ताह बाकी रह गया था। बाबू अग्निदत्त ने डिपार्टमेंट में छुट्टी की दरखास्त दी तो दुर्भाग्यवश उन्हें छुट्टी भी न मिल सकी।

बाबू अग्निदत्त ने शादी की चीज-बस्त और कपड़े-लत्तों का सब इन्तजाम पहले से कर लिया था। सरावे में मेहमान लोगों के आने के दिन करीब आ गये और एक सप्ताह पूर्व अग्निदत्त अपनी स्त्री को लेकर वहाँ से चल पड़े। अग्निदत्त ने धर्मप्रकाश और मुंशी चतुरसिंह में से किसी को भी अपने आने की सूचना नहीं दी और सीधे जाकर सरावे से दो मील की दूरी पर लगने वाले कौली-पाँची के स्टेशन पर उतर पड़े। यहाँ से गाँव तक जाने के लिये उन्होंने वहीं से एक बैल-ताँगा किराये पर ले लिया और उसमें अपना सामान लाद कर दोनों आदमी सरावे पहुँच गये।

बाबू अग्निदत्त का बैल-ताँगा हवेली के दरवाजे पर न पहुँच कर अपने उसी कदीमी फूटे मकान पर पहुँचा, जिसमें धर्मप्रकाश अपनी स्त्री और बाल-बच्चों के साथ रह रहा था।

धर्मप्रकाश को बाबू अग्निदत्त के पहुँचने पर न तो कुछ अधिक रंज ही हुआ और न कुछ खुशी ही, परन्तु उसने उनका कोई विरोध नहीं किया। बाद में पता चला कि मुंशी चतुरसिंह को भी बाबू अग्निदत्त के आज सरावे में आने की सूचना मिल चुकी थी और इसीलिए हरकली ने आज सुबह से ही बहुओं को ताकीद कर दी थी, "आज हवेली की दुबारी का कुंदा अन्दर से एक मिनट के लिए भी नहीं खुलना चाहिए। जिस किसी को भी बाहर जाना हो, वह बैठक की खिड़की से ही बाहर निकले। यदि एक बार चाचा जी और चाची जी हवेली में घुस गये, तो बस समझ लेना कि हवेली पर उनका अधिकार हो गया और फिर उन्हें

यहाँ से निकालते नहीं बनेगा। अक्लमन्द आदमियों को मर्ज का इलाज मर्ज के होने से पहिले ही सोच लेना चाहिए।"

एक दो दिन तो धर्मप्रकाश और मुंशी चतुरसिंह के घरों में सन्नाटा रहा और उन लोगों ने देखा कि आखिर ये बाबूजी करते क्या हैं। बाबू जी और उनकी स्त्री ने उनसे बातें न करके पहिले तो मकान में पीछे की तरफ जो एक कोठा ढह गया था उसकी मरम्मत शुरू करा दी और फिर उसके बाहर की दीवार को लिहसवाना-लिपवाना शुरू कर दिया।

बाबू अग्निदत्त को तो फिर नौकरी पर लौट जाना पड़ा, क्योंकि छुट्टी नहीं मिली थी, परन्तु उनकी स्त्री ने यहाँ का कार्य इस खूबी के साथ संभाला कि गाँव और कुनबे के लोग देख कर यह भी न समझ सके कि आखिर ये लोग करना क्या चाहते हैं।

बाबू अग्निदत्त का लड़का भी यहाँ नहीं था, उनकी मदद के लिए। वह मेरठ कालेज में था और बी. ए. की परीक्षाएँ चल रही थीं। वह उस दिन सरावे में आया जिस दिन उसकी ससुराल के नाई-बामनों को लगन लेकर आये हुए भी दो दिन हो चुके थे।

धीरे-धीरे मुंशी चतुरसिंह की स्त्री, हरकली और उनके बाल-बच्चों ने यहाँ आना-जाना और मोटे-मोटे कामों में हाथ बँटाना तथा रात को जो गीत गाये जाते थे, उनमें शामिल होना शुरु कर दिया। धर्मप्रकाश की स्त्री ने भी अपने चूल्हे पर रोटी बन्द करके एक ही चूल्हा बना लिया। हरकली की माताजी ने भी अब अपनी देवरानी के ही घर पर खाना खाना प्रारम्भ कर दिया और हरकली तथा बच्चों ने भी इसी घर को चंद दिनों के लिए अपना घर मान लिया।

अग्निदत्त की स्त्री ने जो भी उसके पास आता गया उसको समयाचित आदर दिया और अपने काम में वह जिस किसी का जहाँ तक भी उपयोग कर सकती थी करना शुरु कर दिया।

राजू अपना बी. ए. का अन्तिम परीक्षा-पत्र दे रहा था और उसके

मन में विवाह की प्रसन्नता थी। शादी का नक्शा उसके दिमाग में भी जबरदस्त था। शान-शौकत वह भी चाहता था, परन्तु एक सादगी और संजीदापन भी था उसके दिमाग में। यों शादी के काम में उसने अपने पिताजी का भरसक हाथ भी बटाया था। मोटरों का प्रबन्ध वह देहली जाकर पहिले ही कर आया था। आज लगन के दिन जब वह सरावे पहुंचा तो उसकी माताजी ने प्यार के साथ उसे मकान की देहलीज़ पर आकर लिया।

"शादी का सब इन्तजाम ठीक है।" उसने माता जी से पूछा।

"सब ठीक है राजू! तू जल्दी से लगन के लिए तैयार हो जा। नाई-बामन कल के आये बैठे हैं बेचारे!"

"मेरा क्या ठीक होना है माता जी! मैं तो ठीक-ठाक हूँ। आप को जो करना है वह कर लीजिये, लेकिन मैं इन फिज़ूल की हल्दी-वल्दी मलने-मलाने की चीजों में नहीं पड़ूँगा।"

"अच्छा-अच्छा! न पड़ना, लेकिन ये कोट-पतलून उतार कर धोती-कुर्ता तो पहिन ले।"

और राजू तय्यार था कुर्ते-धोती में। लगन की रस्म हुई और समाप्त भी हो गई। गाँव के सभी मिलने वाले लोग घर पर आये और अंत में मिठाई तकसीम हुई।

गाँव में आमतौर पर इस शुभ अवसर पर गुड़ की भेलियाँ फोड़कर गुड़ की डलियाँ तकसीम की जाती हैं। लेकिन यह बाबू अग्निदत्त के लड़के की शादी थी। इसमें गुड़ की डलियाँ तकसीम नहीं की जा सकती थीं। धर्मप्रकाश से बाबू अग्निदत्त ने कहा, "बेटा हलवाई को कह दो कि लगन पर तकसीम करने के लिए एक मन जलेबियाँ तय्यार कर दे।"

धर्मप्रकाश चाचा जी का हुक्म पाकर वहाँ से तो इस तेजी के साथ चला कि मानो वह बड़ी लगन के साथ चाचाजी का काम कर रहा है, लेकिन गलिहारे में दो मकानों की ओट होते ही एक चौपाल पर चंद गाँव के आदमियों में हुक्का पीने के लिये बैठ गया। वहाँ भी गप्पों का

टापिक वही राजू की शादी था। धर्मप्रकाश ने बातों के दौरान में माथा चढ़ाकर कहा, "ऐसा हुक्म चढ़ाते हैं कि जानो हमारे लिए कुछ कर दिया है। अपने लड़के की शादी करने आये हैं, तो करें। हम क्या किसी के नौकर हैं बेगार ढोने के लिए ?"

यहाँ हुक्का पीकर धर्मप्रकाश लाला हलवाई की दूकान पर पहुंचे और वहाँ पड़ी हुई लकड़ी की बेंच पर बैठकर बोले, "लो लाला जरा तेजी के साथ अब मन भर जलेबियाँ तो उतार डालो। और हाँ, जरा मोटी-मोटी उतारना, जिससे बदनामी न हो। चाचा जी ने खास तौर पर यह बात कही है।"

"ऐसा ही होगा चौधरी साहब ! अभी तय्यारी करता हूँ। ठीक वक्त पर जलेबियाँ आपकी बैठक पर पहुंच जायेंगी।" लाला हलवाई ने कहा।

मोटी-मोटी जलेबियाँ बनवाने को बाबू अग्निदत्त ने नहीं कहा था। यह काम धर्मप्रकाश ने अपनी मक्कारी से किया। ऊपर से तो वह चाचा जी-चाची जी करता था लेकिन अन्दर से वह चाचा जी को भी किसी दिन आकर उससे अपना हिस्सा माँगने वाला दुश्मन समझता था। बाबू जी की शान सरावे में जमे, इसे वह बरदाश्त नहीं कर सकता था। उसके दिल में भी एक जलन थी।

धर्मप्रकाश ने एक ओर तो हलवाई को मोटी-मोटी जलेबियाँ बनाने का हुक्म दिया और दूसरी ओर वह फकीरों में को निकलता हुआ उनके दगड़े में खेलते फिरने वाले बच्चों को कहता गया, "अबे यहाँ क्या अपनी ऐसी-तैसी करा रहे हो। जाओ वहाँ हमारी बैठक पर मिठाई तकसीम हो रही है ले आओ !"

इतना चुटखला छोड़कर स्वयं लगन की रस्म में हिस्सा लेने के लिए बैठक पर चाचा जी के पास आ पहुंचा और संजीदगी के साथ बोला, "सब इन्तजाम ठीक कर दिया है चाचाजी ! ठीक समय पर जलेबियाँ यहाँ आ जायेंगी।"

जलेबियाँ ठीक समय पर आईं, परन्तु उन्हें देखते ही अग्निदत्त की

स्त्री के तन-बदन में आग लगगई। वह तुनक कर बाबू अग्निदत्त से बोली, "तुम्हारे तो सब काम ऐसे ही होते हैं। ये मोटी-मोटी जलेबियाँ बनवाने को किसने कहा था? इन्हें अब किस-किस की नाक पर रखोगे?"

तब बाबू अग्निदत्त को चौधरी धर्मप्रकाश की मक्कारी का भान हुआ और उन्होंने अपनी स्त्री को खामोश हो जाने का संकेत किया।

जलेबियाँ तकसीम होने के समय तो और भी रौनक आगई। सब फकीरों के बच्चे बैठक के बाहर आकर इकट्ठे हो गये और धर्मप्रकाश ने जलेबियों का थाल लेकर जलेबियाँ तकसीम करनी शुरु कर दीं।

"यह क्या कर रहे हो धर्मप्रकाश!" अग्निदत्त ने थाल उसके हाथों में से लेते हुए कहा। "यहाँ मैं लड़के की शादी करने आया हूँ, कोई खैरात-खाना खोलने का इरादा नहीं है इस समय।" और इतना कहकर उन्होंने अपने चन्द आदमियों को, जो उनके लड़के के मित्रों में से थे, मिठाई तकसीम करने का काम सुपुर्द कर दिया।

मुंशी चतुरसिंह ने जिस दिन बारात जाने वाली थी, उससे पहिली रात को अग्निदत्त को सूचना दी कि उनके समधी महोदय ने मेरठ में उनके पास पैगाम भेजा था कि बारात सुबह सात बजे उनके गाँव में पहुंच जानी चाहिये और दोपहर के खाने का प्रबन्ध वहीं पर होगा।

"यह सूचना आप मुझे अब दे रहे हैं भाई साहब! मोटरें कल सुबह आठ बजे आयेंगी। उससे पूर्व तो चलना हो ही नहीं सकता। "बाबू अग्नि-दत्त ने कहा।

"हाँ भूल ही गया था मैं तो। अब यकायक ध्यान आ गया उस बात का?" जरा गम्भीर मुद्रा में मुंशी चतुरसिंह बोले।

परिवार की इस पीढ़ी की अंतिम शादी में घर का हर आदमी सम्मिलित था, केवल ज्ञानव्रत अफ्रीका गया हुआ था। मनों से सब एक दूसरे से कोसों दूर थे, परन्तु शरीर आकर एक स्थान पर अवश्य एकत्रित हो गये थे।

शादी में बाबू अग्निदत्त ने दो बड़ी लारियाँ और दो मोटर कारें

की थीं और एक रौब के साथ वह अपने लड़के की बारात लेकर गये थे। इस बारात की भी उस देहात में एक खूबी थी कि इसमें निन्यानवें फीसदी आदमी तालीमयाफ्ता थे; कोई गंवारु बारात नहीं थी।

बाबू अग्निदत्त के मित्र थे बारात में और उनके लड़के के भी साथी थे। इनके अलावा कुछ रिश्तेदार तथा चन्द गाँव-बिरादरी के आदमी थे।

बारात निहायत खूबी के साथ गई और वहाँ का प्रबन्ध भी बहुत अच्छा था। बाबू अग्निदत्त के समधी महोदय अपने इलाके के माने हुए चौधरी थे और उन्होंने जो बारात के खाने का प्रबन्ध किया था वह एक दम शहरी किस्म का था। साथ में खूबी यह थी कि बनावटी घी का इस्तेमाल नाम-मात्र के लिए भी नहीं किया गया था।

शादी का लेन-देन भी ऊँचे दर्जे का था, जिसे देखकर मुंशी चतुरसिंह को कहना ही पड़ा, "हमारे बच्चों की जितनी भी शादियाँ हुई हैं, उनमें यह सबसे अच्छी रही।"

धूम-धाम के साथ शादी होकर आई और बाबू अग्निदत्त अपनी पुत्र-वधू को अपने उसी पुराने मकान में लेकर आये।

बाबू अग्निदत्त के लड़के की बहू की मुंह-दिखाई की रस्म में मुंशी चतुरसिंह की स्त्री क्या देती है, यह देखना चाहती थी बाबू अग्निदत्त की स्त्री। वह आईं और दस रुपये का एक नोट देकर छुट्टी पाली। बाबू अग्निदत्त की स्त्री ने वह भी मुस्कुराते हुए ही देखा।

चार-पाँच दिन के अन्दर ही उन्होंने बहू को वापस भेज दिया, क्योंकि सब सामान तो वह सहारनपुर से ही करके लाये थे।

बहू के इतने शीघ्र चले जाने को तमाम गाँव ने आश्चर्य के साथ देखा और गाँव भर पर बाबू अग्निदत्त की छाप बैठ गई।

बहू को बेटे की ससुराल पहुंचा कर ज्यों ही बाबू अग्दित्त सरावे लौटे, त्यों ही उन्होंने सरावे से कूच कर दिया।

चलते समय, वह जो कुछ सामान लाये थे, वह सब भी धर्म-

प्रकाश को दे चले और उन्होंने न तो हवेली पर ही कब्ज़ा करने का प्रयत्न किया और न इस टूटे-फूटे ढुण्ड पर ही, जिसकी लिपाई-ल्हिसाई कराके उन्होंने इसे चन्द दिन के बसेरे के काबिल बनाया था।

चलते समय भी बाबू अग्निदत्त ने स्टेशन तक जाने को बैल-ताँगे के लिए न तो धर्मप्रकाश की ही राह देखी और न मुंशी चतुरसिंह के ही बच्चों का मुँह ताका। उनके मकान के पास ही मियाँ करीमखाँ रहते थे। यह बेचारे एक दो ख़ेत बो लेते थे और जब बुवाई नहीं होती थी तो किराये पर ताँगा जोत लेते थे। उन्हीं के ताँगे पर बैठकर एक दिन बाबू अग्निदत्त, उनका लड़का और उनकी स्त्री सरावे से इस प्रकार चले आये, मानो उनका उस कस्बे से केवल उतना ही सम्बन्ध था।

उनके चलते समय घर के सभी लोग उनसे मिले। बातचीत के दौरान में बाबू अग्निदत्त ने कहीं पर भी मनोमालिन्य को नहीं आने दिया, मानो जो कुछ भी उनके साथ बर्ताव हुआ, वह उसके ही योग्य थे।

: ३० :

मुंशी चतुरसिंह की यह मेरठ की तीसरी नौकरी भी उनका अधिक दिन साथ न दे सकी। कहाँ एक मिडिल स्कूल के वह हैडमास्टर थे, जहाँ लड़कों को भेड़-बकरियों की तरह डंडे के जोर से विद्यार्थी बनाया जाता था और कहाँ फिर आर्य-कन्या-पाठशाला में लड़कियों को पढ़ाने का काम संभाला, परन्तु वहाँ कोमलता थी और स्वामी दयानन्द की पुण्य-स्मृति में यह कार्य हो रहा था और कहाँ अब आ फँसे ऐसे बोर्डिंग हाऊस की क्लर्की में कि जहाँ कालेज के विद्यार्थी रहते थे। यदि मुंशी चतुरसिंह का वश चलता तो वह मिडिल स्कूल की तरह यहाँ भी 'जय जगदीश हरे' की प्रार्थना और 'संध्या-हवन' विद्यार्थियों को करना अनिवार्य कर देते परन्तु यहाँ यह वश उनका न चल सका। उन्हें यह युवक-समुदाय अपनी धार्मिकता से अलग छिटका हुआ दिखलाई दिया और यह देखकर भी

उन्हें खेद होता था कि जो विद्यार्थी वहाँ रहते थे उनमें से अधिकांश को कर्मपरायणता छू तक नहीं गई जी।

इसी बात को लेकर बोर्डिंग के सुपरिनटेन्डेन्ट महोदय से, जो कि एम० ए० होने पर भी सादगी में इनके कान काटते थे, मुंशी चतुरसिंह से बातें होतीं, "प्रोफेसर साहब! जमाना बदलता जा रहा है। इस जमाने के बच्चों के दिलों से ईश्वर की भावना लुप्त होती जा रही है। एक हम लोगों के बच्चे हैं जो संध्या-हवन करते हैं और वलिवैश्य के बिना अन्न ग्रहण नहीं करते और एक ये आपके बोर्डिंग के विद्यार्थी हैं, कि जो ईश्वर को गालियाँ फटकारते हैं।"

प्रोफेसर साहब स्वप्न-से इस प्रकार जागते मानो ट्रिगनोमेट्री का कोई प्रश्न हल करने में ध्यान-मग्न थे और किसी ने अचानक ही बीच में उनका स्वप्न तोड़ दिया। प्रोफेसर साहब गणित के प्रोफेसर थे मेरठ कालेज में, निहायत सीधे और योग्य। बनारस यूनीवर्सिटी के फर्स्ट-क्लास फर्स्ट थे (प्रथम श्रेणी में भी प्रथम)। उनका दिमाग चौबीसों घंटे गणित की प्रोबलमों में उलझा रहता था। न कपड़ों की चिंता रहती थी न कार्य-क्रम की, परन्तु आस्था के रूप में आप पूर्ण धार्मिक थे।

बोले "क्या कहा, मुंशी जी! आज के बच्चे अधार्मिक होते जा रहे हैं, यही मतलब है न आपका।"

"जी, बिलकुल यही बात है। ये लोग यहाँ पढ़ते क्या हैं, घर वालों का पैसा बर्बाद करते हैं।" बात का रुख धार्मिकता से, आर्थिकता की ओर मुंशी चतुरसिंह का आप-से-आप घूम जाता था। वह फिर कहना शुरू करते, "ये बच्चे अपनी जिंदगियों में जबरदस्त आवारा बनेंगे। रात को बारह-बारह एक-एक बजे बोर्डिंग की दीवारें फाँदकर सिनेमा से आने वाले लड़के क्या तालीम पा सकते हैं?"

बोर्डिंग के लड़कों की इन हरकतों को रोकने के लिए कांटेदार तार भी लगवाये गये, परन्तु उनकी हरकतें न रुक सकीं और इस सख्ती के

कारण मुंशी चतुरसिंह तथा प्रोफेसर साहब बोर्डिंग के बच्चों में दो शैतानों की तरह देखे जाने लगे।

बोर्डिंग के बच्चे जिस काम को स्वतंत्रतापूर्वक करते थे और उनके मन में पाप या मालिन्य नहीं होता था, वही काम अब उन्हें छिपकर करना होता था। इन बंदिशों ने ही उन बच्चों को बदमाश और आवारा बना दिया था।

मुंशी चतुरसिंह की अवस्था काफी हो गई थी। लगभग सत्तर वर्ष वह इस जिंदगी के पूरे कर चुके थे। दूसरे वहाँ का वातावरण भी अब इनके खिलाफ हो चुका था। इनके मित्र प्रोफेसर साहब बोर्डिंग की सुपरिटेन्डेन्टी से जा चुके थे और नये सुपरिनटेन्डेन्ट महोदय एक प्रगतिशील व्यक्ति थे, जो बोर्डिंग के लड़कों में हिल-मिल कर रहना अपना जीवन समझते थे।

दिलचस्प किस्म के आदमी थे। धर्म के नाम पर वह हिन्दू-मात्र थे, बस यही वह जानते थे। कर्मकाण्ड का चक्कर उन्हें धोखेबाजी और मक्कारी का जाल दिखलाई देता था। जिस किसी आदमी को भी वह इन कामों में फंसा देखते थे, तो तुरन्त उनके मन में आता था कि वह महाशय अवश्य ढोंगी और पौंगा-पंथी हैं। इनके जीवन में अवश्य बहुत बड़ी-बड़ी खंदकें हैं और उन खंदकों को पाटने के लिए ही वह ये कर्मकाण्ड का जाल रचकर दुनियाँ को धोखा देना चाहते हैं।

मुंशी चतुरसिंह की उनके साथ पटरी न बैठ सकी और वह यहाँ से अब सीधे सरावे, अपने गाँव में, ही चले आये। अब नौकरी करने की उनकी अवस्था भी नहीं रही थी। जवानी रौब और हकूमत से काटने के बाद बुढ़ापे में ये घिस-घिस की छोटी नौकरियाँ मुंशी चतुरसिंह को परिवार का पेट आटने के लिए करनी पड़ी थीं। उनकी शरमिंदगी ने उनके जीवन के बड़प्पन को नष्ट कर दिया था और रामप्रकाश के मुकदमा जीतजाने ने तो उनकी इज्जत ही किरकिरी कर दी थी। अब मुंशी जी सरावे की उस हवेली में आ चुके थे, जिसमें बैठकर वह एक दिन

अपनी बिरादरी के सबसे बड़े इन्सान बन जाना चाहते थे।

घर के विषय में अब वह किसी से कुछ बात नहीं कर सकते थे। उनके जो भी पुराने परिचित मिलते थे, और यदि वे इनके परिवार की स्थिति से परिचित होते थे, तो उन्हें देखकर मुंशी जी को स्वयं शर्म से गड़ जाना होता था। चन्द उन्हें मूर्ख बनाने वाले तथा उनके परिवार को और अधिक कशीदगी तथा मुकदमे बाजी की दलदल में फंसा देने वाले उनसे आकर कहते थे, "मुंशी जी आपके साथ आपके भाई भतीजों ने बड़ा जबरदस्त अन्याय किया है। आपने मर-पच कर जिन भाई-भतीजों को पाला और परवरिश की और खाने-कमाने लायक बना दिया, वे ही आपके सामने दुश्मन बन कर आये। आज के जमाने में सच जानिये मुंशी जी! बाहर के लोग तो अपने हो सकते हैं, लेकिन घर के अपने नहीं हो सकते।"

मुंशी जी का सिर डोल जाता उसकी सहानुभूति पर। कुछ लोग ऐसे भी दबंग और परिवार के हितैषी आते जो मुंशी चतुरसिंह से स्पष्ट कह देते, "मुंशी जी! हम आपका आदर करते हैं, लेकिन आपने जो यह काम किया कि भाइयों को बराबर के हिस्से से महरूम रखने की कोशिश की, यह आपने न्याय नहीं किया।"

उस पर मुंशी जी रो-धो कर बरस पड़ते और कभी-कभी तो उनका क्रोध भी उभर आता। उस साफ बात कहने वाले को अपना पल्ला छुड़ाना मुश्किल हो जाता। मुंशी जी अकड़ कर कहते, "आपकी राय का मैं कायल हूँ, लेकिन जरा जो रुपया मैंने इस परिवार की नीव में दफनाया है उसका तो हिसाब चुकता करा दीजिये। बिरादरी में मेरी नामवरी से जो यह परिवार ऊपर को उठा है, उसकी भी कुछ कीमत है महाशय! आप ही बिचौलिये बन जाइये और हिसाब-किताब करा दीजिये।"

अब ये बिचौलिये महोदय सोचते कि चलो अच्छा ही है यदि यह परिवार आपस में टकराने से बच जाय। वह उसी समय रामप्रकाश के पास जाते और मुंशी चतुरसिंह का संदेश उसे सुनाते, तो वह उन महाशय

जी को एक महामूर्ख की हैसियत से देखता और कहता, "अब चाहते हैं ताऊजी फैसला करना? अब जायदाद का बारहवाँ हिस्सा देने की तो बात नहीं करते हैं ना! और कुछ रुपये पैसे की बात यदि उन्होंने कही हो तो वह हमारे पास है नहीं भय्या! यूँही यदि फैसला हो, तो हमें कोई ऐतराज नहीं है।"

वह महाशय बाबू अग्निदत्त से मिलते तो बाबू अग्निदत्त उनसे पूरे दिल के साथ मिलते और घर के दोनों पहलुओं को उनके सामने रखकर बातें करते। बाबू अग्निदत्त को जायदाद में से कुछ भी नहीं मिला था, इस लिए यह बेचारे दबकर फैसला करने की भी बात सामने लाते। इसीलिए जब भी फैसले की बातें चलतीं तो तावान बाबू अग्निदत्त पर ही लादने की कोशिश की जाती।

तावान देना बाबू अग्निदत्त मंजूर नहीं करते थे। वह इस जमीन में आधे से भी अधिक रुपया दे चुके थे, जिसके ऊपर यह झगड़ा था और आधा रुपया देकर तिहाई हिस्सा माँग रहे थे। फिर तावान क्यों दें? बाबू अग्निदत्त को बिला जमीन रहकर सचाई के लिए जद्दोजहद करना पसंद था, परन्तु तावान भरना यह अपनी कमजोरी समझते थे। और यह उसके लिए किसी फैसले में तय्यार नहीं हुए। और लोग यदि तावान से अपनी चालाकियों की बदौलत बचना चाहते थे तो बाबू अग्निदत्त उसे अपना हक समझते थे। समझते और सब भी थे, परन्तु जब रुपया लेने की बात आती थी तो समझदारी को न जाने क्या हो जाता था।

उस समय केवल रुपया-ही-रुपया दिखलाई देता था चारों तरफ और आदमी पर से नजर हट जाती थी। इसी रुपये पर टिकी हुई मुंशी चतुरसिंह, हरकली, ध्यानव्रत, रामप्रकाश, धर्मप्रकाश और बाबू अग्निदत्त की नजरें वापस लौट जातीं। कोई फैसला नहीं होता और आपस की कशीदगी भी बढ़ती जाती। जो रहा-सहा पारस्परिक प्रेम-भाव था उसके भी अब लेने-के-देने पड़ते जा रहे थे।

इस तरह के फैसलों की न जाने कितनी बार बातें चलीं, लेकिन नतीजा सबका शून्य को ही चूमता नजर आया।

: ३१ :

मुंशी चतुरसिंह की पूजा, कर्मकाण्ड, सब उसी प्रकार चलते थे और वह अपने मन से जो कुछ भी कर रहे थे वह न्याय-संगत था। उनके रिश्तेदार, बाल-बच्चे उन्हें जो राय देते थे, उसी का पालन करना अब वह अपना कर्तव्य समझते थे। उनकी अपनी विचार-शक्ति बाल-बच्चों की विचारधारा में बह चुकी थी और उसका अस्तित्व मात्र भी नष्ट हो चुका था।

उनके बच्चे जो बोलते थे वे वेद-वाक्य थे, अटल थे और उनमें कोई परिवर्तन करने की शक्ति उनमें नहीं रह गई थी। मनुष्य के जीवन की ऊँचाई उनके नजदीक सिग्रेट न पीना, शराब न पीना, मांस न खाना, संध्या हवन करना और अपने बच्चों का कहना मानने तक ही सीमित हो गई थी। इसी दायिरे के अन्दर वह चल रहे थे। उनकी इच्छा इस समय एक बालक-जैसी ही थी, परन्तु अधिक उम्र के गुण कभी-कभी उनमें विकार उत्पन्न कर देते थे।

मुंशी चतुरसिंह का क्रोध आज भी उसी पैमाने पर था, जिस पैमाने पर कि वह अपने जवानी-काल में वर्तमान था ; लेकिन आज उस क्रोध को उतारने के लिए न तो मिडिल स्कूल के विद्यार्थी ही थे और न अपने बच्चे ही। जब कभी उन्हें क्रोध की गरमी आती थी तो उसे उन्हें अपने ऊपर ही उतारना पड़ता था। वह अपने ही बाल नोंचने लगते थे और अंड-बंड बहकना प्रारम्भ कर देते थे।

मुंशी जी का शरीर पुराना पड़ चुका था और अब काम करने की क्षमता भी उनमें कम रह गई थी। फिर सबसे बड़ी बात यह थी कि आजकल उन्हें वह खूराक भी नहीं मिल पाती थी जिसे खाकर उनका शरीर बना था। कभी-कभी वह आजकल भी सुबह-ही-सुबह मूँगरियाँ

घुमाते थे लेकिन उसकी थकान को शक्ति में बदलने वाले दूध-दही के न मिलने पर वह शरीर में उल्टी कमजोरी पैदा करती थी।

मुंशी चतुरसिंह अब स्थायी रूप से सरावे में ही आकर बस गये थे। अभी आये हुए अधिक दिन नहीं हुए थे कि उनके हाथों से ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के बच्चों की पिटाई होनी प्रारम्भ हो गई।

यह पिटाई, एक दोबार की तो, ध्यानव्रत तथा उसकी स्त्री ने बरदाश्त की, लेकिन जब इसका सिलसिला रोजाना में बदलने लगा तो एक दिन पिता-पुत्र की झड़प की नौबत आ गई और ध्यानव्रत ने साफ-साफ कहा, "पिताजी ! आप बच्चों को इतनी-बुरी तरह से न मारा करें। आपके मन में जो झुँझलाहट आपके भाई-भतीजों ने बेईमानी करके भर दी है, उसे आप इन बच्चों पर उतारना चाहते हैं ?"

ध्यानव्रत के ये शब्द मुंशीचतुरसिंह पर बिजली की तरह टूट कर गिरे। उनका तमाम शरीर और उसकी नस-नाड़ियाँ झंकृत हो उठीं। उनके क्रोध का पारावार नहीं था, परन्तु इस क्रोध में उन्होंने आज अपना मोटा सोटा लेकर ध्यानव्रत की खबर नहीं ली, वरन् अपने हाथों से अपनी ही बाल-उड़ी चाँद को पीटना प्रारम्भ कर दिया।

इतने में घर के अन्दर से हरकली और उसकी माता जी भी निकाल आईं। हरकली ने आगे बढ़कर पूछा, "क्या बात है पिताजी ! आप इस प्रकार की बातें करके हम लोगों की गाँव में हँसी उड़वाते हैं। इतने बुढ़ापे में भी आपका क्रोध, मैं देखती हूँ, वैसा ही बना हुआ है।"

"तो ठीक है। तुम सब मिलकर मेरा क्रोध झाड़ना चाहते हो, तो लो झाड़लो।" और इतना कह कर उन्होंने अपने पैर की सलेमशाही जूतियाँ दोनों हाथों से अपने सिर पर फटकारनी शुरू कर दीं।

यह देख कर हरकली की माता जी उन्हें रोकने के लिए आगे बढ़ना ही चाहती थीं कि हरकली ने कड़क कर कहा, "तुम वहीं खड़ी रहो माता जी ! पिताजी को जो करते हैं, करने दो। इनकी इन्हीं बातों ने तो हमें कहीं का नहीं छोड़ा। आखिर किस बात पर इतना क्रोध जता

रहे हैं, यह हमारी समझ में नहीं आता। आज तक जो नहीं कहा है, उसे आज कहती हूँ। आपने जो कुछ भी किया होगा, अपने भाई-भतीजों के लिए किया होगा, हम लोगों के लिए कुछ नहीं किया।" और इतना कह कर वह शेरनी के समान मस्तक पर सलवटें डाले सामने खड़ी रही।

मुंशी चतुरसिंह का उफान वहीं पर दब गया। उनके क्रोध की ज्वाला आज किसी अन्य को बिला जरा सा भी नुकसान पहुंचाये शांत हो गई और वह बड़बड़ाते हुए अपना सत्यार्थ प्रकाश बगल में दबाकर जंगल में कुए की तरफ चले गये।

हरकली ने जिंदगी का आज एक नया ही पहलू बदला। वह अब और अधिक मुंशी चतुरसिंह का झूठा बड़प्पन बरदाश्त नहीं कर सकती थी। आज इस घर की चलाने वाली हरकली थी और हरकली के घर के सामने इन्होंने आज अपने सिर पर जूलियाँ बरसा कर हरकली की नाक काट ली।

"ऐसे भी कहीं पिता होते हैं जो अपने बाल-बच्चों की इज्जत का खयाल ही न रखें, और यह भी न सोचें कि घर का खर्च हम लोग कैसी मुसीबत से चला रहे हैं।" मुंशी चतुरसिंह के जंगल की तरफ चले जाने पर हरकली ने कहा।

हरकली की माता जी वहाँ मौजूद थीं, ध्यानव्रत भी वहीं था और दोनों बहुएँ भी बैठक की खिड़की से सटी खड़ी थीं। हरकली फिर अपनी माता जी की तरफ देख कर रोती हुई पीछे कुर्सी पर बैठ गई और माथा ठोक कर बोली, "माता जी मुकदमे के हार जाने के सदमे नें पिता जी का दिमाग खराब कर दिया है।"

और वह गाँव की ना समझ औरत मान गई की हाँ वाकई ऐसा हो सकता है। फिर हरकली अपनी माता जी को अपने पिताजी की हर समय की पाबन्दियों से भी मुक्ति दिलाना चाहती थी। मुंशी चतुरसिंह की दिनचर्या सुबह से शुरू होकर संध्या तक चलती थी और उसका काम

करने के लिए उन्हें एक आदमी की आवश्यकता रहती थी। इस काम पर हरकली की माता जी की ड्यूटी थी। परन्तु हरकली को यह पसंद नहीं था।

हरकली की माता जी एक पूरे आदमी का काम कर सकती थीं। उनके काम से परिवार को खड़े रहने में योग मिल सकता था। ऐसे आदमी को वह मुंशी चतुरसिंह के व्यर्थ के क़र्म-काण्डी जीवन के लिए बलिदान नहीं कर सकती थी। वह उन्हें मुक्ति दिलाना चाहती थी और आज उसने कह भी दिया, "माता जी अब आप यह पिता जी के हवन-संध्या की छगन-मगन को छोड़ दीजिए। आज से फिर कभी आपको मैं इन कामों में फंसा हुआ न देखूं। पिताजी से आपतो कुछ होता है नहीं, और साथ में तुम्हें भी घेर कर बैठ जाते हैं। मैंने अकेली ने ही आप सब के लिए पिलने का ठेका नहीं ले लिया है।"

"जैसा तू कहेगी बेटी! मैं वही करूंगी।" हरकली की माता जी ने हरकली को प्यार से अपने शरीर के साथ चिपका कर उसका क्रोध शांत करते हुए कहा।

और वास्तव में आज से ही हरकली की माता जी ने अपने जीवन को अपने बच्चों की राह पर डाल दिया। समझ लिया कि अब इस परिवार की गाड़ी को चलाने वाला उसका पति नहीं है, उसके बच्चे हैं और वे अपने हित को उससे अधिक समझते हैं। पढ़े-लिखे हैं, विद्वान पुरुष की संतान हैं।

हरकली की माता जी, जिन्होंने हेडमास्ट्री के ठाट-बाट देखे थे, अब पूरी कर्मठता के साथ गृहस्थी को चलाने में जुट गईं। एक पूरे जवान आदमी का काम देने लगीं। वक्त-बे-वक्त कुट्टी काटना, घास खोदना, ढोरों को सानी करना, घेर में जानवरों के नीचे सफाई रखना, गोबर पाथना इत्यादि ये सभी काम वह करती थीं, लेकिन क्या मजाल जो घर की बहू-बेटी कभी इन कामों की तरफ जाकर भी फिरें। ऊँचे घर की शान को कायम रखने के लिए इस वृद्धा ने मरना माँड लिया

था और क्या ताक़त आ गई थी उनके शरीर में कि चौबीसों घंटे तैनात रहती थीं अपने काम पर।

मुंशी चतुरसिंह ने जब अपनी शादी की थी तो स्त्री को वह अपनी सेवा के लिए विवाह कर लाये थे। जवानी पहरे में उसने उनकी खिद-मत भी काफी की और सच बात यही थी कि उस जमाने में तो घर का हर इन्सान उनके सामने हल-हल काँपता था। लेकिन आज उनके कंप-कपी के जमाने में वे काँपने वाले भी सीना-सतर होकर सामने आते थे और ध्यान व्रत का तो अब गाँव में छाती उभार कर चलना उस कदर बाकी नहीं रह गया था जिस कदर वह मुंशी चतुरसिंह के सामने चलता था।

नित्य नई घटनाएँ घटती थीं आजकल मुंशी चतुरसिंह के साथ। उनका कोई विशेष उपयोग नहीं रह गया था अब इस परिवार के लिए। बूढ़े जनावरों को तो लोग-बाग कसाई को देकर दाम खड़े करलेते हैं और अंतिम समय तक इन्सान के लिए उसका उपयोग बना रहता है। परन्तु इन्सान स्वयं अपने आप वृद्ध काल में उपयोगी न रह कर उल्टा भार बन जाता है परिवार पर।

मुंशी चतुरसिंह का भार ढोना अब दूभर होता जा रहा था उनके परिवार वालों के लिए। घी-दूध की कमी में उनकी खूराक भी बढ़ गई थी और उनके खाये जाने वाले फुलकों को ध्यानव्रत की बहू गिन-गिन कर हरकली से कहती थी, "बीबी जी! अब तो पिताजी को जाने क्या हो गया है। पंद्रह-पंद्रह, फुलके एक साथ बैठ कर खा जाते हैं।"

"ज्यादा खाने की भी एक बीमारी होती है बहू! हो सकता है वही पिताजी को लग गई हो। यदि ऐसा हुआ है तो भगवान् ने हमारे साथ इस दशा में यह सबसे बड़ा अन्याय किया है।" हरकली कहती।

"तुम ही तो कहा करती थीं जीजी कि भगवान् बड़ा न्यायकारी है। अब तुम ही कहो कि उसका वह न्याय कहाँ चला गया? हम लोगों को तो भगवान् ने कहीं का भी नहीं छोड़ा।" लम्बी साँस लेकर ध्यानव्रत

की बहू कहती और ज्ञानव्रत की बहू भी पास में पीढ़ा सरका कर बैठ जाती।

"पिताजी की यह बीमारी तो हमें जिन्दा ही खाजायगी जीजी ! तुम्हारी तनखा से ही तो सारी गृहस्थी का काम चल रहा है। लाला जी ने मर-पच कर जो दाने उगाये थे वे सब जेठ जी की भट्टी में झुक गये। मैं तो कहती हूँ भगवान् हमारे नाज को वे लोग भी खाट-पड़कर ही खायें। जैसा उन्होंने हमारा और हमारे बाल-बच्चों का जी दुखाया है, वैसा भगवान् उनके सामने लाये।" रोते हुए ज्ञानव्रत की स्त्री ने कहा।

"जी भारी मत करो बहू ! जिस भगवान् ने यह दुःख दिया है, वही इसे ठीक भी करेगा। मैं कल अपनी ससुराल जा रही हूँ। देखती हूँ कि वे लोग मुझे रुपया कैसे नहीं देते हैं। अब की बार यदि न दिया तो पड़ौसियों के नाम अपनी जमीन का पट्टा कर आऊंगी। यह मैं अब अच्छी तरह देख चुकी हूँ कि भाई-भतीजों से तो पास-पड़ौसी ही अच्छे होते हैं। भतीजे तो वक्त पड़ने पर कटी उंगली पर पेशाब भी करना भी पसंद नहीं करते।" जरा उभर कर साहस के साथ हरकली ने कहा।

और सचमुच ही इस बार हरकली जब अपनी ससुराल से लौटी तो उसके पास दो सौ रुपये की रकम थी और दिल में गर्व था कि अब इस रकम को लगा कर वह अपने भाई-भतीजों के लिए एक नया स्वर्ग निर्माण करेगी।

हरकली ने सरावे से पाँच कोस की दूरी पर शहर हापुड़ में नौकरी की हुई थी और वहाँ स्टेशन के पास ही एक पुरानी अनाज की उजड़ी हुई मंडी में एक कोठरी किराये पर लेली थी।

हरकली ही इस समय इस परिवार का पालन-पोषण कर रही थी। पालन-पोषण ही नहीं, उसने अपने भाईयों के बच्चों की तालीम का भी अच्छा इन्तजाम कर लिया था और लड़के तथा लड़कियों को बराबर तालीम दिलाती जा रही थी। यहाँ तक कि उसने ध्यानव्रत की बहू को

भी शहर में लेजाकर तालीम दिलानी शुरू कर दी। तालीम पर उसका विशेष जोर था और यह समझती थी कि किसी दिन यही तालीम उन्हें फिर बुलन्दी परले जायगी।

सन् १९३९ का जमाना आगया और विश्व पर महायुद्ध के बादल मँडराने प्रारम्भ हो गये। मुंशी चतुरसिंह का बड़ा लड़का विदेश में पड़ा था। वहाँ वह जिस ख्वाब के लेकर गया था, भगवान् ने उसकी पूर्ति में सहयोग नहीं दिया। जो कुछ रुपया वह लेकर गया था वह भी वरबाद हो गया और अब वापस लौटने के लिए भी उसके पास रुपया नहीं था।

युद्ध की गर्मी बढ़ती जा रही थी और इधर मुंशी चतुरसिंह के परिवार पर भी उसका असर हो रहा था। घर का सबसे बड़ा कारकुन और अगली पीढ़ी का कर्णधार विदेश में मुसीबत भर रह था। आखिर किसी प्रकार एक दो गहनों को इधर-उधर करके ज्ञानव्रत के पास देश लौटने का किराया भेजा गया और उसे पाते ही ज्ञानव्रत इस फुर्ती के साथ वहाँ से लपका कि मानो बन्दरगाह पर ही खड़ा वह उस रुपये के आने की बाट देख रहा था।

पूरे पाँच वर्ष बाद वह विदेश से लौट रहा था; परन्तु कोई विशेष प्रसन्नता का वातावरण नहीं था घर में। ज्ञानव्रत जिस सूट को यहाँ से प न कर गया था, वही सूट था शरीर पर और सिर पर भी वही फेल्ट हैट था जिसे लगा कर वह दिल्ली के चाँदनी चौक में अपनी बूआ के बेटे की दुकान से निकलते हुए बोला था, "यहाँ के मामलात सब ठीक कर चला हूँ। और यह तो चलता ही जायगा। अब जरा विदेश से धन कमा कर लाना है और फिर उसे लेकर जो सरावे में बैठूगा तो क्या मजाल होगी किसी की, जो नजर भर कर भी मेरी तरफ देख जाये। मेरा असली दबदबा तब ही तो बैठेगा।"

लेकिन यह ठाट-बाट अब पुराना था और किसी क्लीनर के यहाँ से सफाई कराये भी वर्षों गुजर चुके थे।

ज्ञानव्रत घर पर आया, तो उसने हवेली की दशा देखी। हवेली की

दशा ज्ञानव्रत के सूट की दशा से मेल खा रही थी। ऊपर के चौबारे की दीवारों में जो तरेड़ें आ गई थीं उनकी मरम्मत भी नहीं हुई थी। बैठक का फर्श उखड़ा पड़ा था और फरनीचर पर तो मानो कई साल से झाड़न भी नहीं मारा गया था। एक-एक अंगुल रेत जम रहा था खूँटियों पर भी। खूंटी अपने हाथ से साफ करके ज्ञानव्रत को उस पर कपड़े टाँगने पड़े।

जिन समय ज्ञानव्रत घर में दाखिल हुआ तो हरकली की माता जी और हरकली ने भी उसे सीने से लगाया, दोनों बहुएँ भी अन्दर बराँडे में खड़ी ज्ञानव्रत का अन्दर आना देख रही थीं और ज्ञानव्रत की स्त्री की तो प्रसन्नता ही अपार थी। उसका विदेश गया हुआ सुहाग पाँच वर्ष में लौटा था। उम्र अधेड़ होने पर भी आज जवानी के आसार मुख-मण्डल पर झलक आये थे। उसके नयनों से स्नेह छलक रहा था।

सब से मिल कर ज्ञानव्रत अन्दर कमरे में गया, जहाँ उसकी स्त्री खड़ी इन्तजार कर रही थी। अन्दर जाकर उसने अपनी स्त्री की ठोड़ी पकड़ कर मुख-मंडल को ऊपर उठाते हुए अपना प्रेम-चुम्बन प्रदान किया और एक क्षण के लिए उसे सीने से लगा कर पाँच वर्ष की पुरानी बिछुड़न को समाप्त कर दिया।

ज्ञानव्रत सरावे में आया तो यहाँ भी परिवार की दशा खराब थी। पहले एक बार उसने इधर-उधर नौकरी की टिप्पस लगानी चाही और कुछ सफलता भी मिली, लेकिन बाद में वह सिलसिला भी परिवार को चलाने में नाकाफी ठहरा। ज्ञानव्रत ने फिर अपना ध्यान खेती की तरफ लगाया, परन्तु वहाँ भी कुछ आमदनी बढ़ती नजर नहीं आई। इसके बाद ज्ञानव्रत ने अपनी छोटी बहिन के पति के साथ भी दुकान-दारी करने की बात सोची और दिल्ली सदर-बाजार में लोहे के सामान की दूकान खोली।

पूँजी की कमी में यह दूकानदारी भी बन्द कर देनी पड़ी और फिर ध्यान सरावे की खेती की ही तरफ करना पड़ा।

अफ्रीका से ज्ञानव्रत कुछ कमाकर तो लाया नहीं था, लेकिन फिर भी उसकी बातें इतनी जोरदार थीं कि वह परिवार का संचालक बन गया। अन्दर से हरकली सब कुछ करती थी और बाहर से करने वाला ज्ञानव्रत था। ध्यानव्रत बड़े भाई और बहिन के सामने गुम-मथान था। एक शब्द भी बोलने की उसे क्या पड़ी थी।

ध्यानव्रत की स्त्री ज्ञानव्रत की छोटी साली थी और उसका मुँह भी वह ध्यानव्रत की शादी से पूर्व हमेशा ही देखा करता था। उसे खाना भी हमेशा ससुराल में वही खिलाती थी। इस लिए ज्ञानव्रत से परदा करने की उसे कोई जरूरत नहीं थी। अब घर में दोनों बहुएँ बिना पर्दा स्वतंत्रता पूर्वक रह रही थीं और हरकली को विदेश से लौटे ज्ञानव्रत ने इतना तरक्की-पसंद बना लिया था कि वह उसमें कोई ऐतराज न कर सके।

हरकली ने ज्ञानव्रत को सरावे में आते ही यहाँ की स्थिति का पूरा ज्ञान करा दिया और कह दिया था कि अब पिताजी को साफ-साफ कह देना चाहिए कि वह जमीन-जायदाद तथा घर-बार के कामलों में बिलकुल न बोला करें। चाचा जी वगैरा यदि कोई आये भी तो वह उनसे साफ-साफ कहदें कि इन मामलों के बारे में आप बच्चों से बातें करलें।

और आज संध्या को ज्ञानव्रत ने अपने पिता जी के सामने पड़ते हुए कहा :

"घर के मामलों को मैं देखता हूँ कि जहाँ छोड़कर गया था, उनमें और खराबियाँ आ गई हैं। हमारी गाँव में स्थिति अब बहुत नाजुक हो गई है। आपने भाइयों के चक्कर में आकर हम लोगों को तो बर्वाद ही कर दिया। लेकिन अब महरबानी करके आप इतना तो करें कि इन लोगों से बातें करना बन्द कर दें। अगर कोई फैसले की बात उन्हें करनी है तो वे हमारे पास आकर करें। हम देखते हैं कि हमारे साथ उनकी चख-बाजी कैसे चलती है।"

मुंशी चतुरसिंह को, इसे मान लेने में कोई ऐतराज नहीं था। वह इस समय सन्यास-आश्रम की तरफ जा रहे थे। इसलिए जितना भी भार

उनके सिर से उतर रहा था, उसे वह बखुशी उतारने में कोई पशोपेश नहीं करते थे।

बाबू अग्निदत्त की स्थिति आजकल घर के मामले में सबसे अधिक खराब थी। लेकिन वैसे उन्हें पाँच-सात हजार रुपया प्रोवीडेंटफंड का मिलना था। इससे उनकी स्थिति भी ठीक थी। उनका लड़का एम० ए० में पढ़ रहा था और उन्हें बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं अपने लड़के से।

ज्ञानव्रत ने अब इधर-उधर भी हाथ-पाँव फैलाने की कोशिश की, परन्तु कामयाबी उसे किसी भी काम में न मिल सकी। गाँव में रहकर उसने भी ध्यानव्रत वाला महाशय टाइप ही अपना बना लिया और खद्दर के कुर्तों में ही वर्तमान युग की प्रगति उसे दिखाई दी।

साग-सब्जियों की खेती कराई और फिर उसे हापुड़ की मंडी में भिजवाकर अपनी आय बढ़ाने का प्रयास किया। वह खूब मन लगा कर अब मेहनत कर रहा था। सोने चाँदी की कान, तथा दस बटा बारह जायदाद पाने के ख्वाब अब बाकी नहीं थे, परन्तु आधी से अधिक जमीन उसके कब्जे में थी। उसमें से एक खूड़ भी वह चचा अग्निदत्त को देने के लिए तय्यार नहीं था।

काम ज्ञानव्रत का गो छोटा ही था लेकिन उसके कुलाबों में कोई कमी नहीं थी। उसके नाक, कान, आँख और जबान तथा हाथ और उंगलियाँ सभी काम करते रहते थे। आसमान के कुलाबे मिलना उसने नहीं छोड़ा था और उसके इन्हीं कुलाबों में आकर ध्यानव्रत की वफादारी फिर गहरी होनी शुरू हो गई थी।

मुंशी चतुरसिंह को अब बच्चों को पढ़ाने का काम सुपुर्द किया गया था और साथ में ताकीद कर दी गई थी, "पिताजी यह ध्यान रखिये आप कि बच्चों को मारा-पीटा बिलकुल न जाय। ये कितने कोमल होते हैं और आपकी मार कितनी सख्त होती है, दोनों का मुझे तजुरबा है।"

मुंशी चतुरसिंह उस समय तो सिद्धान्त रूप में उन बातों को मान लेते, लेकिन बच्चे उनके पास ऊधम मचाते तो उन्हें वह जरा भी

बरदाश्त नहीं होता। पढ़ाई का वातावरण बनाना वह जानते थे, लेकिन आज इन पोतों को पढ़ाने में वह असमर्थ थे। बच्चे भी अपने बाबा और उनकी कमजोरियों से परिचित हो गये थे और वे उनकी चुगली अपनी माओं से करते थे। इस प्रकार वे बातें होम-गवर्नमेन्ट द्वारा ज्ञानव्रत के कानों तक पहुंचती थीं। ज्ञानव्रत की साली ज्ञानव्रत से कहती थी, "पिताजी को तो जाने क्या हो गया है। नाहक इन मुलायम-मुलायम बच्चों की खालें उधेड़ने के लिए पिल पड़ते हैं। बच्चों के पीछे ऐसे दौड़ते हैं जैसे चूहे के ऊपर बिल्ली झपट्टा मारती है। कहीं यह भी बच्चों को पढ़ाने का कोई तरीका है।"

और ज्ञातव्रत को वाकई शर्म आती अपने पिता जी के इस व्यवहार पर। वह गर्दन नीची करके कह देता, "समझा देंगे पिताजी को।"

"समझाने की बात नहीं है कुछ, वह तो यह चाहते हैं कि बच्चे भी उन्हीं की तरह हर समय मुंह पर ताला देकर अंदर-ही-अंदर गायत्री का जाप करने लगें। भला कहीं यह बच्चों से हुआ भी है?" जरा मुस्कुराते हुए ध्यानव्रत की स्त्री ने अपने जीजा जी से चुटखी ली।

लजाकर ज्ञानव्रत जी बोले, "पिताजी की आदत पुरानी ही है और उनका बच्चों के पालन-पोषण करने का नजरिया भी वही पुराना है। उन्हें यह गलत मालूम देता है कि बच्चे बिला डंडे के भी पढ़-लिख सकते हैं। मेरी तो कई हड्डियाँ आज तक चसकती हैं बरसात में उन मारों की वजह से जो मुझे उनके हाथों खानी पड़ी थीं।" स्थिति को जरा और गम्भीर बनाते हुए ज्ञानव्रत कहता।

लेकिन आज जिस हादसे की सूचना ज्ञानव्रत को रात्रि में पलंग पर लेटने के पश्चात् दूध का गिलास हाथ में देते हुए उसकी साली ने दी, वह बहुत ही विचित्र थी और उसके सुनते ही ज्ञानव्रत का पारा तेज हो गया। वह अपने को संभाल ही न सका और उसी समय नीचे जाकर बैठक के सामने अपने पिताजी पर बरसता हुआ बोला, "अब तो ऐसा मालूम होता है कि आपके अन्दर फिर से जवानी जोश मारने लगी है।"

मुंशी चतुरसिंह नहीं समझे ज्ञानव्रत के इस व्यंग्य-वाक्य को और कसाई के सामने काँपते हुए बूढ़े बैल की तरह थरथराकर बोले, "क्या मतलब है तुम्हारा ज्ञानव्रत ! मैं तो समझ ही नहीं सका।"

"अब आप क्यों समझने लगे हैं। ध्यानव्रत की बहू को अपने सामने घूंघट उतार कर मुंह खोले फिरने का आदेश जो दिया है आपने।"

मुंशी चतुरसिंह जड़वत रह गये यह सुनकर एक क्षण के लिए और फिर क्रोध में बलबला कर बोले, "तुम जैसे चाहो रहो, मैं घर पर रहना ही छोड़ देता हूँ। अगर वह ठोकर खाती और मुंह के बल गिरकर दाँत तुड़वा लेती तो घूंघट का पता चल जाता।"

"लेकिन यह उसके सोचने की बात थी, आपके सोचने की नहीं। मुँह के या पेट के बल गिरती तो चोट उसके आती, आपके नहीं।" ज्ञान व्रत ने उसी सख्ती के साथ कहा।

वास्तव में बात यह थी कि मुंशी जी के घर रहने से बहुओं की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती थी और स्वतंत्रता सभी चाहते हैं।

मुंशी चतुरसिंह का बिस्तरा-बोरिया हवेली से बँधकर कुए के पास जंगल में पड़ी एक झोंपड़ी में पहुंच गया और यह एकांत स्थान सत्यार्थ-प्रकाश का अध्ययन करने के लिए था भी रमणीक। चारों तरफ ध्यानव्रत की खेती थी और बीच में बरगद के सायेदार वृक्ष के नीचे कुए से लगी हुई यह झोंपड़ी थी। आधुनिक युग का सन्यासी इस कुटिया में पहुंच गया।

लेकिन फिर भी मुंशी चतुरसिंह वहाँ जंगल में रहकर भी बात-बे-बात पर ज्ञानव्रत से उलझते रहते थे। ज्ञानव्रत ने अब अपनी माताजी का इधर खाना लेकर आना भी बन्द कर दिया था। यह खाना भी बच्चे ही यहाँ दे जाते थे। ज्ञानव्रत के खयाल से इस उम्र में मुंशी चतुरसिंह को अपनी स्त्री की जरूरत नहीं थी। लेकिन मुंशी चतुरसिंह इस अभाव के कारण अन्दर-ही-अन्दर परेशान थे।

हरकली की माताजी ने देखा कि अब पहलू पति की अपेक्षा बच्चों का मजबूत है तो उसने भी उनकी ही हाँ-में-हाँ मिलानी शुरु कर दी और अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर मुंशी चतुरसिंह के व्यवहार में जो झुंझलाहट आती जाती थी उसे उनका पागलपन समझना शुरु कर दिया।

एक दिन 'कमाई' खाने की बात सामने आ गई और मुंशी चतुरसिंह बोले, "मैं तुम लोगों की कमाई का एक दाना भी अपने मुंह में नहीं डालूंगा। मुझे काम बतलाओ मैं काम किये बिना खाना नहीं खा सकता।"

"तो लीजिये न काम! काम करने को कौन मना करता है।" अकड़ कर ज्ञानव्रत बोला। "अनाज के पैर पड़े हुए हैं। इन्हें बरसाने के लिए मजदूरों की जरूरत है। आप भी उनमें शामिल हो जाइये।"

"अच्छा!" और इतना कहकर ज्ञानव्रत ने क्या देखा कि उसके पिताजी ने कुए के पास एवं खेत में भैंसों-द्वारा बनाये गये एक कीचड़ के गढ्ढे में लेटना आरम्भ कर दिया। ज्ञानव्रत की समझ में ही नहीं आया कि आखिर इससे उनका क्या मतलब है।

मतलब स्पष्ट था कि दिमाग की गर्मी को वह पानी में लेटकर खत्म करना चाहते थे, परन्तु ऊपर से बोले, "जरा अपने को मजदूरों-जैसा तो बना लूं, तब काम पर लगूंगा।"

हरकली और ध्यानव्रत भी अब वहीं पर पहुंच चुके थे। यह काण्ड देखकर हरकली बोली, "यह क्या हो रहा है पिताजी?"

"पिताजी मजदूर बन रहे हैं। बिला मजदूरी किये अब ये हमारी कमाई का एक दाना भी मुंह में नहीं डालेंगे।" ज्ञानव्रत ने कहा।

"तो ठीक है, न डालें। इनसे कहता ही कौन है कि हमारी कमाई का अन्न खायें। लेकिन यह पागलपन अब और बरदाश्त नहीं हो सकता।" और पिताजी की तरफ मुखातिब होकर बोली, "आप सीधी तरह से इस चोड़े के अन्दर से बाहर निकल आयें वरना मैं ध्यानव्रत से कहूँगी कि वह तुम्हें ये हरकतें न करने दे और बरगद की जड़ों से

कस कर बाँध दे ।"

हरकली की यह गम्भीर वाणी सुनकर मुंशी चतुरसिंह थर्रा उठे और वह तुरन्त ही बिला मुँह से एक शब्द बोले कुए के पारछे में जाकर नहाने लगे ।

इस तरह की घटनाएँ भी अब मुंशी चतुरसिंह के जीवन में आईं और ये घटनाएँ रोज नया रूप धारण करने लगीं । वह तंग आते जा रहे थे अपने बच्चों के व्यवहारों से, परन्तु उनके अन्दर का मोह यही कहता कि आखिर ये लोग भी तो उनके ही सताये हुए हैं । वह अपने बच्चों के लिए कुछ भी न कर सके, इसका उनके दिल पर गहरा मलाल था और आज भी वह अपने बच्चों की बची-खुची सम्पत्ति को उनके पास कायम रखने के लिए हर प्रकार का बलिदान देने को तय्यार थे ।

: ३२ :

बाबू अग्निदत्त बेटे की शादी खूब धूम-धाम से करके अपनी नौकरी पर चले गये थे । एक वर्ष पश्चात् उन्होंने फिर सरावे में ही आकर अपने लड़के का गौना किया और गाँव पर दहेज का दिखावा करके यह जतला दिया कि यह ठीक है भाई साहब ने उन्हें जमीन नहीं दी है और भतीजे भी आपा-धापी करके उनके हिस्से को खा जाना चाहते हैं, लेकिन इन सब चीजों से उनके बड़प्पन में कोई कमी नहीं आई है । भगवान् का दिया उनके पास सब कुछ है और किसी के भी वह असरिया नहीं हैं ।

और लोग तो गाँव में अधिक-से-अधिक शादी में ही बहू को कार में लाये थे लेकिन बाबू अग्निदत्त का लड़का अपनी बहू को गौने में भी कार में ही लाया और लाकर उसने उसे फिर अपने उसी मकान पर उतारा जहाँ शादी को लेकर आया था ।

बाबू अग्निदत्त ने ये दो रस्में गाँव पर अपनी माली हालत का दब-दबा बिठलाने के लिए की थीं और उसका भरम गाँव भर के दिलों पर काफी गहरा पड़ा ।

मुंशी चतुरसिंह, रामप्रकाश, धर्मप्रकाश इत्यादि को रसमों के बतौर इस शादी में जो आमदनी होनी थी सो हो गई, परन्तु वे किसी अन्य प्रकार से बाबू अग्निदत्त का रुपया ऐंठने में कामयाब न हो सके।

बाबू अग्निदत्त भी अब पुराने फरमाबरदार और परिवार पर अपने कपड़े उतरवाने वाला भोला-भाला इन्सान नहीं रहा था। आज तक की कमाई से लुट-पिटकर उसने इतनी ही अक्ल सीखी थी कि अब वह किसी का विश्वास नहीं करेंगे।

इन्हीं दिनों बाबू अग्निदत्त का तबादला सहारनपुर से गाजियाबाद को हो गया। गाजियाबाद आ जाने पर बाबू अग्निदत्त अपने घर के निकट आ गये और अब उनके नौकरी से भी रिटायर होने में केवल सात वर्ष रह गये थे। उनके मस्तिष्क में भी यह चिंता सवार होनी शुरु हो गई थी कि आखिर नौकरी समाप्त होने पर कहाँ जाकर रहेंगे और जिन्दगी के आखरी दिन किस वसीले से कटेंगे। आखरी सहारा उन्हें भी गाँव की अपनी जमीन का ही दिखलाई देता था।

फिर वह अपना हक भी समझते थे अपनी जायदाद के लिए जद्दो-जहद करना। अपनी जायदाद अपनी मर्जी से वह किसी को दे सकते थे, लेकिन उनकी जायदाद को कोई बेईमानी से उनकी आँखों के सामने हड़प कर जाये, यह वह बरदाश्त नहीं कर सकते थे।

इस बार सरावे को चलते समय वह अपनी स्त्री से बोले, "देवी! लो यह आखरी बार अब भाई साहब के पास जा रहा हूँ इंसाफ के लिए। अगर इस बार भी उन्होंने अपनी वही टाल-मटोले की नीति अपनाई तो मै फिर कभी भविष्य में उनके पास इसलिए नहीं जाऊँगा कि आप मुझे मेरी जायदाद दे दें। फिर मुझे भी मजबूर होकर अदालत की ही शरण लेनी पड़ेगी।"

सरावे पहुंच कर बाबू अग्निदत्त ने गाँव के दो मौअजिज आदमियों को साथ लिया और उनके साथ अपने बड़े भाई मुंशी चतुरसिंह के पास पहुंचे। मुंशी चतुरसिंह कुए की पैड़ पर खाट बिछाये बैठे थे और

सत्यार्थप्रकाश पढ़ रहे थे। वह इस समय कहीं ब्रह्म से बातें कर रहे थे और न्याय, त्याग, कर्तव्य के शत्रु क्रोध, लोभ और मोह की पारस्परिक तुलना कर रहे थे। अनेकानेक दृष्टांत दिये जा रहे थे दोनों तरफ से। एक तरफ भगवान् स्वयं थे और दूसरी तरफ मुंशी चतुरसिंह। दोनों की मुस्कुरा-मुस्कुरा कर बातें हो रहीं थीं।

इसी समय बाबू अग्निदत्त ने आकर मुंशी चतुरसिंह की तपस्या भंग कर दी। वह इस समय दुनियाँ के झंझटों को ज्ञानव्रत और हरकली के कंधों पर डालकर धर्म-निष्ठा में लग गये थे। बाबू अग्निदत्त ने उन्हें वहाँ से उठाकर एक बार फिर दुनियाँ में लाने का प्रयास किया लेकिन वह उसके लिए तय्यार नहीं थे। वह अपना क्रियात्मक जीवन समाप्त कर चुके थे।

उनके पास पहुंचकर गाँव के ही आदमियों ने उनसे कहा, "मुंशीजी यह बाबू अग्निदत्त आये हैं और आप से प्रार्थना करते हैं कि आप इनके हिस्से की तिहाई जमीन इन्हें छोड़ दें।"

मुंशी चतुरसिंह ने इस पर साफ जवाब दे दिया। "मेरा अब जमीन के मामलों से कोई सरोकार नहीं रहा। इन्हें जो बातें करनी हैं वह बच्चों के करलें।"

'बाबू अग्निदत्त बातें बच्चों से कर लें' ये शब्द बाबू अग्निदत्त के कानों पर इतने जोर से लगे कि मानो दो जबरदस्त लुहारों ने बाबू अग्निदत्त के दो तरफ खड़े होकर दो धनों से एक साथ चोट लगाई हो। उनका सिर चकरा गया, परन्तु उन्होंने अपने को संभाला और मुस्कुराते हुए बोले, "आज मुझसे आपके बच्चे बातें करेंगे। जब खत्री का रुपया देना था तब तो ये बच्चे टट्टी फिरकर आबदस्त भी लेना नहीं जानते थे। उन दिनों इस घर की क्या दशा थी इसका अंदाज ये बच्चे नहीं लगा सकते, यह आप लगा सकते हैं।"

मुंशी जी चुप थे बाबू अग्निदत्त का यह वाक्य सुनकर, परन्तु वह लाचार थे और जो जवाब उन्होंने दिया था वह उसके अतिरिक्त और

कोई जवाब दे ही नहीं सकते थे क्योंकि वह तो उन्हें पिछले एक मास की ट्रेनिंग के पश्चात् हरकली और ज्ञानव्रत ने रटाया था। स्वतंत्र रूप से वह बाबू अग्निदत्त से एक शब्द भी नहीं बोल सकते थे।

मुंशी चतुरसिंह ने अपनी आँखें ऊपर उठाकर देखा तो बाबू अग्निदत्त के मुख पर उन्हें वे दिन मंडराते हुए नजर आये जब दोनों ने कदम-दर-कदम इस परिवार को ऊपर उठाया था। भाई की मोहोब्बत ने भी कुछ अन्दर से उभारा लिया और माँ-बाप की कुछ याद आई, परन्तु बच्चों की उनके चारों ओर डाली हुई जंजीर ने उनकी गर्दन को नीचे झुका दिया और उनकी आँखों में जिस स्थान पर बाबू अग्निदत्त उनके जीवन की उन पुरानी स्मृतियों को लेकर खड़े थे, उस पर हरकली और ज्ञानव्रत अपनी तेज नजरें दौड़ाते हुए आ पहुँचे।

गाँव के उन दोनों मौअजिज आदमियों को मुंशी चतुरसिंह का यह व्यवहार खटका, परन्तु कोई कानून तो था नहीं उनके हाथों में जो किसी को वे ठीक कर पाते। "चलो बच्चों से भी मिलते चलो बाबू अग्निदत्त! कल-कलाँ को यह बात कहने को न रह जाय कि आप यदि बच्चों से मिलते तो मामला वहीं समाप्त हो जाता।"

इच्छा न होने पर भी बाबू अग्निदत्त ने गाँव वालों का कहना न टाला। हरकली और ज्ञानव्रत दोनों मौजूद थे। बातें ज्ञानव्रत से ही हुईं परन्तु बाबू अग्निदत्त ने अपनी जबान से एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया। उन दोनों ही महाशयों ने ज्ञानव्रत से बातें कीं तो ज्ञानव्रत ने साफ जवाब दे दिया, "चाचा जी से आप फरमा दीजिये कि हमारे परिवार में जमीनें मुकदमे से ली जाती हैं। उन्हें यदि जमीन लेनी है तो अदालत में जाकर दरखास्त दें।"

बाबू अग्निदत्त दिल में ज्वाला लिए इस समय भी ऊपर से मुस्करा रहे थे। वह एक शब्द भी न बोले किसी से और गाजियाबाद आकर तुरन्त दावा करने का निश्चय कर लिया।

निश्चय ही नहीं दावा करके तुरन्त कमीशन भी जारी करा दिया।

कमीशन को सरावे में लेकर बाबू अग्निदत्त और उनका लड़का गये। उन्होंने जंगल में जाकर जो कमीशन को जमीन दिखलाने के लिए इशारा किया तो ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत दोनों लंगोटा कसे, हल-बैल छोड़कर कानों से भी ऊँची लाठियाँ उठाये, उस ओर दौड़े चले आये।

कमीशन भी घबराया कि भले काम में हाथ डाला। यहाँ तो जमीन क्या तकसीम होगी, सिर चिरते नजर आते हैं। लेकिन बाबू अग्निदत्त और उनके लड़कों के हाथों में पतली छड़ी भी नहीं थी। वे हँस रहे थे उन्हें इस प्रकार आते देखकर। ज्ञानव्रत अपने चचा से कमीशन के सामने बोला, "जमीन लेने के लिए आये हो चचा! वह पास में बहने वाला छोइया (बरसाती नाला) नहीं देखा है अभी। बाबू जी की खोपड़ियाँ किसी दिन उसी की धार में पड़ी सेन मारेंगी।"

बाबू अग्निदत्त मजाक में बोले, "हाँ-हाँ भय्या! मुझे तुमसे यही आशा है। लेकिन अभी तो गर्मी के दिन हैं और छोइया सूखा पड़ा है। जरा उसमें पानी तो आ जाने दो।"

कमीशन को भी हँसी आ गई बाबू जी के मजाक पर। कमीशन ने ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत को समझाया, "भाई ये कोई जबरदस्ती कब्जा तो करने आ नहीं रहे हैं तुम्हारी मिल्कियत पर। अदालत में मुकदमा दायर किया है। यदि इनका कुछ है ही नहीं तो तुम से बेचारे ले क्या लेंगे और अगर अदालत दिलायेगी तो तुम्हें झक मार कर देना होगा।"

कमीशन की इतनी बातें सुनकर ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के दिमाग के पढ़े-लिखे पहलू में जरा जागृति हुई। उन्हें कुछ शरमिंदगी-सी भी हुई अपने कारनामे पर, परन्तु बाबू अग्निदत्त पर अपनी शरमिंदगी जाहिर करना उन्होंने मुनासिब नहीं समझा।

बाबू अग्निदत्त के कमीशन ने जो अदालत को रिपोर्ट दी उसके मुताबिक ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत पर तौहीन-अदालत का मुकदमा चलाया गया और दूसरी तरफ जायदाद का भी मुकदमा चलता रहा।

जब रामप्रकाश ने अपने हिस्से के लिए मुकदमा दायर किया था तो

उससे बाबू अग्निदत्त ने मुंशी चतुरसिंह की हवेली और ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत के नाम की जमीनों को छुड़वा दिया था। लेकिन अब जो उन्होंने मुकदमा दायर किया, उसमें इन्हें भी शामिल कर लिया।

रामप्रकाश एक तरफ बैठा यह तमाशा देख रहा था, लेकिन अब तमाशे के दिन समाप्त हो चुके थे और नीचे से जमीन खिसकने की नौबत आ गई थी। यदि बाबू अग्निदत्त मुकदमा जीते और जमीन उन्हें मिली तो उसे भी कुछ जमीन तो छोड़नी ही होगी, क्योंकि अपने हिस्से से तो वह भी अधिक जोत-बो रहा था।

ऐसी हालत में धर्मप्रकाश और ज्ञानव्रत के परिवारों में कुछ प्रेम-भाव पैदा हो गया। दोनों फरीकों का आपस में आना-जाना हो गया और भाजी-बहाना भी चलने लगा। इससे भी और आगे बढ़कर मुकदमे में दोनों फरीकों ने मिलकर बाबू अग्निदत्त को हराने की कोशिश की।

तौहीन-अदालत के मुकदमे के अलावा बाबू अग्निदत्त ने ज्ञानव्रत के दाँत खट्टे करने के लिए एक फौजदारी इस्तगासा भी दायर कर दिया। ज्ञानव्रत की बातें बाबू अग्निदत्त के लड़के से अदालत की पहली ही पेशी में हुईं और उसने खेद प्रकट किया अपनी हरकतों पर। बाबू अग्निदत्त के लड़के ने बड़े भाई के इतना कहने भर को काफी समझा और फौज-दारी मुकदमा वहीं पर रोक दिया।

तौहीन-अदालत के मुकदमे में भी ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने अदालत में बाबू अग्निदत्त के पैर छूकर माफी माँग ली और बाबू अग्निदत्त ने अपने सगे भाई मुंशी चतुरसिंह की औलाद को चौधरी आभाराम के परिवार की इज्जत समझ कर माफ कर दिया। बाबू अग्निदत्त जानते थे कि यदि उन्होंने माफ नहीं किया तो अदालत अपनी तौहीन बरदाश्त नहीं करेगी और इन दोनों को छै-छै महीने के लिए जेल भेज देगी।

ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने अदालत के सामने चचा के पैर अवश्य छू लिये, लेकिन उनके दिलों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अदालत से

बाहर आते ही उन्होंने अपने गाँव के साथियों के बीच में बैठकर कहा, "वहाँ अदालत के सामने जरा पैर छू कर अगर जान बचाली तो इसका मतलब यह नहीं है कि हम इन महाशय को आसानी से सरावे में बस लेने देंगे।"

और उस दिन ध्यानव्रत ने रामप्रकाश से भी मीठी-मीठी बातों के दौरान में कहा, "भाई साहब ! आप जरा पुलिस को संभाल लेना और मैं सब काम ठीक कर दूँगा।"

इस पर राम प्रकाश ने अपनी अनुमति देते हुए ध्यानव्रत को शाबाशी दी, "तेरी ताकत को तो मैं मानता हूँ ध्यानव्रत !"

रामप्रकाश अदालत में गो बाबू अग्निदत्त की मुखालफत कर रहा था, परन्तु फिर भी उसके व्यवहार में ऊपरी चमक-दमक अवश्य थी। लेनिक मुंशी चतुरसिंह के परिवार ने तो ऊपरी सम्बन्धों में भी विकार उत्पन्न कर लिए थे।

बाबू अग्निदत्त अदालत से साफ मुकदमा जीत गये और मुंसिफ ने यहाँ से जो फैसला दिया वह अटल होगया। यह काम बाबू अग्निदत्त ने काफी तैड़-फैड़ के साथ कराया और अपनी पूरी शक्ति उन्होंने इसी काम पर लगा दी।

ज्ञानव्रत इन दिनों दुरंगी चालें चल रहा था। एक ओर तो वह रामप्रकाश से मिलकर बाबू अग्निदत्त के खिलाफ मुकदमा लड़ रहा था और दूसरी ओर बाबू अग्निदत्त के लड़के से भी बड़े प्रेम से मिलता था। बाबू अग्निदत्त का लड़का उसकी खातिर करता था और बड़े भाई की हैसियत से सम्मान भी। साथ ही उसे मिलकर परिवार को ऊपर उठाने की बातें भी सुझाता था। आधुनिकतम खेती के तरीकों को इस्तेमाल करने की बातें समझाता था।

ज्ञानव्रत सुनता था और उनसे लाभ उठाने की कोशिश भी करता था, परन्तु पूरे परिवार की बातें उसके दिमाग में नहीं जचती थीं और

इन्हें वह राजू की मूर्खता समझ कर एक कान से सुनता था और दूसरे से बाहर निकाल देता था।

एक दिन वह भी आ गया जब बाबू अग्निदत्त नौकरी से रिटायर हो गये और अब उन्हें यह सोचना था कि यहाँ से आखिर जायें तो कहाँ जायें। इस समय बाबू अग्निदत्त का कोई सलाहकार नहीं था। बाबू अग्निदत्त और उनकी स्त्री ने सरावे जाकर खेती कराने की ही बात मन में ठानी हुई थी।

एक बैलगाड़ी बाबू अग्निदत्त ने किराये पर ली और अपना सब सामान उस पर लाद कर दोनों प्राणी सरावे की तरफ चल दिये। सरावे में आज उन्हें अपने घर पर ठहरने के लिए कहने वाला कोई नहीं था। गाड़ी धर्मप्रकाश के मकान और चबूतरे के पास से गुजरी, लेकिन उसने गाड़ी रुकवाकर अपने चचा को घर में कदम रखने के लिए नहीं कहा। मुंशी चतुरसिंह की तो बात ही निराली थी। हवेली के रहने वाले इन खानाबदोश दो प्राणियों की खबर भला कैसे ले सकते थे।

सरावे में बाबू अग्निदत्त की बड़ी साली मौजूद थी। बाबू अग्निदत्त का रिश्ता अपनी छोटी बहिन से इन्ही ने कराया था। बाबू अग्निदत्त की गाड़ी सीधी जाकर उन्हीं के मकान पर रुकी। सामान उतार कर चौक में डाल दिया गया क्योंकि वह बेचारी भी एक गरीब बेवा मात्र ही थी और एक कोठे भर का उसका कुल मकान था।

बाबू अग्निदत्त ने मुकदमा जीत कर तुरन्त आबादी के मकानातों की तक्सीम दावर कर दी थी और कागजात अमीन के पास आ चुके थे। अमीन से बाबू अग्निदत्त ने जो कुरे लगवाये उनमें अपने पास परिवार का वह कदीमी मकान ही रखा जिसकी कि दो दीवारें पूरी तरह से गिर चुकी थीं और उधर से कुत्ते-बिल्ली की रोक-थाम के लिए कीकरों की ढाँकरें लगादी थीं। रामप्रकाश और धर्मप्रकाश के नाम वह घेर आया जिसमें कि उन्होंने एक ईमारत बनवा ली थी और मुंशी चतुरसिंह

की हवेली की तरफ बाबू अग्निदत्त ने आँख भरकर भी देखना पसंद नहीं किया।

तकसीम के लिए जब अमीन साहब सरावे पधारे तो बाबू अग्निदत्त ने उन्हें उसका इनाम मुँह माँगा दिया। बाबू अग्निदत्त बोले, "अमीन साहब अगर आप कहें तो पुलिस का इंतजाम कर लेते हैं। पुलिस का खर्चा मैं भरने के लिए तय्यार हूँ।"

"अरे चलोगे भी बाबू जी ! क्या बातें करते हो ?" रुपयों की गर्मी जेब में आते ही अमीन साहब मूँछों पर ताव देकर बोले, "पुलिस हमारे सामने वेचती क्या चीज है ? हमारे हाथ में अदालत का हुक्म होने पर तो बड़े-से-बड़े, और पहलवान-से-पहलवान का भी पेशाब निकलने लगता है। पुलिस लेकर एक मामूली से मकान का दखल दिलाने में हमारी तौहीन है।"

"तो आप जानें अमीन साहब ! हम लोग तो गाँव में अब आपके ही बसाये बसेंगे। हमारा गाँव में एक भी मददगार नहीं है। इस समय तो आप पर ही भरोसा है और होगा वही जो भगावान् को मंजूर है।" बाबू अग्निदत्त दीन भाव से बोले।

"आप लोग फिक्र न करें जरासा भी। देखिए किस खूबी के साथ आपको दखल दिलाता हूँ।"

घोड़े-तांगे में बैठकर अमीन साहब के साथ बाबू अग्निदत्त और राजू दो घंटे में सरावे पहुंच गये।

ताँगा अमीन साहब ने धर्मप्रकाश के ही मकान के सामने रुकवाया और वहाँ देखा कि बैठक में चौधरी धर्मप्रकाश के चौकड़ी बाज लोग इकट्ठे हो रहे थे।

अमीन साहब के गाँव में आने की खबर बिजली की तरह फैल गई। ज्ञानव्रत ध्यानव्रत और हरकली तथा मुंशी चतुरसिंह ने भी इस संवाद को सुन लिया। वे सभी देखना चाहते थे कि आखिर होने क्या जा रहा है। परन्तु अपने उस पुराने मकान की तरफ से तो आजल

उन्होंने अपना रास्ता भी बदल दिया था।

अमीन साहब पहले चबूतरे पर चढ़े और फिर उनके पीछे-पीछे दबे पैरों से बाबू अग्निदत्त तथा उनका लड़का राजू भी चढ़ गये। साथ में इनके भी दो-तीन आदमी थे, जिन्हें खास तौर पर उसी दिन के लिए बुलवाया गया था।

अमीन साहब ने छड़ी के इशारे से धर्मप्रकाश को सामने बुलाकर कहा, "एक घंटे के अन्दर-अन्दर यह मकान खाली कर दो, अदालत का हुक्म है।"

"यहाँ अदालत का हुक्म नहीं चलता अमीन साहब ! यहाँ तो आपका हुक्म चलता है।" धर्मप्रकाश के एक साथी ने आगे बढ़कर कहा और वह अमीन साहब को एक तरफ ले गया।

अमीन साहब को इस तरह जाते देख कर बाबू अग्निदत्त और राजू के मन में चिंता हुई परन्तु उन्हें यकीन था कि आखिर बात जो बिगड़ेगी भी तो पैसे के ही कारण बिगड़ेगी और आज ढाई हजार रुपया जेब में लगाकर बाबू अग्निदत्त अमीन साहब को लेने के लिए गये थे।

धर्मप्रकाश ने आखरी बोली चार सौ रुपये की लगाई, लेकिन उसे मालूम नहीं था कि वह अभी बाबू अग्निदत्त की भेंट-पूजा के आधे तक भी नहीं आ पाया था।

अमीन साहब ने धर्मप्रकाश को डपट कर कहा, "क्या बकवास करते हो जी तुम ? खबरदार जो अब रुपये का मेरे सामने नाम भी लिया।" इधर-उधर के राह चलने वाले जो लोग इकट्ठे हो गये थे उन सभी के सामने उन्होंने धर्मप्रकाश को बुरी तरह डाटा और हुक्म दिया कि मकान खाली होने में ऐक घंटे से ज्यादा नहीं लगना चाहिए।

आज चौधरी धर्मप्रकाश ने बाबू अग्निदत्त की खोपड़ी खून में रंगने और धक्के देकर उन्हें इस मकान से बाहर निकाल देने के लिए अपनी पहलवान चौकड़ी को कानों से भी ऊँची लाठियाँ दे-देकर दोपहर से ही बैठक में बिठाया हुआ था। ये सब वे ही लोग थे जिन्होंने मुंशी चतुर-

सिंह के हवन से अपवित्र किये हुए स्थानों को शराब की बूंदें छिड़क कर पवित्र किया था ।

इन सभी पहलवानों को धर्मप्रकाश की हमदर्दी में पल्लेदारों का काम करना पड़ा । सब घर का सामान ढोने में जुट गये । यहाँ से गली पार करके घेर में जो इमारत रामप्रकाश ने एक हाथीखाने के समान बनवाई थी, उसमें ही धर्मप्रकाश ने जाकर पनाह ली ।

अमीन साहब ने बाबू अग्निदत्त को अपने पास बुलाते हुए कान में कहा, "देखा अब कैसे ढो रहे हैं सामान । आये थे कि आपको धक्के दे-दे कर चबूतरे से नीचे गिरा देंगे । मेरी एक फटकार से दिमाग ठिकाने पर आ गये । सात-सात साल की सजा से कम नहीं होगी, मैंने कह दिया न ! मेरी हुक्म उदूली करना कोई मज़ाक नहीं है ।"

सात साल की सजा का नाम सुनकर, जो धर्मप्रकाश को आगे बढ़ कर वार करने के लिए उकसा रहे थे, उन्होंने सामान उठाने की ही राय दी और उनकी इस उदासीनता को देखकर धर्मप्रकाश भी ढीला पड़ गया । सारा मकान एक घंटे में खाली हो गया । सामान उसमें था ही क्या । जो घर का पहिला और बाबू अग्निदत्त का भाई साहब के पास भेजा हुआ सामान था वह तो हरकली और ज्ञानव्रत हवेली में लेजा चुके थे । अब तो यहाँ धर्मप्रकाश की पाँच-सात चून-दालों की माट-मटोलिाँ और दो चार मेज कुर्सियाँ थीं, जिन्हें बाबू अग्निदत्त राजू की शादी खत्म करने के बाद धर्मप्रकाश को दे गये थे । इनके अलावा कुछ खाट-पीढ़ियाँ थीं और बस बाकी खुला मैदान था, जिसे वह उठाकर नहीं लेजा सकता था ।

किवाड़ों की जोड़ियाँ भी अन्दर से उखाड़ने की उन्होंने कोशिश की, लेकिन अमीन साहब नें उन्हें जोड़ियाँ उतारने से रोक दिया और कहा, "लेजा सकते हो तुम, लेकिन यह समझलो कि फिर एक-एक की चार-चार जोड़ियाँ देनी पड़ेंगी ।"

वे सहम गये अमीन साहब की यह चेतावनी सुनकर और जो कुछ वह लेजा सके उसी पर कनात कर लिया।

बाबू अग्निदत्त ने अपने पुराने उसी कदीमी मकान के ढुंड पर, जिस में कि उसने अपने बेटे की शादी की थी, अदालत् की मदद से दखल लिया। वह जानते थे कि उनका कदम मजबूत है, परन्तु फिर भी गाँव में जाने कितने किस्म की अफवाहें फैलीं।

अफवाहें भी दो किस्म की थीं, एक मरदाना और दूसरी जनाना। मरदाना अफवाहों में कुछ अक्लमन्द लोगों ने बाबू अग्निदत्त की सहनशीलता और मुस्तकिल मिजाजी की सराहना की। कुछ कम समझदार लोगों ने धर्मप्रकाश को विश्वास दिलाने की कोशिश की, कि वह मकान उसे फिर मिल जायगा, परन्तु वह अन्दर से जानता था कि अब जिंदगी में फिर कभी उस मकान को वह अपना मकान नही कह सकेगा। वह मकान अब चौधरी आभाराम का नहीं था। अदालत ने उसे अब बाबू अग्निदत्त का बना दिया था।

जनाना अफवाहों में धर्मप्रकाश की बहू की चन्द औरतों में वह कड़कती आावज थी जिसमें उसने कहा, "अभी चार दिन में तुम देखना कि हम भी इनकी भाजड़ को इस मकान से निकलवा कर ऐसे ही फिकवा देंगे जिस तरह आज इन्होंने हमारी भाजड़ फिकवाई है। अभी जेठ जी को जरा पता लग जाने दो। फिर देखना क्या होता है ? थाने भर के सिपाहियों को लेकर अगर जेठ जी ने इन्हें घर से न निकलवाया, तो क्या बात है ?"

अमीन साहब मकान पर दखल दिलाकर संध्या को हापुड़ के लिए रवाना हो गये और चलते समय बाबू अग्निदत्त को पूरी तरह से समझा कर कह गये, "कोई डरने की बात नही हैं बाबूजी ! अगर ये लोग जरा भी चीं-पटाख करें तो सीधे मेरे पास चले आना और मैं इन्हें ऐसा नाप दूँगा कि जो फिर जिंदगी भर किसी शरीफ आदमी को तंग करने का नाम न लें। आपके भतीजे ये हैं वाकई बड़े लुच्चे।"

"आप ही देख लीजिये अमीन साहब ! मुझे तो कहना ही क्या है ?" बाबूजी ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा और आज वास्तव में बाबू अग्निदत्त ने जिंदगी के इस पहलू पर पहिली विजय प्राप्त की थी। मुकदमा जीतने के पश्चात् मकान पर दखल लिया और फिर उसे बनवाने की बात उनके सामने आई।

अब तो बाबू अग्निदत्त गाँव में आकर बस ही गये। जिन लोगों का यह खयाल था कि शायद धर्मप्रकाश, रामप्रकाश, ध्यानव्रत और ज्ञानव्रत उन्हें गाँव में घुसने ही नहीं देंगे, उनका वह विचार बदलने लगा।

गाँव के चंद लोगों ने उनके पास आना-जाना भी शुरु कर दिया। कुछ उनके साथी भी थे बचपन के, उन्होंने बैठ-उठ भी प्रारम्भ कर दी। बाबू अग्निदत्त अपनी जायदाद पर कब्जा चाहते थे, यह सभी लोग जानते थे। कुछ लोगों ने अपने को बाबू अग्निदत्त का अभिन्न मित्र भी बनाना शुरु कर दिया और सुबह-शाम उनके साथ बैठकर चाय पीने में भी उन्हें आनन्द आता था।

ये लोग तीनों फरीकों के पास बैठते-उठते थे और तीनों की ही मन की बातें लेकर गाँव में अफवाहें फैलाते थे। इस प्रकार बाबू अग्निदत्त के गाँव में पहुंच जाने पर इस परिवार का पारस्परिक वैमनस्य और भी गम्भीर धारा में बह निकला।

बाबू अग्निदत्त ने एक ओर तो मकान बनवाना शुरु कर दिया और दूसरी ओर अपने मुकदमे की डिग्री इजरा कराकर उसमें धर्मप्रकाश का मकान तथा उसके बैल इत्यादि को कुर्क करा दिया।

रामप्रकाश इन दिनों सहारनपुर जिले में दारोगाई पर पहुंच गया था और उसने वहाँ रुड़की की तहसील में तीन-चार हजार रुपया कमा लिया था। यह रुपया ज्यों ही उसके पास आया त्योंही उसके सिर पर बाबू अग्निदत्त की डिग्री आकर गिर पड़ी और उसे पूरा चार हजार रुपया उसमें भरना पड़ा।

जो रामप्रकाश के पास था वह भी चला गया और कुछ इधर-

उधर से भी जमा करना पड़ा। ज्ञानव्रत ने इस रुपये की अदायगी में एक कौड़ी भी अदा नहीं की, जबकि कायदे से उसे आधा रुपया भरना चाहिए था। इसीलिए उस दिन से मुंशी चतुरसिंह और रामप्रकाश के परिवारों में जो इस बीच में मीठे सम्बन्ध पनपे थे वे एक दम कड़ुवे हो उठे। उनमें लाल मिर्चों की जलन सी भी पैदा हो गई।

: ३३ :

बाबू अग्निदत्त ने अब सरावे में रहना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु यहाँ उनके पास आमदनी का कोई जरिया नहीं था। जमीन मिल जाती तो वह खेती कराना शुरु कर देते और अपने गुजारे भर की आमदनी कर लेते। लेकिन उसे धर्मप्रकाश और ज्ञानव्रत कबजाये हुए बैठे थे।

बाबू अग्निदत्त जब एक से फैसले की बात चलाते तो वह दूसरे पर टाल देता, और दोनों का एक जगह मिलना असम्भव था। दोनों ने ही यह बहाना ढूंढ लिया था उनसे कहने का, "आप चाचाजी! दोनों से एक साथ जमीन ले लीजिये। हमें कोई उज्र नहीं है इस बात में।" और उज्र दोनों को पूरा-पूरा था। दोनों ही अपने-अपने कब्जे में आई जमीन को बाबू अग्निदत्त के हवाले करने को तय्यार नहीं थे।

बाबू अग्निदत्त ने मकान बनवाना शुरु किया तो ज्ञानव्रत और ध्यान-व्रत तो उधर जाकर झाँके भी नहीं, लेकिन धर्मप्रकाश इसे बरदाश्त न कर सका। किसी-न-किसी प्रकार की अड़चन वह डालना ही चाहता था। अपने एक मुलाजिम को लेकर वह उस दीवार के पास पहुंचा, जहाँ खड़े हुए बाबू अग्निदत्त मकान बनवा रहे थे और कड़क कर बोला, "किस के हुक्म से यह मकान चिना जा रहा है?"

"अपने हुक्म से।" बाबू अग्निनत्त बोले।

"तो आपका हुक्म मुझे देखना है आज।" और इतना कहकर वह उनसे लिपटने लगा। लेकिन इसी बीच में चंद गाँव के आदमियों ने आकर मामला रफा-दफा कर दिया।

बाबू अग्निदत्त ने मकान की चिनाई वहीं पर रोक दी और सीधे जाकर कलक्टर की अदालत में दरखास्त दी।

इलाके के थानेदार के नाम हुक्म हुआ कि वह जाकर मौके का मुआना करे।

बाबू अग्निदत्त फिर जाकर इलाके के थानेदार महोदय से मिले और उन्होंने मौके पर आने की तारीख लगा दी।

यह काम सब बाबू अग्निदत्त ने चुपके-ही-चुपके किया। सिर्फ अपने लड़के राजू को खबर करके सरावे में बुला लिया अपने साथ के लिए।

दूसरे ही दिन दारोगा जी सरावे में पधारे और उन्होंने मौके को देख कर बाबू अग्निदत्त से कहा, "आप बे फ़िक्री के साथ दीवार चिनवाइये। मैं देखता हूँ कौन इसमें आकर अड़चन पैदा करता है।"

धर्मप्रकाश तो दारोगा के आने की बात सुनकर वहाँ से भाग ही जाना चाहता था, परन्तु सामने नजर पड़ जाने से दारोगा ने उसे बुला कर फटकारते हुए कहा, "क्यों साहब ! आप कौन होते हैं इस दीवार को रोकने वाले। अगर आइन्दा मैंने आपकी ऐसी हरकत सुनी तो ठीक नहीं होगा।"

धर्मप्रकाश ने उस समय दबी बिल्ली की तरह मुआफी माँग ली और बाबू अग्निदत्त की दीवार बननी शुरू हो गई।

मजदूर और राजों की संख्या बढ़ा दी गई और दो दिन के अन्दर ही पूरी चार दीवारी खिचकर तय्यार हो गई।

दीवार बनने की भी यह एक ही दिलचस्प कहानी रही। धर्मप्रकाश ने यह कार्यवाही करके यह नहीं समझा था कि बात कलक्टर के पास तक पहुंच जायगी। उसने तो अपने चंद साथियों को एक दो दावतें उड़वाने के लिए ही यह रंग रचा था।

इसीलिए राजू के पास गाँव ने एक बड़े चौधरी साहब ने पिछले दिन उनकी बैठक में बैठकर हमदर्दी दिखाते हुए कहा था, "भय्या राजू ! गाँव में रहना बड़ा मुश्किल है। यहाँ तो सच जानो गुण्डों का राज है। वे जब चाहें तब शरीफ आदमियों की इज्जत उतार लें।"

"और आप लोग इज्जतें उतरवा कर भी खुश रहते हैं ?" राजू ने पूछा।

"खुश न रहें तो क्या करें जब रहना ही यहीं है। मैं तो कहता हूँ कि तुम भी खामखा के झमेले में पड़े हो।" वह बोले।

"तब फिर क्या करना चाहिये हमें ?" राजू ने सादा बनकर उनसे पूछा।

"मैं तो यही राय दूँगा कि पचास-सौ रुपये इन गुण्डों को चटाकर अपना पीछा कटाओ, और अपना मकान बनवाना शुरू कर दो।"

राजू मुस्करा दिया अपने गाँव के इन चचा-चौधरी की बातें सुनकर और दृढ़ता पूर्वक बोला, "चाचा जी ! इस दीवार पर अगर मेरा दस हजार रुपया भी खर्च होगा तो मैं करूँगा, लेकिन कुछ गुण्डों को शराब पीने के लिए मैं रुपया दे दूँगा, यह बात नामुमकिन है।"

चचा ने सुझाव तो पेश कर दिया राजू के सामने, लेकिन उत्तर सुन कर शरमाते हुए बोले, "राजू बुरा तो मैं भी समझता हूँ इन बातों को, लेकिन छोटे भाई ने जब आकर गिड़गिड़ाये हुए तुम्हारी हमदर्दी जतला कर कहा कि भाई साहब ! देखो तो बेचारे बाबू अग्निदत्त को ये गुण्डे कैसा परेशान किये हुए हैं। जरा आप ही जाकर उन्हें समझा दें कि नाहक इन गुण्डों के क्यों मुँह लगते हैं। इनकी कीमत ही क्या है, यही पचास सौ रुपया। शराब पी-पा लेंगे कहीं जाकर और बेचारे बाबू जी की जान छूट जायगी। खामखा बेचारों का मकान बनता-बनता रुक गया। मेरे तो जरा ताल्लुकात खराब हैं उनसे, वरना मैं खुद ही जाकर यह सुझाव रखता। हैं वाकई बाबू अग्निदत्त देवता आदमी।"

राजू चचा से यह बात सुनकर मुस्कराते हुए बोला, "तो चचा! आप के छोटे भाई ने आपको मूर्ख बनाया। आपने बाबू अग्निदत्त को ग़लत समझा है। आप इन्हें बुज्दिल समझते हैं क्या ? इन्होंने शहर की फिजायें बदली हैं और उन फिजाओं पर अपने व्यक्तित्व से काबू पाया है। इन्हें आप समझते हैं कि यह इन गुण्डों को पचास रुपये दे-देंगे। सहा-

रनपुर जैसे मुसलमानी शहर के बीचों-बीच खड़ी जामामस्जिद के सामने से इनकी आर्यसमाज का जुलूस बिला बाजा बन्द किए निकला था। बाबू अग्निदत्त प्रधान थे उस आर्य समाज के। जो आदमी तमाम शहर के मुसलमानों के सामने सीना खोलकर जा सकता था वह आज इन ना चीजों के सामने झुक जायेंगे, यह सोचना नादानी है।"

राजू चुप हो गया बस इतना कह कर और फिर मुस्कुराता हुआ बोला, "चाचा जी ! यह मकान बाबू अग्निदत्त का कदीमी मकान है। यहाँ से उन्हें ब्रह्मा ही इधर-उधर कर सकता है। गुण्डे जिन्हें आप कह रहे हैं, ये बेचारे तो आप लोगों की ही ट्रेनिंग के रंगरूट मात्र हैं। आपसी खलिशें निकालने के लिए जो सेना आप लोगों ने तैय्यार की है, अनियंत्रित्र होने पर उसका यह रूप बन गया है। फौजी सिपाहियों से खेती का काम नहीं होता। इन्हें तो शगल या खतरे का काम ही पसंद आता है। लगातार मेहनत करना इनके वश की बात नहीं होती।"

चचा चुपचाप सुनते रहे राजू की बातें और अन्त में उन्होंने मंजूर कर लिया कि वाकई उनका वह सुझाव गलत था।

बाबू अग्निदत्त का मकान तय्यार हो गया और वह पुराना चौधरी आभाराम का बसाया हुआ खंडहर एक पक्का मकान बन गया। जब यह सूचना मुंशी चतुरसिंह को मिली तो उन्होंने अपने भाई को दिल से आशीर्वाद दिया और इस बुढ़ापे में भी वह एक दिन उसे देखने के लिए आये।

मुंशी चतुरसिंह का दिल गद्-गद् हो उठा उसे देख कर। उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि जिस जमीन की ठेक पर चौधरी आभाराम ने कभी झोंपड़ी डाल कर तमाम कस्बे से टक्कर ली थी वह ऐतिहासिक स्थान आज उनके छोटे भाई अग्निदत्त ने पक्का बनवा दिया। जिस काम को मुंशी चतुरसिंह न कर सके उस काम को उन्हीं के मा-जाये बाबू अग्निदत्त ने पूरा कर दिया।

आज मुंशी चतुरसिंह की आत्मा प्रसन्न थी इस मकान को देख

कर। उन्हें अब यह भी खुशी थी कि जो मकान कभी वेद-मंत्रों के साथ किये गये हवन से सुगंधित हुआ था उसमें से रामप्रकाश के मांसाहारी और शराबी जीवन को उनके आर्यसमाजी भाई अग्निदत्त ने उखाड़ फेंका। उन्हें आशा थी कि अब उस मकान में फिर उन्हीं की तरह उनका छोटा भाई बैठ कर यज्ञ करेगा और उसकी सुगंधि गाँव के वातावरण को मंहका देगी।

इधर कई दिन से मुंशी चतुरसिंह का पेट खराब चल रहा था। वह जंगल में एकांत स्थान पर रहते थे। उनके परिवार के भूत ने उनके जीवन की अंतिम साथिन, उनकी स्त्री, को भी उनसे छीन लिया था। उनकी स्त्री अपने बेटे और बेटियों की आज्ञा-पालन करना अपना फर्ज समझने लगी थीं।

रास्ता मुंशी चतुरसिंह ने स्वयं दिखाया था। इस लिए जब कभी भी वह उनके चरित्र पर गम्भीरता पूर्वक विचार करते थे तो कसूर उन्हें अपना ही दीखता था। फिर जब बेचारे मुंशीचतुरसिंह का ही पौरुष थक गया था तो उनकी स्त्री को कौन पूछता। उसकी तो पूछ-ताछ इसी लिए थी कि वह एक चौकस आदमी का काम देता थी।

मुंशी चतुरसिंह थक गये थे गाँव तक आते-आते। बाबू अग्निदत्त की स्त्री ने एक खटोला डाल दिया और फिर एक गिलास मठे में जीरा और काला नमक मिला कर उनके लिए लाई। मुंशी चतुरसिंह ने पूछा, "तुम्हारे घर में मट्ठा कहाँ से आया अग्निदत्त ? क्या कोई गाय भैंस रखी हुई है ?"

"गाय भैंस कहाँ से रखता भाई साहब ! चारे के लिए जमीन तो है ही नहीं मेरे पास।" गम्भीरता पूर्वक बाबू अग्निदत्त ने कहा।

मुंशी चतुरसिंह चुप थे इस समय। उनकी अवस्था लगभग नव्वे के रही होगी। उन्होंने छोटे भाई की बहू के हाथ से गिलास ले लिया मट्ठे का और उसे वहीं बैठ कर पी गये।

बाबू अग्निदत्त के घर को देख कर मुंशी चतुरसिंह फिर कुए पर अपनी झोंपड़ी में चले गये।

दूसरे दिन फिर बाबू अग्निदत्त भाई साहब के पास कुए पर जा बैठे। मुंशी चतुरसिंह ने अभी-अभी सत्यार्थप्रकाश के बीच में कहीं वर्गद के पत्ते को लगा कर रखा था और एक वेद-मंत्र उनके मस्तिष्क में घूम रहा था।

बाबू अग्निदत्त के आते ही वह प्रसन्न होकर बोले, "कितना अच्छा भाष्य किया है ऋषि दयानन्द ने। पराये धन को मिट्टी के समान समझना चाहिए। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मनुष्य की अवनति के कारण है। इनके चक्कर में पड़कर आदमी अपनी इज्जत, अपना धन, अपनी शक्ति और अपने व्यक्तित्व को खो बैठता है।"

बाबू अग्निदत्त मुस्कुराने लगे बड़े भाई साहब की यह बात सुन कर, और विनम्र भाव से बोले, "भाई साहब क्या कोई आदमी इन धर्म-सिद्धान्तों को जीवन में घटाता भी है? इनका पाठ करने से तो मैं समझता हूँ कोई लाभ नहीं होता?"

मुंशी चतुरसिंह को क्रोध आया कि बाबू अग्निदत्त उनके चरित्र पर कटाक्ष कर रहे हैं। परन्तु अब इन कटाक्षों को भी उन्होंने ठंडे दिल से सह जाना ही ठीक समझा।

बाबू अग्निदत्त ने पूछा, "आपके पेट की अब क्या दशा है?"

"आज कुछ आराम है और सच जानो अग्निदत्त! कल जो तुमने वह मट्ठा दिया था, उससे पेट में बड़ा आराम हुआ। हाँ तुमने बतलाया नहीं कि यह मट्ठा तुम्हारे यहाँ कहाँ से आता है?"

"मेरे यहाँ तो सब चीजें मोल की ही आती हैं भाई साहब! एक भैंस का दूध ले-लेता हूँ, और उसी को जमा कर बिलवा लेता हूँ। इस तरह घर का घी और दही-मट्ठा मिल जाता है।"

मुंशी चतुरसिंह सकुचाये कि आखिर वह अग्निदत्त से मोल का खरीदा हुआ मट्ठा अपने लिए लाने को कैसे कहें।

बाबू अग्निदत्त समझ गये उनके संकोच को और स्वयं बोले, "आपको मट्ठा पेट की इस शिकायत में लाभ करेगा। यदि कहें तो नमक-जीरा मिलवा कर एक गिलास मट्ठा यहाँ दे जाया करूँ।"

मुंशी चतुरसिंह ने यह मंजूर कर लिया।

एक दो दिन तो बात लुकी-छिपी रही, परन्तु तीसरे ही दिन उसका राज खुल गया। ध्यानव्रत की बहू से गाँव की नायन ने आकर कहा, "सुनती हो आज गाँव में क्या चर्चा है? बाबू अग्निदत्त की स्त्री कहती है कि तुम्हारे बूढ़े को वह एक गिलास मट्ठा रोजाना पहुँचाती है।"

"नायन ने कहा है।" क्रोध में भरकर ध्यानव्रत बोला।

"हाँ नायन ने कहा। पिता जी का क्या जी निकला जाता था उस मट्ठे के बिना। जब भगवान् ने बाल-बच्चों पर मुसीबत डाली है तो क्या तब भी इनकी बूढ़ी जबान का स्वाद नहीं छूटता?" ध्यानव्रत की बहू बोली।

बाल-बच्चों के दूध की बात सुनकर ध्यानव्रत का क्रोध बढ़ने लगा और उसे लगा कि मानो उसके पिताजी ने बाबू अग्निदत्त के घर का मट्ठा पीकर उनकी जबरदस्त हतक कर डाली।

वह लेटा नहीं रह सका यह बात सुनकर और सीधा जंगल में कुँए के पास मुंशी चतुरसिंह की झोंपड़ी पर जाकर बोला, "पिताजी! आपने भी बस कमाल ही कर दिया। उन बाबू साहब के यहाँ से मट्ठा मंगा कर आपने हमें कहीं का भी नहीं छोड़ा। जितना बाबू साहब के यहाँ दूध आता है उतना तो हमारे बच्चे नालियों में बहा देते हैं।

मैं फिर कभी न सुनूं कि बाबूजी यहाँ मट्ठा लेकर आते हैं।"

दूसरे दिन जब बाबू अग्निदत्त मट्ठा लेकर आये तो मुंशी चतुरसिंह ने लेने से इंकार कर दिया; परन्तु उनके नेत्र कह रहे थे, 'भय्या! मैं मजबूर हूँ। मैंने तुझे गलत समझा था। उसी का यह फल भोग रहा हूँ। आज इस बुढ़ापे में मेरी तहमद में टट्टियाँ निकल रही हैं और कोई आबदस्त लिवाने वाला भी नहीं है। हरकली की माँ ने भी इस उम्र में

आकर धोखा दे दिया। वह भी अपने बच्चों की ही होकर रह गई। बच्चों के लिए ही मैंने तुम्हें धोखा दिया और उन्हीं के लिए हरकली की माँ ने मुझे धोखा दिया,—बस जो हशर मेरा हो रहा है, वही एक दिन देख लेना इस बुढ़िया का भी होगा। जब तक इसके हाड़ चलेंगे, ये लोग उन्हें पेलते रहेंगे और जिस दिन चलने बन्द हो जायेंगे, उस दिन इस पर भी मक्खियाँ भिनकेंगी।'

: ३४ :

रामप्रकाश को बाबू अग्निदत्त ने एक बार नहीं, कई बार उसके इरादों को पूरा करने में मदद की थी। ज्ञानव्रत की शादी में जब उसने अपनी बहू की चीजों को ज्ञानव्रत की बहू को न चढ़ने देना चाहा था तो बाबू अग्निदत्त ने वे चीजें बड़े भाई साहब से कहकर उसे दिवाई थीं और इन चीजों के दिवाने की वजह से उन्हें हरकली और ज्ञानव्रत के कोप का भाजन बनना पड़ा था।

जब वह धर्मप्रकाश को सराबे में छोड़ने के लिए आया था तो तब भी बाबू अग्निदत्त का यही मत था कि धर्मप्रकाश और रामप्रकाश के साथ ज्ञानव्रत, हरकली और ध्यानव्रत ने अनुचित व्यवहार किया और उसे लगभग आधी जमीन खेती के लिये दिलाने में भी उन्होंने मदद की थी।

फिर जब अदालत में वह अपना मुकदमा ले गया, तो चाहे इंसाफ के लिए ही सही, या भविष्य में अपना भी हित उसी में देखा हो, परंतु बाबू अग्निदत्त ने रामप्रकाश को मुकदमा जीतने में सहयोग दिया था। उन्होंने जो गवाही दी थी उस पर मुकदमे का दारोमदार था और उन्होंने जो रुपया खत्री साहूकार के कर्ज में भरा था उसने खांदान को मुश्तर्का साबित करने में जबरदस्त योग दिया था।

फिर एक बार जब रामप्रकाश ने उन्हें लिखा कि वह उसे कुछ रुपया भेज दें तो वह जमीन का बटवारा ठीक करा लेगा। वह रुपया भी बाबू अग्निदत्त ने रामप्रकाश को भेज दिया था। परंतु बाद में पता

चला कि वह तो उसके रुपया ऐंठने का एक मंत्र मात्र था। उसमें असलियत के नाम की तो कोई चीज थी ही नहीं।

बाबू अग्निदत्त ने मुकदमा दायर किये बिना फैसला हो जाने की सभी सूरतों को नाकारा समझ कर ही यह मुकदमा अदादलत में दायर किया था। कोई चारा नहीं था उनके पास उस समय अपने हक के लिए मुकदमा दायर करने के अलावा। लेकिन यह मुकदमा दायर करने से पूर्व भी बाबू अग्निदत्त ने रामप्रकाश को उसमें शामिल होने की दावत दी थी और यह भी आश्वासन दिया था कि मुकदमे का सब खर्च वह स्वयं ही करेंगे। रामप्रकाश को केवल उनके साथ भर रहना होगा। परंतु रामप्रकाश इस बात के लिए भी आमादा नहीं हुआ। उसके पास अब लगभग आधी जमीन थी और चाहे ऊपर से कुछ नहीं कहता था परंतु अन्दर से जो जमीन उसके कब्जे में आ ही चुकी थी उसमें से जरा-सा भी हिस्सा बाँटने को वह तय्यार नहीं था। बाबू अग्निदत्त के सभी प्रलोभन इस समय बेकार सिद्ध हुए।

बाबू अग्निदत्त ने जब सोलहों आने यह समझ लिया कि इन दोनो फरीकों के मनों में बदी है, तब उन्होंने अकेले ही दीवानी अदालत की तरफ कदम बढ़ाया था। बाबू अग्निदत्त ने मुकदमा जीत कर धर्म-प्रकाश के घर की भाजड़ अपने पुराने मकान से निकलवा कर बाहर फिंकवा दी और रामप्रकाश को दिखला दिया कि खाली बेईमानी से ही दुनियाँ का काम नहीं चलता।

बाबू अग्निदत्त ने रामप्रकाश पर दूसरी करारी चोट अपनी डिग्री का सारा रुपया उसी से वसूल करके की। इस चोट को खाकर रामप्रकाश तिलमिला उठा और टखने ढीले हो गये उसके। उसकी रुपये-पैसे की दशा एकदम गिर गई। बाबू अग्निदत्त ने रामप्रकाश को अन्दर से बिलकुल खोखला कर दिया और उसके इस खोखलेपन की हवा भी कस्बे में फैल गई।

रामप्रकाश की नौकरी पुलिस-दारोगाई पर आ चुकी थी और उसका

खयाल था कि जिन्दगी के आखरी दिनों में वह अपना अच्छा-खासा भविष्य बना लेगा। कहीं-न-कहीं से तो रिश्वत की मोटी रकम काटने को मिल ही जायगी। लेकिन मामलात कुछ ऐसे बिगड़े कि उसे समय से पूर्व ही स्तीफा देकर नौकरी छोड़नी पड़ी। अगर वह स्तीफा न देता तो निश्चित रूप से उसे महकमे की तरफ से बर्खास्त कर दिया जाता और जो थोड़ी-बहुत पेंशन की आशा की झलक थी वह भी अन्धकार में विलीन हो जाती।

रामप्रकाश अचानक बहुत सख्त बीमार हो गया। इतना बीमार हुआ कि उसके बचने की भी आशा जाती रही। बाबू अग्निदत्त को जब रामप्रकाश की बीमारी की सूचना मिली तो वह उसे देखने के लिए सहारनपुर पहुँचे और कई दिन ठहर कर अपने एक मित्र बाबू हुंडीलाल को उसकी देख-भाल और समय-बे-समय सहायता के लिये कह आये।

सहारनपुर में बाबू अग्निदत्त अठारह वर्ष रहे थे और वहाँ की हिंदू जनता का बच्चा-बच्चा उनकी सेवाओं और कार्य-कर्मठता से परिचित था। आर्यसमाज-क्षेत्र में तो लोग-उन्हें पूजते थे। उनके भतीजे की बीमारी को सुनकर और भी काफी लोग देखने के लिए आये और जो कोई भी जो कुछ सलाह-मशविरा दे सकता था, उसने दिया।

जब रामप्रकाश की दशा कुछ ठीक हुई तो उसे सरावे लेआया गया। ताँगा खरखौदे से रामप्रकाश को लेकर चला और सरावे में घुसा तो अपने पुराने कदीमी मकान पर उसकी नजर गई। मकान रास्ते में ही पड़ता था और अब तो उसकी लम्बी-चौड़ी पक्की दीवार बाबू अग्नि-दत्त ने खिचवाली थी। एक आलीशान ईमारत गाँव के सबसे बढ़िया मौके पर दिखलाई देती थी।

बैठक की तरफ रामप्रकाश की नजर गई तो उसका बीमार खून भी एक बार उबाल खा गया। जिस बैठक में चौधरी शक्तिसिंह का प्यार उसपर उँडेला जाता था, जिसमें बैठकर वह कई बार गाँव की गुण्डा-चौकड़ी को इकट्ठा करके उनके साथ जाम-पर-जाम पी चुका था, जिसमें

लेटकर ताजा किये हुक्के के लम्बे-लम्बे कश उसने खींचे थे, उसी बैठक के सामने उसने बाबू अग्निदत्त के नाम की प्लेट लटकी हुई देखी। उसका दिल अन्दर से जल उठा और उसने कहा, 'एक बार अगर जिन्दा-बन्दा बना रहा तो इस पर भी कब्जा जरूर करूँगा। जिस तरह मेरी भाजड़ उठवा कर यहाँ से चाचा जी ने फिंकवाई थी उसी तरह एक दिन अगर इनकी भी उठवा कर न फिंकवा दूँ तो मेरा नाम भी राम-प्रकाश नहीं।'

जंगल में कुएँ पर दो झोंपड़ियाँ पड़ी हुई थीं। ये दोनों ही ध्यानव्रत न छवाई थीं। एक में मुंशी चतुर्रसिंह अपना वानप्रस्थी जीवन व्यतीत करते थे और दूसरी में ध्यानव्रत के मवेशी बाँधे जाते थे। जब से ध्यानव्रत ने पुराना मकान छोड़कर सुनारों वाली हवेली में कदम रखा, तब से मवेशियों के रहने का स्थान कुएँ पर ही बना लिया था। कुआ अब एक प्रकार से उसका जंगल का घर-सा ही बन गया था। वहाँ एक ओर तो मुंशी चतुरसिंह बैठे सत्यार्थप्रकाश पढ़ते रहते थे और दूसरी तरफ ध्यानव्रत तथा ज्ञानव्रत के बच्चे बरगद के पत्तों के बैल और गाड़ी बनाकर उनसे खेलते रहते थे। इसी खेल और सत्यार्थप्रकाश के पाठ में कभी-कभी सामंजस्य न रहने पर मुठभेड़ भी हो जाती थी। बाबा-पोतों की झौड़-झपटों में बेटों और बेटियों का भी पारा गर्म हो जाता था। कभी-कभी तो ये साधारण बच्चों की बातें ही जिन्दगी की अहम बातों में बदल जाती थीं।

बच्चे बन्दरों की तरह अपने बाबा जी को खिजाते और उनकी फूंस की झोंपड़ी पर कूद-कूद कर उसका फूंस निकाल डालते थे। झोंपड़ी का फूंस निकल जाने पर उसमें जगह-जगह सूराख हो जाते। इसे देख कर मुंशी चतुरसिंह का क्रोध जागृत हो उठता और वह उन्हें गालियाँ फटकारते हुए उनकी तरफ उन्हें पीटने के लिए लपकते। बच्चे झोंपड़ी से कूद कर गाँव की तरफ भागने लगते। मुंशी चतुरसिंह भी उनका

पीछा करते चले जाते। बच्चों को और उनके माता पिताओं को बुरी-भली बातें वह जी खोलकर फटकारते।

रास्ते में ज्ञानव्रत मिल जाता और यह बाबा-पोतों की दौड़ देखकर पूछता, "क्या बात है पिताजी ? इस तरह की बदहवासी में आप क्या-क्या कहते चले जा रहे हैं ?"

मुंशी चतरसिंह वहीं पर रुक कर खड़े हो जाते और बच्चों को छोड़कर ज्ञानव्रत से अपना माथा ठोकते हुए कहते, "बात क्या है, यही है बस कि ऐसी नालायक औलाद पैदा की है आप लोगों ने। निहायत बदतमीज और निहायत दंगई किस्म के बच्चे हैं तुम लोगों के। ऐसे नालायक बच्चों की तो हड्डियाँ तोड़ डालनी चाहिएं।

कितनी मुश्किल से कल मैंने बीस पूले फूंस के लगाकर झोंपड़ी को बरसात के लिए ठीक किया था। इस तुम्हारी लायक औलाद ने उस पर कूद-कूद कर उसका बुरी तरह भुर्त्ता बना डाला है। अब मैं किसके सामने जाकर अपना सिर पीटूँ।" और इतना कह कर वह दगड़े में ही अपने सिर को जोर-जोर से पीटने लगे।

ज्ञानव्रत को मुंशी चतुरसिंह की यह बात सुनकर बहुत ही बुरा लगा। आखिर बच्चों को पुड़िया में बन्द करके वह भला कैसे रख सकता था। बच्चों को तो आजाद ही रखना चाहिए। अपने पिताजी की बच्चों पर डंडे-बाजी की नीति के वह बिलकुल खिलाफ था। बच्चे उसने दंगई पैदा किये थे, इस बात को लेकर उसके दिल में एक अजीब-सी कुढ़न पैदा हो गई। पिताजी के शब्दों को वह बिलकुल ही बेहूदा और नातरक्की-पसंद समझ रहा था। वह अपने माथे पर सलवटें डाल कर बोली, "आप ही बच्चों से कौन अधिक अक्लमंदी का काम कर रहे हैं। खाली कोपीन बाँधे गाँव के दगड़े में भगे जा रहे हैं। कम-से-कम अंगोछा तो बाँध लिया होता। चारों तरफ गाँव की औरतें फिर रही हैं। आपको इस दशा में देखकर भला क्या कहेंगी ! आपने तो सचमुच ही हमारी नाक काट डाली और हमें कहीं का भी नहीं छोड़ा।"

मुंशी जी वहीं से बड़बड़ाते हुए लौट पड़ते। कहते, "मैं ही तुम्हारी आँखों में खार हूँ। निकम्मे आदमी की यही दशा होती है।"

"तो कमाइये न! कौन मना करता है कमाने को।" अकड़कर ज्ञानव्रत कहता।

और उस दिन वाक़ई मुंशी चतुरसिंह के हाथों में अनाज बरसाने का पलड़ा देते हुए ज्ञानव्रत ने उन्हें काम पर जुटा दिया। लेकिन उनके शरीर में भला कहाँ ताकत थी काम करने की। जब काम न करा जा सका तो ज्ञानव्रत कुढ़ कर बोला, "बस निकल गया काम करने का ज़ौम? आराम से बैठकर रोटियाँ नहीं खाई जातीं। नाहक हमारा दिमाग ख़राब करने की ठान लेते हो।"

रामप्रकाश ने अपनी खटिया कुए पर उस झोंपड़ी के अन्दर डालने को कहा, जिसमें ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के मवेशी बँधते थे। खटिया वहाँ डाली गई तो ज्ञानव्रत के दिल पर साँप-सा लेट गया। उसकी आँखों के सामने वही पुराना घेर वाला काण्ड था जिसमें इन सबका मल्ल-युद्ध हुआ था और उसके बाद नतीजा यह निकला था कि वह घेर ही ज्ञानव्रत और ध्यान-व्रत को छोड़ना पड़ा था। वे डरते थे कि कहीं यह झोंपड़ी भी उन्हें छोड़नी न पड़ जाये।

रामप्रकाश की खाट को इस झोंपड़ी से निकालकर फेंक देने का ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने मुस्तकिल इरादा कर लिया। बात काफ़ी बढ़ जाना चाहती थी और रामप्रकाश अभी बहुत कमजोर था, परन्तु उसकी चौकड़ी वहाँ जुड़नी शुरू हो गई थी। फिर भी उसने यही ठीक समझा कि अपनी झोंपड़ी अलहदा ही डलवाले और उसकी एक पृथक से झोंपड़ी पड़ गई, जिसमें वह अपनी खटिया डलवाकर रहने लग गया।

रामप्रकाश ने चौबीसों घंटे वहीं पर रहना शुरू कर दिया। बाबू अग्निदत्त से भी उसकी धीरे-धीरे बातें होने लगीं और उसने विश्वास दिलाया कि वह उनकी ज़मीन को ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत के नीचे से

निकलवाने में पूरी-पूरी मदद करेगा और उसके अपने हल के नीचे जो ज़मीन है, उसे भी वह छोड़ देगा।

इसी बीच में ज्ञानव्रत ने भी बाबू अग्निदत्त पर एक जाल फेंका और वह बोला, "यदि मैं आपकी जमीन छोड़ दूँ तो क्या आप मेरी उस नई ख़रीदी ज़मीन से अपना हक़ हटा सकते हैं जिस पर अदालत ने आपको हक़ दे दिया है।"

बाबू अग्निदत्त झगड़ा काटना चाहते थे और वह इस बात के लिए तैयार हो गए। उन्होंने दस-पाँच बीघे ज़मीन का मोह छोड़ दिया और उतनी पर ही क़नात किया जो उन्हें बिना दिक्कत और झगड़े के मिल सके।

ज्ञानव्रत ने एक-डेढ़ बीघे का खेत एक छोड़कर उनसे कहा, "अब आप हम दोनों भाइयों के नाम तहसील में चलकर वह जमीन करा दीजिए।"

"पहिले कुल ज़मीन आप मेरे कब्जे में दे दीजिए और विश्वास रखिये कि मैं इस नाचीज़ के लिए बेईमानी नहीं करूँगा।" बाबू अग्निदत्त ने कहा।

"विश्वास का जमाना तो जाता रहा चाचा जी ! अगर हमनें तमाम जमीन छोड़ दी और फिर आपनें वह हमारे नाम न की तो फिर हम क्या करेंगे ? आपको तो फिर हम से बातें करने की भी जरूरत नहीं रह जायेगी," ज्ञानव्रत बोला।

"इसी तरह यदि मैंने वह ज़मीन तुम्हारे नाम कर दी और फिर तुमनें ज़मीन न छोड़ी तो मैं तुम्हारा क्या करूँगा ? जरा यह भी तो सोचिये भतीजे राजा !" बाबू अग्निदत्त ने नम्रता पूर्वक कहा।

बाबू अग्निदत्त अपना पिंड छुड़ाना चाहते थे और कुछ नुकसान उठाकर भी मामले को खत्म करने पर आमादा थे, परन्तु इन दोनों ने विश्वास नाम की तो किसी चीज़ को छोड़ा ही नहीं था। तब भला वह इनका विश्वास करके कैसे अपने को फँसा सकते थे।

मामला यहीं पर समाप्त हो गया। इस फैसले की बातें आगे न चल सकीं।

वह डेढ़ बीघे का खेत जो बाबू अग्निदत्त के हाथों में आ गया था, उसमें उन्होंने अपनी गाय के लिए चरी बुआ दी थी। यह डेढ़ बीघे का खेत ज्ञानव्रत, हरकली और ध्यानव्रत के दिलों का नासूर बन गया। कुल जमीन में तिहाई के हिस्सेदार ने एक-डेढ़ बीघे का खेत अपनी गाय के चारे के लिए बो लिया, यह बात ये तीनों महाशय बरदाश्त न कर सके।

"देखा कितने घाघ निकले चचा अग्निदत्त !" हरकली ने कहा। इस समय मुंशी चतुरसिंह के परिवार की अंतरंगसभा के तीन सदस्य हरकली, ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत थे। हरकली स्वतंत्र थी और इन दोनों भाइयों में इनके अपने और इनकी बहुओं के विचार मिले हुए रहते थे। रात की मंत्रणाओं को लेकर नित्य सुबह-ही-सुबह यह बैठक घर के मामलों पर विचार करने के लिए बैठती थी।

"तुम फिक्र मत करो जीजी ! अब की बार अगर चचा इस खेत में खूड निकाल लें तो हम जानें। इस बार इनकी वह मरम्मत की जायगी कि फिर जिंदगी पर खटिया ही सेनी पड़ेगी। अगर खेत की तरफ इन्होंने रूख कर भी लिया तो समझलो कि फिर वह घर को वापस अपने पैरों पर नहीं आ सकेंगे।" सीना उभार कर ध्यानव्रत ने अपनी गोल खोपड़ी पर हाथ फेरते हुए कहा।

"यही राय ठीक है," ज्ञानव्रत बोला। "इस बार उस खेत को उनसे हमें छीन ही लेना चाहिए। खेत हाथ में आ जाने से गाँव में चचा की जड़ें मजबूत हो जायेंगी।"

यही राय उन्हें उनके गाँव के साथियों ने भी दी। उन्होंने साफ-साफ कह दिया, "मामला तुम्हारे घर का है, इसलिए जब तक घर के आदमी ही बोलेंगे हम बीच में नहीं पड़ेंगे। लेकिन यदि बाहर के आदमियों ने क़दम रखा तो फिर हम सब देख लेंगे। जहाँ तुम्हारा पसीना बहेगा वहाँ

हम हाथ-पर-हाथ मारकर कहते हैं कि अपना खून बहा देंगे ।"

बात निश्चित हो गई और दूसरी तरफ बाबू अग्निदत्त को उनके पास बैठने-उठने वालों ने सलाह दी, "आप फ़िक्र किस बात का करते हैं ? ज़रा मजबूती के साथ हल जुड़वाइये । क्या आप चून के लड्डू हैं जो ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत आपको मुँह में डाल लेंगे । अगर कोई कस्बे का और आदमी बोलेगा तो हम भी तो कहीं मर नहीं जायेंगे । हम लोग भी वहीं मौजूद रहेंगे । क्या आपको हम कभी पिटते हुए देख सकते हैं ?"

इसी बीच राजू भी गाँव में आया और उसने मामले की तना-तनी को देखते हुए अपने पिता जी से कहा, "पिता जी आप इन झमेले-बाजियों में न पड़ना । मुझे जमीन की जरूरत नहीं है । जब क़ानूनन कभी मिल सकेगी तो ले लेंगे । जल्दबाजी से काम न लीजिये । मैं आपस की झगड़ेबाजी को पसंद नहीं करता । ये लोग जो आपके पास बैठते हैं, सब दोगले हैं । ये इधर भी लगाते हैं और उधर भी जाकर बैठते हैं । आप इनके यकीन में आकर कोई ग़लत क़दम न उठा बैठना ।"

राजू ने बाबू अग्निदत्त के पास बैठने वालों को भी समझाया कि उन्हें इस प्रकार की पारस्परिक उत्तेजनात्मक चीज़ों में नहीं पड़ना चाहिए । इतनी तना-तनी के बावजूद भी वह ज्ञानव्रत से मिला और कहा, "आप जिन लोगों के चक्कर में पड़े हैं वे आपका साथ नहीं दे सकते । जो लोग आपस में लड़ने की सलाह देते हैं, वे आपके हितैषी कभी भी नहीं हो सकेंगे ।

परन्तु ज्ञानव्रत की अक्ल में अपने से छोटे राजू की ये बातें बेअक्ली की थीं और उसने राजू से स्पष्ट कह दिया, "मुझे तो इस समय अपने ये ही लोग हितैषी दीख पड़ते हैं । मैं इनका साथ नहीं छोड़ सकता । ये लोग जैसी भी सलाह देंगे मैं वैसा ही करूँगा ।"

"तो ठीक है फिर आप गिरिये खंदक में और हमें भी ले चलिये । यही सब तो आप को करना है । आप खुद बरबाद होंगे और हमें

भी बरबाद करेंगे।" राजू ने कहा और वह निराश होकर वहाँ से लौट आया।

राजू भाग्य पर विश्वास नहीं करता था, लेकिन अब भवितव्यता उसकी आँखों के सामने नाच उठी। परिस्थितियाँ उसने देखीं तो उसे लगा कि परिवार पर बरबादी के काले बादल मँडरा रहे हैं। वह अपने पिता जी को समझाने का प्रयास करता तो उन पर भी उसका कोई असर नहीं होता। उनके मित्र नागरसिंह का जादू उनके सिर पर चढ़कर बोल रहा था।

राजू यहाँ और अधिक नहीं रुक सकता था। उसका अपना काम शहर में उसके यहाँ रहने के कारण बर्बाद हो रहा था और वह सरावे की परिस्थितियों को इसी दशा में छोड़कर शहर चला गया।

: ३५ :

मुंशी चतुरसिंह की हालत इधर कुछ गिरती जा रही थी। एक दिन उन्होंने हरकली से ऐसी दशा में गिड़गिड़ा कर कहा, "बेटी! अब मेरी दशा बहुत खराब हो चली है। तुम अपनी माता जी को अगर मेरी खिदमत के लिए छोड़ दो तो बड़ी मेहरबानी होगी। मुझ से उठा-बैठा भी नहीं जाता। एक कदम रखता हूँ तो गिरने की नौबत आ जाती है।"

हरकली ने मुंशी चतुरसिंह की तरफ मुंह बिचकाते हुए कहा, "आप पुरुषों में यह कितनी कमजोरी की बात है कि आप लोग मरते समय तक बिला स्त्री के रह ही नहीं सकते। जरा मेरी तरफ देखिये कि जो इतने दिन से बिला पुरुष के रह रही हूँ। क्या आपके खयाल से मुझे साथी की जरूरत नहीं है?"

मुंशी चतुरसिंह को लज्जा आ गई हरकली के इन वाक्यों को सुन-कर। यह ब्रह्मचारिणी सती साध्वी का उपदेश था अपने उस वृद्ध पिता

के उन अंतिम दिनों में जबकि उनकी आंखों की पुतलियों में चिता की लपटें आकर समा चुकी थीं।

आजकल जब मुंशी चतुरसिंह से उठा नहीं जाता था तो उनकी टट्टी वहीं बैठे-बैठे निकल जाती थी। सब कपड़े गन्दे हो जाते थे और फिर कुएं से डोल खींच कर उन्हें वे स्वयं अपने ही हाथ से धोने पड़ते थे।

सुबह-शाम के संध्या-हवन भी छूट से ही गये थे। लगातार बैठने की शक्ति उनके अंदर से समाप्त हो गई थी। ध्यानव्रत और ज्ञानव्रत में से कोई विशेष रूप से उनकी देखभाल के लिए वहाँ नहीं जाता था इन लोगों के बच्चे तो वैसे ही ऐसी दशा में उधर जाकर नहीं फटकते थे, कि कहीं बाबा जी कुछ काम न बतला डालें।

ज्ञानव्रत जब कभी वहाँ पहुँचता और इधर-उधर मक्खियाँ भिनकती देखता तो नाक चढ़ाकर कहता, "यह क्या गन्दगी फैलाई हुई है? आपका तो ढसरा ही बिगड़ गया है पिताजी! जहाँ जी चाहता है बैठ कर टट्टी कर लेते हो। अगर यहाँ से दस कदम खेत के अन्दर जाकर टट्टी फिर लिया करो तो क्या पैर टूट जायें?"

मुंशी चतुरसिंह पड़े-पड़े यह सुन रहे थे। ज्ञानव्रत के इस उपदेश से उनके अन्दर से एक ग्लानि सी उत्पन्न हुई और तुरंत ही उन्हें जोर की टट्टी लग आई। वह झोंपड़ी से निकल कर बाहर ही बैठ गये। एक कदम भी और आगे बढ़ाना उनके लिए कठिन था।

यह देखकर ज्ञानव्रत ने समझा कि पिताजी वहाँ उसी की चिढ़ से बैठ गये हैं। उसे बड़ा जबरदस्त क्रोध आया उन पर। उसे बरदाश्त न करते हुए उसने मुंशी जी को दोनों कंधों से ऊपर उठा कर जोर से खेत में जा पटका और कड़क कर कहा, "टट्टी फिरने की जगह वह नहीं है, यह है।"

मुंशी चतुरसिंह को जमीन पर पटकना था कि उनकी कई हड्डियाँ चर-चर करके टूट गईं और उनकी जबान से यही निकला, "ज्ञानव्रत मुझे न मार, ज्ञानव्रत मुझे न मार, ज्ञानव्रत मुझे न मार।"

मुंशी जी बेहोशी में केवल यही वाक्य कहे रहे थे, "ज्ञानव्रत मुझे न मार।"

कस्बे भर का वातावरण इसी अफवाह से आच्छादित हो गया कि ज्ञानव्रत ने अपने बूढ़े पिताजी को इतना मारा इतना मारा कि बेचारों के बचने की भी आशा नहीं है।

मुंशी चतुरसिंह को उनके लड़के एक खाट पर डाल कर ऐसी अवस्था में उस हवेली के अन्दर लाये जहाँ से एक दिन उन्हें निकाला गया था और उन बहुओं ने जोर-जोर से दहाड़ें मार-मार कर रोना शुरू किया जिन्हें अपने पतियों से मुंशी चतुरसिंह की बुराइयाँ करने में मजा आता था। इन्होंने एक दिन उन्हें बनबास दिला कर कुँए की झोंपड़ी में भिजवा दिया था।

रामायण के युग से वह विपरीत अवस्था भी इस परिवार ने देखी कि जिसमें बेटों के द्वारा पिता को बनबास दिया गया और बेटों के विरह में पिता का प्राणांत न होकर उनके हाथों से उनकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गईं।

ज्ञानव्रत अकेला बैठक में बैठा था और उसके कानों में मुंशी चतुरसिंह के वे शब्द पड़ रहे थे जो वह जरा होश आने पर कहने लगते थे, "ज्ञानव्रत मुझे न मार, ज्ञानव्रत मुझे न मार।"

ज्ञानव्रत अब भी अकेला बैठा हुआ दाँतों को किटकिटा रहा था और अपने से ही कहता जा रहा था, 'अब पता चला है कि परवश को मारने से उसकी आत्मा को कितना कष्ट होता है। मेरे इस शरीर पर आपने बचपन में कितनी कमचियाँ तोड़-तोड़ डाली हैं, इसका तो आज हिसाब ही नहीं है मेरे पास। शरीर पर चोट लगने से कितना कष्ट होता है, इसका अन्दाज आज लग रहा है आपको।'

इसी समय मुंशी चतुरसिंह ने अंतिम हिचकियाँ लीं और उनका प्राणान्त हो गया। ध्यानव्रत ने ज्ञानव्रत को आकर सूचना दी, "पिताजी का देहावसान हो गया भाई साहब!"

"तो ठीक है, तुम जाकर अर्थी वगैरा का प्रबन्ध करो ।" गम्भीरता पूर्वक ज्ञानव्रत ने कहा ।

"लेकिन पैसा तो एक भी नहीं है घर में ।" गर्दन नीची किये हुए ध्यानव्रत बोला ।

ज्ञानव्रत का पारा फिर जरा तेज हो गया और वह झुंझलाता हुआ बोला, "तो कोई चीज गिरवीं रखकर रुपये का इन्तजाम कर लो । यह मिट्टी तो ठिकाने लगानी ही पड़ेगी । पिताजी मर तो गये लेकिन हमारे परिवार को भी जिन्दा ही मौत के मुँह में धकेल गये ।"

ध्यानव्रत ने भी अपने बड़े भाई साहब की इस बात को अटल सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया ।

बाबू अग्निदत्त और उनकी स्त्री को इस हादसे का पता चला तो उनकी आत्मा हिल उठी और उन्हें दिखलाई दिया कि वह इमारत, जिसकी जड़ों को ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने खोखला कर दिया था, अब चंद घंटों के अंदर जमीन पर गिरने वाली है ।

राम प्रकाश को जब यह खबर मिली तो उसके दिल पर भी धक्का-सा लगा और वह परेशानी महसूस करके इधर-उधर घूमने लगा ।

मुंशी चतुरसिंह इस अंतिम अवस्था में अपने बच्चों के जेलखाने में बन्द थे और उनके पास तक कोई परिन्दा भी पर नहीं मार सकता था । रामप्रकाश बाबू अग्निदत्त के पास आया और उन्हें इस हादसे की कहानी सुनाई । फिर वहाँ जाने की इच्छा भी प्रकट की और जाने के लिए बाबू अग्निदत्त भी बेचैन हो रहे थे ।

इसी समय कस्बे में दूसरी हवा फैली कि मुंशी चतुरसिंह का देहा-वसान हो गया । बाबू अग्निदत्त वहीं जमीन पर माथा पकड़ कर बैठ गये और उन्हें लगा कि उनकी पीढ़ी का वह अंतिम आँखों के सामने आने वाला इन्सान भी जाता रहा ।

मुंशी चतुरसिंह की अर्थी धूमधाम के साथ निकाली गई । उनकी अर्थी के ऊपर कागजी विमान भी बनाया गया कि जिस पर बैठ कर

वह सीधे स्वर्ग को जा सकें । रामप्रकाश और बाबू अग्निदत्त ने भी अर्थी पर दुशाले डाले ।

लेकिन उनके शव को जलाने के लिए ज्ञानव्रत ने असली घी के बजाय एक कोटोजम का दो पौंड का डिब्बा ही मँगाया और थाल में सामग्री उससे अधिक नहीं थी जितनी वह अपने जवानी-पहरे में किसी तीज-त्यौहार को हवन में जला दिया करते थे ।

: ३६ :

बाबू अग्निदत्त नौकरी से रिटायर होकर सरावे में आये थे । उनके पास रुपयों की न्योलियाँ रखीं थीं, गाँव भर का यही खयाल था । उन न्यौलियों में सभी उनके पास उठने-बैठने वाले खुलकर अपना हाथ डालना चाहते थे । चौधरी नागरसिंह का खयाल था कि अगर इन लोगों की आपस में फौजदारी हो गई और दोनों फ़रीकों के सिर फूट गये तो फिर मुक़दमे बाजी की बागडोर बाबू अग्निदत्त की तरफ़ से उनके हाथों में रहेगी और एक आध न्यौली मुक़दमे के ख़र्च के लिए उन्हें दे दी जायगी । धर्मप्रकाश सोच रहा था कि वह इन दिनों बाबू अग्निदत्त का सबसे नज़दीकी विश्वास पात्र है । इसलिए न्यौली उसके हाथों में रहेगी । दूसरे फ़रीक के लोग-बाग भी इसी तरह के अपने गुनताले लगा रहे थे । वे जानते थे कि ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के पास रुपयों की न्योलियाँ नहीं धरी हैं, लेकिन जब फँस जायेंगे तो चाहे बहुओं के जेवर बेचने पड़ें, रुपया तो जुटाना ही होगा ।

ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के सलाहकार और बाबू अग्निदत्त के पास उठने-बैठने वाले लोग-बाग रात को अपनी सभायें अलग से करते थे और अपनी कामयाबी पर पूरी तरह से प्रसन्न थे । वे हर हालत में बाबू अग्निदत्त और ध्यानव्रत तथा ज्ञानव्रत की फौजदारी कराने पर आमादा थे । धर्मप्रकाश भी इन लोगों से पूरी तरह मिला हुआ था ।

ज्ञानव्रत ने अपने सलाहकारों के पास संध्या को बैठकर कहा, "राजू आया था मेरे पास और वह चार दिन का बच्चा हमारे और आप लोगों के सम्बन्धों को तुड़वाना चाहता था। उसकी चालाकी को मैंने जड़ से ही काट दिया।" एक उभार था इस समय ज्ञानव्रत के सीने में कि वह राजू के जाल में न फँस सका।

"आपने बहुत ठीक किया भाई साहब! ये लोग आपकी ताक़त को कमज़ोर करना चाहते हैं।" एक ने उभर कर कहा। "साथी लोग एक बार ही मिलते हैं। बार-बार किसी को साथी नही मिला करते।"

"मैं क्या समझता नहीं हूँ इनकी चालबाजियाँ। ख़ाली हिन्दुस्तान का ही तजुरबा मेरे पास नहीं है। मैंने देश-विदेशों की ख़ाक छानी है। यह चार दिन का लड़का मुझे मूर्ख बनाने आया था। नादानी थी उसकी। टका सा जवाब लेकर चला गया यहाँ से।"

ज्ञानव्रत की ये बातें सुनकर उसके साथी दिल से उसे मूर्ख समझकर भी ऊपर से ऐसे हँसे कि मानो उसे दाद ही दे रहे हैं उसके राजू को दिये गये अक्लमन्दी पूर्ण जवाब पर।

बाबू अग्निदत्त के दिल में भी इन दिनों उतावलापन सवार हो चुका था। वह अपनी जायदाद पर जल्द-से-जल्द कब्जा करके खेती करना चाहते थे। यह उतावलापन उनके दिमाग़ में कुछ तो उनके पास बैठने वालों ने और कुछ रामप्रकाश की मदद के आश्वासनों ने पैदा कर दिया था। लेकिन इस उतावलेपन की जड़ में चौधरी नागरसिंह का प्रधान हाथ था।

रामप्रकाश किसी काम से सरावे से बाहर गया हुआ था। वह सहारनपुर गया था अपनी पेंशन के सिलसिले में। उससे पीछे ही धर्मप्रकाश ने चालाकी से उस खेत में अपने चचा अग्निदत्त से हल जुड़वाने का प्रोग्राम बनवा दिया। चौधरी नागरसिंह ने खुम ठोककर हिम्मत बढ़ाई और कहा, "आपको अगर जरा भी आँच आती हुई देखूँगा तो

मैं फौरन मैदान में कूद पड़ूँगा। पिता जी की कसम खाकर कहता हूँ कि जिस हमदर्दी के साथ उन्होंने आपके परिवार का साथ दिया था उसी के साथ मैं भी दूँगा।"

चौधरी नागरसिंह अग्निदत्त के खास आदमियों में से थे और इनके पिता की हमदर्दी के कारनामे को तमाम कस्बा जानता था। अपने क़दम को सही समझते हुए बाबू अग्निदत्त ने उस डेढ़ बीघे खेत में हल जुड़वा दिया। उन्हें विश्वास था कि अगर ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने हमला किया तो धर्मप्रकाश के साथी और चौधरी नागरसिंह उन्हें ज़मीन पर बिछा देंगे और उनका बाल भी बाँका नहीं होने देंगे। चौधरी नागरसिंह ने इधर इनसे हल जुड़वाया और उधर जाकर ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के सलाहकारों को सूचना दे दी, "मामला तैयार है। अब देर नहीं होनी चाहिये। मार बाबू अग्निदत्त को ऐसी लगे कि शरीर किसी काम का न रहे। ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत से कह देना कि उनका कोई भी मददगार सामने नहीं आयगा। खूब जी खोलकर उनकी ठुकाई करें।"

"यही होगा चचा! तुम निसाखातिर रहो। बस फिर तुम उधर से मुक़दमे की बागडोरें संभालना और हम लोग इधर से संभालेंगे। इन पढ़े-लिखों की गर्दनें अब बिना पढ़े लिखों के हाथों में आई हैं। इन्हें ऐसा नचाना है कि बच्चा जिंदगी भर याद रखें।" ज्ञानव्रत के साथियों में से कालूमल बोले।

"अब तुम जानो कालूमल! हमने तो तुम्हारे कहने के मुताबिक़ बाबू अग्निदत्त को धार पर रख दिया। बस इस साल के एक मजदूर की मजदूरी बाबू अग्निदत्त के सिर डालकर अदालत की कचौड़ियों का ढंग बनाने की बात सोची है। अब देखना है कि तुम्हारे पिट्ठू क्या गुल खिलाते हैं?"

धर्मप्रकाश के दिल में बाबू अग्निदत्त की तरफ से ग़ुबार कुछ कम

नहीं था। यों ऊपरी नीति से वह उनसे मिलता था और चाचाजी-चाचाजी भी कहता था, लेकिन अन्दर तो उसके ज़हर भरा हुआ था। बाबू अग्निदत्त की शक्ल सामने आते ही उसे वह दिन याद आ जाता था जिस दिन उसे एक घंटे में मकान खाली करना पड़ा था। उसे वह दिन भूला नहीं था जब उसे अपने मकान से अपनी भाजड़ ढोकर बेर के हाथीखाने में बसेरा लेना पड़ा था। उसे वह दिन भी नहीं भूला था जब बाबू अग्निदत्त को उसने मकान की दीवार बनवाते समय खींचकर नीचे गिरा दिया था और अपने हुक्म से उनका क़ानून हासिल किया हुआ मकान बनने से रोक दिया था। वह उस दिन को भी नहीं भूला था जब बाबू अग्निदत्त कलक्टर का हुक्म लेकर थाने के दारोग़ा को मुआयने के लिए बुलाकर लाये थे और दारोगा ने उसे करारी फटकार बतलाकर झाड़ते हुए कहा था, 'तुम कौन होते हो काम को रोकने वाले। ख़बरदार जो आइन्दा कभी ऐसी गुस्ताख़ी की।'

"आज दिल में गुभे हुए सब काँटे निकालने हैं यारो!" धर्मप्रकाश ने अपनी चौकडी में बैठते हुए कहा। "मामले की वह जड़ जमादी है कि अब तो बाबू साहब को उसमें फँसना ही पड़ेगा।"

सबने धर्मप्रकाश की राय-में-राय मिलाकर उसकी पीठ ठोकते हुए कहा, "बस कमाल कर दिया तुमने। रामप्रकाश भाई साहब अगर यहाँ होते तो वह कभी नहीं मानते इस बात को।"

बाबू अग्निदत्त का खेत में हल जुड़वाना था कि ज्ञानव्रत और ध्यान-व्रत लंगोटा कसकर, लाठियाँ लिये, नटों की तरह कूदते चले आये और अपने चचा को अनाप-शनाप गालियाँ फटकारनी शुरू कर दीं।

बात गालियों तक ही सीमित नहीं रही। वे दोनों मारने को भी चिपट गये और उन्हें धक्का देकर ज़मीन पर गिरा दिया। फिर एक ने उनके हाथों को पकड़ा और दूसरे ने पैरों को। खेत में मिट्टी के डले फोड़ने वाले बेजान लकड़ी के सपाट मैड़े की तरह उन्हें खेत में घसीटना

शुरू कर दिया। लात और घूँसों की मार लगाने में भी कोई कमी उन लोगों ने अपनी तरफ से नहीं छोड़ी।

फिर ज्ञानव्रत एक तरफ़ खड़ा होकर बोला, "अब बुलाओ अपने तरफ़दारों को। आज हमें उन गुण्डों को भी देखना है जिनके दम पर तुम कूदकर यहाँ हल जोड़ने चले आये हो। आज उनकी भी गुण्डाई निकालनी है हमें।"

"मेरा तरफ़दार कोई नहीं है, सिर्फ परमात्मा है मेरा तरफ़दार तो।" चारों ओर निराशाजनक वातावरण देखकर भी बाबू अग्निदत्त ने धैर्य के साथ कहा। वह देख रहे थे कि उनके पास बैठकर नित्य चाय पीने वाले उनके साथियों का कहीं पर भी पता नहीं था और धर्म-प्रकाश के वे पहलवान साथी, जिनकी ताक़त, जिसे उन्होंने इधर कुछ दिन से अन्दर-ही-अन्दर अपनी ताक़त समझकर पर, नाज़ करना शुरू कर दिया था, वहाँ से गायब थे। चौधरी नागरसिंह का तो कहीं पता ही नहीं था। बाबू अग्निदत्त असहाय ज़मीन पर पड़े थे। ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत यमदूतों की तरह उनकी छाती पर खड़े ललकार रहे थे उनके पौरुष, ताकत, हक और हकूकों को। बाबू अग्निदत्त सोच रहे थे कि क्या ये ही वेमुंशी चतुरसिंह के बच्चे हैं जिन्हें वह मेरठ में दिल्ली से अंगूर ला-ला कर खिलाया करते थे, जिनकी पढ़ाई में आधा रुपया उन्होंने खर्च किया था, जिन्हें उनकी बहुओं के साथ रेलवे का पास लेकर उन्होंने लाहौर, कराची और जाने कहाँ-कहाँ की सैर कराई थी और यह वही ज्ञानव्रत है जिसकी बहू को उनकी स्त्री ने मुँह दिखाई में सोने की माला दी थी, —बस यहीं पर उनकी विचार-धारा मौन हो गई और उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये।

धर्मप्रकाश के दिल के वे काँटे अभी तक नहीं निकले थे जो बाबू अग्निदत्त ने उसे मकान से निकाल कर उसके दिल में चुभोये थे। आज मौका पड़ने पर वह भी हँस रहा था बाबू जी को ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के खूँखार पंजों में फंसा हुआ देख कर। वह तो आज चाहता था कि

किसी प्रकार इन दो फरीकों की आपस में झड़ें इलझ जायें तो उसे मजा आ जाये और फिर वह एक तरफ बैठ कर तमाशा देखे। ये दोनों आपस में झगड़ते रहें और उसका भी वख्तन-फवख्तन उल्लू सीधा होता रहे।

लेकिन धर्मप्रकाश का दस बारह वर्ष का लड़का उसकी इस राजनीति की चाल से अनभिज्ञ था। उसने जब अपने बाबा जी को ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के द्वारा इस तरह पीटे जाते हुए देखा तो वह कुए की तरफ चिल्लाता हुआ दौड़ा। वहाँ इत्तफाक से रामप्रकाश आगया था। यह बात किसी को भी पता नहीं थी।

"ताउजी बाबाजी को मार डाला, उन्हें बचाओ।" धर्मप्रकाश का लड़का घबराया हुआ रामप्रकाश से बोला।

रामप्रकाश उसी तरह उधर को लपक लिया। उसने धोती भी पूरी तरह से नहीं बाँधी थी और धोती की लाँग बाँधता हुआ ही वह उधर को दौड़ा।

उधर ज्ञानव्रत फिर कड़क कर बोला, "तुम्हारा हिमायती परमात्मा है तो बुलाओ उसी हरामजादे परमात्मा को। उसे भी आज हमें देखना है कि वह कैसे तुम्हें जमीन दिलाता है!"

ज्ञानव्रत का इतना कहना था कि खेत के डौले से रामप्रकाश ने चिल्ला कर कहा, "शर्म नहीं आती तुम लोगों को अपने चचा पर हाथ छोड़ते हुए। एक तरफ हट जाओ नहीं तो अभी तुम्हारी हड्डियाँ तुड़वा डालूँगा।"

रामप्रकाश की आवाज सुनी तो ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत चौकन्ने से रह गये। उनकी सूचना के अनुसार तो रामप्रकाश सहारनपुर गया हुआ था और धर्मप्रकाश-एण्ड-कम्पनी को उनके साथियों ने एक तरफ करके बिठला दिया था।

बाबू अग्निदत्त के कानों में रामप्रकाश की आवाज आई तो उन्हें लगा कि मानो रामप्रकाश के रूप में परमात्मा की मदद उसके पास आगई। उनके निर्जीव पड़े शरीर ने भी हरकत करनी प्रारम्भ

कर दी। उन्होंने जरा हिल-जुल कर देखा तो उनमें जान बाकी थी और वह उठ कर खड़े भी हो सकते थे।

ध्यानव्रत ने सोचा कि अब दबने से काम नहीं चलेगा और वह दनदनाता हुआ सीधा रामप्रकाश के पास जा पहुंचा। रामप्रकाश खाली हाथ था और ध्यानव्रत के हाथों में कान से भी ऊँची पोलेदार लाठी थी। उसने लाठी उठा कर एक सीधा वार रामप्रकाश पर कर दिया और रामप्रकाश कलाबाजी खाकर खेत में गिर गया। लाठी का वार आँख से ऊपर मस्तक पर हुआ और खून की बेतहाशा धार वह निकली।

इसी समय ज्ञानव्रत भी अपनी लाठी लेकर रामप्रकाश पर दूसरा वार करके उसे वहीं खत्म कर देने के लिए लपका; परन्तु बाबू अग्निदत्त ने कस कर ज्ञानव्रत के दोनों पैरों को पकड़ लिया और वह तिलमिला कर वहीं जमीन पर गिर पड़ा। बाबू अग्निदत्त उसे वहीं दबा कर बैठ गये और उन्होंने महसूस किया कि उनमें अभी ज्ञानव्रत से अधिक जान थी।

रामप्रकाश का सिर फटने से खेल का रंग ही बदल गया। धर्मप्रकाश, जो अभी तक तमाशा देख रहा था, अपनी चौकड़ी को लेकर उधर लपका और दूसरी तरफ से रामप्रकाम पड़ा-ही-पड़ा चिल्ला कर बोला, "अबे हीजड़ो! जान से ही मरवा कर तुम्हें चैन आयगी क्या?"

उसका इतना कहना था कि ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत की लाठियाँ उनसे छिन कर उन्हीं के शरीरों पर बरसने लगीं और थोड़ी देर को तो उनकी ऐसी छिताई हुई कि मानो अनाज के पैरों पर किसानों की थपकियाँ बरस रहीं थीं।

बाबू अग्निदत्त ने देखा कि यह तो सर्वनाश का लक्षण पैदा हो गया। ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत की दशा खराब हो चुकी थी और वे जमीन पर ही पड़े-पड़े कराह और सिसक रहे थे। इसी समय धर्मप्रकाश का एक साथी ज्योंही लाठी लेकर ज्ञानव्रत की तरफ लपका तो बाबू अग्निदत्त लपक कर ज्ञानव्रत के ऊपर लेट गये और बोले, "बस अब

कोई भी आदमी वार नहीं करेगा।" और लाठियां जमीन पर रख दी गईं।

ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत दोनों हाथ जोड़-जोड़ कर माफी माँग रहे रहे थे। लड़ाई यहीं पर बन्द हो गई।

बाबू अग्निदत्त और उधर ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत के साथी लोग उस समय सामने आये जब दोनों तरफ की छिताई-पिटाई समाप्त हो चुकी। उन्हें लेजाकर थाने में रिपोर्ट लिखाने तथा हापुड़ के हस्पताल में दाखिल कराने में उन लोगों ने रेडक्रास सोसायटी के मेम्बरों का काम दिया। काफी दिलचस्पी से काम किया उन लोगों ने। सलाह मशविरे में वे लोग किसी समय भी पीछे नहीं रहते थे और हर समय इस बात का खयाल रखते थे कि कहीं मामला दब कर यहीं पर न रह जाय।

इसके बाद इन लोगों के नाते-रिश्तेदारों ने भी आना शुरू किया। बाबू अग्निदत्त के समधी आये और दोनों फरीकों से मिलकर बोले, "कितने दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे पढ़े-लिखे खांदान में ये जाहिलों वाले कारनामे हो रहे हैं। जो हो चुका सो हो चुका, अब उसी तक इसे सीमित रखना। अगर अदालतों की तरफ गये तो फिर बरबादी है। सब-के-सब तवाह हो जाओगे और हाथ किसी के कुछ आने-जाने वाला नहीं है।"

ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के ससुर साहब भी आये और अपने दामादों को देख कर तथा मुकदमे की सलाह देकर वहाँ से चले गये। उन्होंने बाबू अग्निदत्त और रामप्रकाश के पास जाना भी मुनासिब नहीं समझा।

ज्ञानव्रत का छोटा बहनोई भी आया और अपने सालों की यह दशा देखकर उसकी आँखों में आँसू भर आये। फिर जरा जोश में आकर बोला "दो लड़कों पर चचा इतने आदमियों को लेकर टूट पड़े, शर्म नहीं आई उन्हें। रुपये-पैसे की तुम चिंता न करना! मैं भी तुम्हारे ही लिए कमाता हूँ। डाक्टर को रुपया देकर जर्बे-शदीद लिखाओ और डटकर

मुकदमा लड़ो।" पूरी तरह हिम्मत बँधाकर उसने दो सौ रुपये के करारे नोट निकाल कर ज्ञानव्रत के हाथों में दे दिये।

दो सौ रुपये की गर्मी ने ज्ञानव्रत का वह दिमाग, जो मजबूरी में पड़कर फौजदारी अदालत में जाने से टालमटोल कर रहा था, एक दम फुदकने लगा। उसने डाक्टर से बात-चीत करके अपना मुकदमा मजबूत बनाने के लिए दो सौ रुपये में जर्बेशदीद का प्रमाण-पत्र ले लिया।

उधर जब रामप्रकाश को इस बात की सूचना मिली तो उसके भी पैर उखड़े और उसने बाबू अग्निदत्त को मुकदमा बनाने की राय दी। लेकिन बाबू अग्निदत्त मामले को अभी भी दबाने के ही फिराक में थे। वह फौजदारी मुकदमा चला कर और झंझट में फंसना तथा गवाहों की खुशामद में उनके दरवाजे झाँकना पसंद नहीं करते थे।

वह बोले, "रामप्रकाश! जो भगवान् को मंजूर है, वही होगा। समझ लो कि मैं न तो रिश्वत दूँगा और न गलत बात के लिए लड़ूँगा ही। हमारे परिवार के दुर्दिन ही हैं जो ये सब बातें हो रही हैं। राजू मना करके गया था लेकिन मैंने चौधरी नागरसिंह के कहने में आकर यह सब साँग रच डाला है। गलती मेरी ही है। अब मुकदमा लड़ना न चाहते हुए भी गले पड़ा ढोल तो बजाना ही होगा, तुम फिक्र मत करो। हम सचाई पर हैं, परमात्मा हमारा अवश्य साथ देगा।"

"आपकी क्या गलती है?" गुस्से में आकर रामप्रकाश बोला। वह बाबू अग्निदत्त को निराश नहीं होने देना चाहता था। "पैसे की मेरे पास कमी है वरना मैं तो एक कौड़ी भी आप से खर्च नहीं कराता-और इन नालायकों को बतला देता कि मुकदमा लड़ना किसे कहते हैं। आप नहीं जानते कि अदालत में अदालती सबूतों से ही काम चलता है। सच्चाई और आपके भगवान् तो बेचारे एक कोने में कहीं मुँह छिपाकर बैठे रह जाते हैं। हजारों को सजाएँ कराई हैं हमने और हजारों सचाई के पुतलों को चक्कियाँ पीसनी पड़ी हैं। अदालत के मजिस्ट्रेट भी क्या

दूध के धुले हुए होते हैं ? चंद चाँदी के टुकड़ों पर उनकी राल ऐसे टपकती है जैसे बिल्ली चूहे को देखकर मचल जाती है। सब अपना उल्लू सीधा करने की सोचते हैं। उनकी बला से बूढ़ा मरे या जवान, उन्हें तो अपने दलिया-मांडे से काम रहता है।"

"पैसे की चिंता मत करो रामप्रकाश ! ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के सब रिश्तेदारों की कलई अगर मैंने न खोल दी तो मेरा नाम भी अग्निदत्त नहीं।" जरा उभर कर बाबू अग्निदत्त ने कहा और रामप्रकाश की बात को मानते हुए विश्वास दिलाया कि कोशिश में कोई कमी नहीं की जायगी।

फिर जरा संभल कर बोले, "उस दिन की चौधरी नागरसिंह की हरकत तुमने सुनी है क्या रामप्रकाश ? हम लोग तो यहाँ हस्पताल में पड़े थे और वह मुझसे रुपये लेजाकर बाजार में ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के खासुलखास सलाहकार कालूमल के साथ पेड़े खा रहे थे। हम लोगों की आपसी लड़ाई ने उन लोगों को हमारा मखौल उड़ाने का मौका दिया, यह कितने शर्म की बात है।"

"चाचा जी ! आपने रेलवे की सीधी-सादी नौकरी की है। आप इन हरामजादों को क्या जानें ? इनकी नसें तो जिंदगी भर मैंने तोड़ी हैं और इन्हें मैं ही ठीक-ठीक पहचानता भी हूँ। ये लोग किसी के भी साथी नहीं हैं। वख्त पड़ने पर आपने देखा था उस दिन कि सब काई की तरह फट गये थे और झगड़ा खत्म होने पर फिर कैसे गिद्धों की तरह इकट्ठे हो गये। इन गिद्धों की खोपड़ियाँ भी एक दिन यदि मैंने न नुचवाईं तो मेरा नाम भी रामप्रकाश न समझना। आज ये लोग हमारे सिरों पर बैठकर मजा उड़ाना चाहते हैं, यह सब दिनों का ही फेर है।"

बाबू अग्निदत्त भतीजे की हमदर्दीपूर्ण बातें सुनकर धीरे-धीरे अपने दिल की पुरानी खलियों को धोकर उन पर मरहम लगाने की चेष्टा करने लगे और यह सोचने लगे कि शायद इस दुर्भाग्य में से ही परिवार का भाग्य-सूर्य उदय हो जाय।

रामप्रकाश ने अपना सिर फुड़वाकर अपनी हमदर्दी का पूरा-पूरा सबूत बाबू अग्निदत्त के सामने पेश कर दिया था। इससे अधिक वह और कर भी क्या सकता था। बात भी सच थी कि यदि उस दिन वह उनकी मदद के लिए न आता तो बाबू अग्निदत्त का सरावे में अपने भतीजों से इस प्रकार पिट कर ठहरना असम्भव था। अब बाबू अग्निदत्त का दिल रामप्रकाश के विश्वास की धारा में पहिले से बहुत अधिक वेग के साथ बहना प्रारम्भ हो गया था।

इसके बाद दोनों ने एक साथ रामप्रकाश की झोंपड़ी पर बैठ कर चाय पी और एक-आध पराँठा भी खाया।

लेकिन रामप्रकाश यह सब कुछ परिस्थितियों के वश ही कर रहा था। उसके दिल में जो जलन थी वह कम होने वाली नहीं थी। बाबू अग्निदत्त शान के साथ उस बैठक पर मूढ़े डाल कर बैठते थे जो गाँव के एक खास मौके पर थी और रामप्रकाश यहाँ जंगल में फूंस की झोंपड़ी के अन्दर पड़ा था, यह बात चौबीसों घंटे उसके दिल को कचोटती रहती थी।

मजबूरी में ही यह सब उसे बरदाश्त था, क्योंकि उसकी माली हालत काफी गिर चुकी थी। वह बाबू अग्निदत्त से धीरे-धीरे काम लेकर अपनी दशा में सुधार करना चाहता था और ऐसी योजना बना रहा था कि जिससे सारी जमीन उसके हल के नीचे चली आये। वह जानता था कि गाँव में पैसे की ताकत से ज्यादा आदमी की ताकत काम देती है। और वह ताकत उसके पास थी। उसमें उसे बाबू अग्निदत्त की जरूरत नहीं थी।

: ३७ :

कम अक्ल और खुदगर्ज रिश्तेदारों की शै पाकर ज्ञानव्रत ने अदालत की तरफ आखिर रुख करें ही लिया। खुद ही अपने चचा बाबू अग्निदत्त को मारने के लिए मैदान में उतरा और खुद ही पिट-पिटा कर डाक्टर

को पैसे देकर जर्बशदीदें लिखाईं और मुकदमा संगीन बना बैठा। इधर ऊपर से अदालत में न जाने की बातें करता रहा और उधर मेरठ जाकर इस्तगासा भी दायर कर दिया।

कस्बे की फिजा में एक नई ताजगी पैदा हो गई। दोनों फरीकों के सलाहकारों की मजलिसें जुड़नी शुरू हुईं और दोनों तरफ के लिए कस्बे के उम्दा-उम्दा गवाह तालाश किये जाने लगे। जो गाँव में मुअजिज कहलाने वाले लोग थे, वे किसी के भी खिलाफ अदालत में गवाही के लिए नहीं जाते थे, लेकिन इस मुकदमे में कस्बे के मुअजिज चौधरी लोग भी गवाही के लिए गये और खूब उलट-पलट कर गवाहियाँ दीं। गवाहों ने करकेंटों की तरह रंग बदले और बाबू अग्निदत्त ने जमाने की यह नई रंगत देखी।

धर्मप्रकाश ने चचा अग्निदत्त से आकर कहा, "चाचा जी गवाहियों पर रुपया खर्च करने में अगर आप कंजूसी करोगे तो हम सब लोगों को जेल-खाने में जाना होगा। आपके लिए हम लोगों ने सिर फुड़वा लिए। अब कम-से-कम हमें जेलखाने भिजवाने की तो न सोचिये।"

"कंजूसी मैं नहीं करता धर्मप्रकाश ! लेकिन रुपया कहीं पेड़ से नहीं झड़ता है। कितनी मुसीबत से रुपया कमाया जाता है यह तुम नहीं जानते ? जहाँ जेल जाने या न जाने की बात है वहाँ मैं भी तुम्हारे साथ हूँ।" बाबू अग्निदत्त ने सरलता पूर्वक कहा।

धर्मप्रकाश बाबू अग्निद का उत्तर सुनकर अन्दर-ही-अन्दर जल-भुन गया।

इस मुकदमे के दौरान में बाबू अग्निदत्त से रुपया ऐंठने की न केवल उनके आस-पास बैठने वालों ने ही कोशिश की, वरन् रामप्रकाश ने भी पूरी-पूरी घातें लगाईं। कभी मीठी और कभी तीखी बातें वह करता था और यह जतलाता था कि उसके मन के अन्दर से पुरानी बातें सब साफ हो चुकी हैं और अब तो वह आगे की जिंदगी अपने चचा अग्निदत्त के साथ मेल और मोहब्बत से ही चलाना चाहता है।

बाबू अग्निदत्त का विश्वास भी कुछ-कुछ रामप्रकाश में जमता जा रहा था।

धर्मप्रकाश की चालबजियों से वह अनभिज्ञ नहीं थे और उसकी घातें भी वह स्पष्ट समझते थे। कि उसने उनका साथ इन्साफपसंदी के लिए नहीं दिया है।

एक तरफ फौजदारी का मुकदमा चल रहा था और दूसरी तरफ बरसात शुरू हो चुकी थी। रामप्रकाश बाबू अग्निदत्त से बोला, "बस यही मौका है चाचा जी ! कुल जमीन पर कब्जा करने का। यह मौका हमें हाथ से नहीं खोना चाहिए। अगर यह मौका हाथ से चला जाने दिया तो फिर जिंदगी में यह हाथ आने वाला नहीं है।"

"लेकिन कुल जमीन पर तो मैं कब्जा नहीं करना चाहता। मैं तो अपने हिस्से की ही जमीन चाहता हूँ। सबको अपने-अपने हिस्से की जमीन मिल जानी चाहिए।"

बाबू अग्निदत्त संजीदगी के साथ बोले।

"फिर वही बातें करने लगते हैं आप तो चाचा जी ! इन पाजियों ने क्या अपनी करनी में कुछ कसर छोड़ी है ?" गुस्से में आकर रामप्रकाश बोला। "इन्हें एक बार यहाँ से पूरी तरह खदेड़ दूँगा और जब ये गिड़-गिड़ाकर अपनी जमीन माँगेंगे, तब आप इन्हें दे देना।"

बाबू अग्निदत्त को दब जाना पड़ा रामप्रकाश की इस बात के सामने क्योंकि उन लोगों ने जो व्यवहार किया था वह वाकई इस काबिल था कि उन पर कोई रहम की गुंजाइश नहीं थी। वे लोग इंसानियत से बेईद बातें कर चुके थे।

बाबू अग्निदत्त बोले, "तो ठीक है रामप्रकाश! जो तुम कहते हो वही करो। मुझे कोई ऐतराज नहीं है। तुम तमाम जमीन पर कब्जा कर लो और इन लोगों को एक बार यहाँ से भगा दो, जिससे ये समझ सकें कि सिर्फ गुण्डा-गर्दी से ही दुनियाँ में काम नहीं चलता। लेकिन इतना ध्यान रहे कि जब फैसले की बात चार आदमी सामने लायें तो फैसले

में आना-कानी नहीं करनी होगी। क्योंकि इस तरह बिना तकसीम के मामला उलझता ही जायगा और उसमें सुलझने की सबील कभी निकलेगी ही नहीं।"

रामप्रकाश ने बाबू अग्निदत्त की यह बात मानली और बाबू अग्नि-दत्त ने दो नये बैल भी खेती करने के लिए रामप्रकाश को मँगवा दिये। एक नये बैलों की जोट गलों में टल्लियाँ बाँधे कस्बे के अन्दर से निक-लती हुए कुए पर पहुंच गई।

आज कस्बे में फिर सनसनी थी कि पूरी जमीन पर रामप्रकाश और अग्निदत्त के हल चल रहे हैं। अफावाहें जोर पकड़ रही थीं और कुछ लोग कह रहे थे कि ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने तो यहाँ तक सोचा हुआ है कि वे रात को अपनी माता जी को मार कर कुए पर डाल जायेंगे और पुलिस में जाकर इन लोगों के नाम लिखा देंगे। लेकिन अफवाहों में भी आज कहीं से यह आवाज नहीं आई कि ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत अपनी चौकड़ी के साथ लाठियाँ लेकर मैदान में आ उतरेंगे और अपने चचा अग्निदत्त और भाई रामप्रकाश के हलों को अपने खेतों के अन्दर घुसने से रोक देंगे। उनकी पहलवानी का जोर सिर्फ माता जी को मार कर चचा और भाई पर इल्जाम लगाने तक ही महद्‌दूद हो गया था। लेकिन बाद में सुनाया गया कि इस काम के लिए उनकी माता जी तय्यार नहीं हुईं।

आतंक और भय का वातावरण कुए के चारों तरफ आच्छादित था परन्तु रामप्रकाश और बाबू अग्निदत्त अपनी करनी से बाज नहीं आये। उनके चार हलों ने देखते-देखते उन सभी खेतों को, जिनमें ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत चौधरी शक्तिसिंह के मरने के बाद से आज तक खेती कर रहे थे, जोत डाला। ज्ञानव्रत का वह फार्म जिसमें लुढ़िया आलू की खेती करके उसने लाखों के ख्वाब देखे थे, रामप्रकाश और बाबू अग्निदत्त की जोत के नीचे चला गया।

कोई भी मुखालफत करने के लिए नहीं आया। तमाम जमीन को जोत डालने में जरा सी भी दिक्कत पैदा नहीं हुई। ज्ञानव्रत और ध्यान-

व्रत, दोनों पहलवान इस समय अपने तमाम रसूकों को इस काम में लाने के लिए रात-दिन चकरदंड फिर रहे थे कि किसी तरह रामप्रकाश और बाबू अग्निदत्त को सजा करा डालें। इस समय उनकी पूरी ताकत इसी काम पर खर्च हो रही थी। खेती कमाने से ज्यादा अहम काम उनके पास इन दिनों मुकदमा लड़ाना था। घर-खर्च चलाने के लिए हरकली कमा रही थी और ध्यानव्रत की बहू भी अब अध्यापिका हो गई थी।

जिस मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा था वह काँग्रेसी महोदय थे। ध्यानव्रत की इन दिनों काँग्रेसी दाहिरे में काफी रप्त-जप्त हो गई थी। हपुड़-गाँधी-आश्रम के इंचार्ज महोदय भी उनकी सिफारिश में इधर-उधर फिरते थे और इधर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चुनाव में भी उसने बड़ा भारी काम किया था। जो महाशय मैम्बर बने थे वह कचहरी में वकील थे और ध्यानव्रत के मुकदमे में काफी दिलचस्पी ले रहे थे। विला महनताने पेशियाँ भुगताने के अलावा अपने कांग्रेसी रसूकों को भी वह ध्यानव्रत के लिए इस्तेमाल करने में गुरेज नहीं करते थे।

इधर हरकली ने भी शहर हापुड़ में अपना बहनजीपना काफी व्यापक बना लिया था और चुपके-चुपके मौका निकाल कर वह उसी मजिस्ट्रेट महोदय के यहाँ तक बच्चों को पढ़ाने के लिए पहुंच गई थी। अपनी जड़ें हरकली ने काफी मजबूत कर लीं और एक दिन इस नाटकीय ढंग से रो-रोकर उसने अपने भाइयों पर अपने चचा की जियादतियों का बयान किया कि मजिस्ट्रेट महोदय द्रवित हो उठे और वह बोले "बहन जी! आप बेफिक्र रहें, हम इन्साफ करेंगे।"

अब उसकी सुफारिश बहुत पूरी थी। इधर से जो कांग्रेसी दाहिरे का दबाव मजिस्ट्रेट साहब पर पड़ा तो वह बात की तह तक पहुंचने में कामयाब ही न हो सके। अन्दर से हरकली का नाटक और ऊपर से कांग्रेसी तबके का दबाव, दो चक्की के पाटों के बीच में मजिस्ट्रेट फंस गये।

हरकली के मन की कली अंदर-ही-अंदर खिल उठी। उसे निश्चय हो गया कि उसने काम मार लिया।

उधर चौधरी नागरसिंह और चौधरी अमलसिंह जो बाबू अग्निदत्त के साथी थे उनके नाम भी ज्ञानव्रत ने मुलजिमों में इसलिए लिखा दिये थे कि जिससे वे बाद में उनकी गवाहियाँ न दे सकें। लेकिन सबसे मजेदार बात यह थी कि जिन लोगों ने ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत की हड्डियाँ तोड़ी थीं और लाठियाँ बरसाई थीं उनमें से डर के मारे वे एक का भी नाम नहीं ले पाये। उन्हें भय था कि यदि उनके नाम उन्होंने मुलजिमों में लिखा दिये तो फिर गाँव में रहना ही मुहाल हो जायगा। चौधरी नागरसिंह भी अपनी एक सिफारिश लेकर एक दिन मजिस्ट्रेट साहब के घर पर उनसे मिले और बोले, "हुजूर इस मामले में ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के साथ वाकई ज्यादती हुई है। लेकिन मेरा नाम तो इन लोगों ने खामखा ही बाबू अग्निदत्त के पास उठने-बैठने की वजह से ले दिया है। मैं गाँव का मुखिया ठहरा, भला मुझे इन झमेलों में पड़ने की क्या जरूरत है ?"

मजिस्ट्रेट को हँसी आ गई यह सुनकर और वह चौधरी साहब से बोला, "आप वाकई बेगुनाह दीखते हैं चौधरी साहब ! आप बे फिक्र रहिये हम इंसाफ करेंगे।"

चौधरी नागरसिंह यह सुनकर वहाँ से खुशी-खुशी चले आए। अपने मन से उन्होंने मजिस्ट्रेट का खयाल अपनी तरफ से ठीक कर लिया था। लेकिन बात सच यह थी कि उन्होंने पूरा मुकदमा-का-मुकदमा ही खराब कर दिया। मजिस्ट्रेट के दिमाग में जो थोड़ा-बहुत शक भी था वह भी उन्होंने ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत की तारीफ करके रफा कर दिया।

इस मुकदमे में गवाहों की सौदेबाजी भी खूब अच्छी पटी। एक गवाह महोदय को एक दिन बाबू अग्निदत्त की बैठक में बिठलाकर धर्मप्रकाश बोला, "चाचा जी ! आप नहीं जानते कि यह महाशय अगर गवाही देने भी जा रहे हैं तो इनके हमारे पुराने रसूक हैं जिस वजह से जा रहे हैं। जितने रुपये यह आपसे ले रहे हैं उतने तो ये तब लेते थे जब पंचायत के मेम्बर भी नहीं थे। आज तो इनकी वकत अदालत और

सरकार दोनों में बहुत बढ़ गई है।" धर्मप्रकाश ने यह वह राज खोल कर बतलाया कि जिसे उसके खयाल से बाबू अग्निदत्त नहीं जानते थे।

बाबू अग्निदत्त मुस्कराते हुए बोले, "इसमें क्या शक है। हमारे पंडित जी, जिन्होंने आज तक हमेशा ही हमारे परिवार की शादियाँ कराई हैं और जो हमारे कुलगुरु भी हैं और आप सभी लोग उनकी इज्जत भी करते हैं, उन्होने कल दस रुपये लेकर उनकी गवाही दी थी। यह ठीक है कि यह मैम्बर हैं पंचायत के, लेकिन वह भी तो आखिर कुलगुरु हैं।"

"अजी उनकी गवाही को कौन पूछता है। ऐसे कुलगुरुओं की अब अदालत में वकत नहीं रही है। हम लोग तो जनता के चुने हुए नुमाइन्दे हैं। हमारी बात का जो असर होता है अदालत पर वह उनका कहाँ हो सकता है।" जरा गर्व के साथ उस गवाह ने कहा। पंचायत का मेम्बर चुना जाने से उसकी इज्जत बढ़ गई थी और इसलिये उसकी गवाही का महानता भी बढ़ जाना चाहिए थी। वह अपना पुराना ही महनताना ले रहा था बाबू अग्निदत्त से। यह चौधरी धर्मप्रकाश का जौहर था, उनके रसूकों का लाभ था, जो वह अपने चचा को अहसान के बतौर पहुँचा रहा था। कस्बे के लोगों पर उसका कितना असर है, यह वह जताना चाहता था। लेकिन बाबू अग्निदत्त भी जानते थे कि यह सब उनके पैसे की करामात है जो ये मेम्बर महाशय यहाँ दुम दबाये बैठे थे और अपने पंचपने की कीमत उनसे माँग रहे थे।

"अच्छा भय्या तो पाँच रुपये और ले लेना बस! लेकिन ये दूँगा मैं गवाही के बाद में ही। कल नहीं देखा था तुमने वह दूसरे तुम्हारे साथी, ऐन मौके पर आँखें दिखलाने लगे। दस रुपये तै करके फिर वक्त पर दस और देने पड़े। भला यह भी कोई इंसानियत है। आदमी को ठोक-बजाकर एक बार सौदा पक्का कर लेना चाहिए।"

मतलब यह है कि कोशिशों में किसी भी तरफ से कोई कमी नहीं रखी गई। गवाहों की तोड़-फोड़ पर काफी रुपया खर्च हुआ और नये तथा पुराने दबावों और रसूकों को भी काम में लाया गया। जिनके मुंह देखने

की इच्छा नहीं होती उनकी पीठें चुमकारनी पड़ीं। जिनसे बातें करने की बाबू अग्निदत्त जरूरत नहीं महसूस करते थे उनके व्यंग्य और कटाक्ष सुनने पड़े, सहन करने पड़े और बाबू अग्निदत्त ने यह सब कुछ किया।

फैसले से तीन दिन पूर्व अफवाह फैली कि ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने चार सौ रुपया देकर मुकदमा अपने हक में करा लिया। रामप्रकाश बाबू अग्निदत्त से बोला, "इस समय आपको रुपया खर्च करने में कोताई नहीं करनी चाहिए चाचाजी! रुपया किसी का माई बाप नहीं होता लेकिन इज्जत मोती की आब के समान होती है। एक बार जाने के बाद फिर हाथ नहीं आती।"

"कोताई मैं नहीं करता रामप्रकाश! लेकिन कुछ काम भी तो बने। रिश्वतें देना और लेना, दोनों ही जुर्म हैं। एक जुर्म में तो फंसे ही पड़े हैं, कहीं ऐसा न हो कि दूसरे में भी फँस जायें। चौबे जी छब्बे बनने चलें और दूबे भी न रहें। मजिस्ट्रेट वहीं हथकड़ियाँ पहनवाकर जेल भिजवा दे।"

रामप्रकाश पर यह रुपया बाबू अग्निदत्त से ऐंठने का जोर धर्मप्रकाश डाल रहा था। लेकिन बाबू अग्निदत्त इस चक्कर में आने वाले नहीं थे। इन चालाकियों की तह तक अब वह पहुँचने शुरू हो गये थे और किसी प्रकार अपने को इस दलदल से निकाल लेना चाहते थे।

मुकदमे का फैसला सुनाया गया और उसमें बाबू अग्निदत्त तथा उनके छः साथियों को एक-एक माह की कैद और सौ-सौ रुपया जुर्माना हो गया। ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत को यह फैसला पहले से ही मालूम था। इसलिये वे लोग बिना जमानत का इन्तजाम किये अदालत में आये थे। इन लोगों की जमानतें ली गईं और वहाँ से सब लोग चुप-चाप कस्बे को चले आये।

रात को हरकली ने हवेली के दालान में घीका दिया जलाकर कहा, "आज मेरे भय्यों ने दुश्मनों पर विजय प्राप्त की है। आज से ज्यादा खुशी का दिन हमारी जिंदगियों में फिर नहीं आ सकता।"

ज्ञानव्रत ने भी अकड़ के साथ अपनी चौकड़ी में बैठकर मूंछों को ऐंठा, और बोला, "मुझे तो मौका ही आज मिला है अपने दिल की कसक निकालने का। चाचा जी मूर्ख थे जो उन्होंने हमें तौहीन-अदालत के मुकदमे में जेल नहीं भिजवाया और हमारी वह अक्लमन्दी थी कि हमने अदालत में उनके पैर छूकर मुआफी माँग ली। हमारा क्या घिस गया इसमें। लेकिन जब आज इन साँपों के फन हमारे जूतों के तलों के नीचे आ चुके हैं तो हम उन्हें रगड़े बिना न छोड़ेंगे। एक बार कब्जे में आ जाने पर बख्शना नादानी है। हम लोग पृथ्वीराज चौहान के जैसी मूर्खता इस जिंदगी में नहीं कर सकते।"

"तुम्हारी मुस्तकिल मिजाजी की हम लोग सब दाद देते हैं।" उनमें से एक ने उभर कर कहा, "लेकिन आपको यह भी मानना होगा भाई साहब ! कि हम लोगों ने भी आपका भरसक साथ देने में कोई कसर उठा नहीं रखी।"

ज्ञानव्रत फूल कर कुप्पा हो गया अपनी होशियारी पर। वह आज दिल से कृतज्ञ थे अपने साथियों का जिन्होंने उसका साथ दिया था। इसी समय हरकली भी वहाँ कलई के थाल में एक तरफ पेड़े और दूसरी तरफ जरा-सी हल्दी, चावल और घी का दीपक रखे आ पहुँची। बहिन हरकली को देखकर सब लोग खाट से उठ खड़े हुए और उसने आगे बढ़कर ज्ञानव्रत तथा उसके सब साथियों को तिलक किये और फिर पेडे बाँटते हुए बोली, "भय्या ज्ञानव्रत का आप सब लोगों ने साथ दिया, इसके लिए मैं आप सब की दिल से आभारी हूँ।"

उधर बाबू अग्निदत्त और रामप्रकाश ने फौरन जजी में अपील की और मजिस्ट्रेट की अदालत में अपील की नकल भिजवाकर अपनी जमानतें ऊपर की अदालत से मंजूर करा लीं।

मुकदमे की सुनवाई हुई और पहली ही पेशी पर जज ने सब मुलजिमों को बरी कर दिया

इस फैसले के सुनाये जाने से कस्बे की फिजा में आकाश-पाताल का

अंतर हो गया। ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत जिस जमीन पर एक लम्बा-चौड़ा फार्म बनाने का ख्वाब देख रहे थे उसकी चप्पा-चप्पा जमीन उनके हाथों से निकल गई और अब वे केवल हवेली के ही मालिक रह गये सरावे में, जिसकी ऊँची अटारी पर बैठकर वे अपने फार्म की निगरानी करना चाहते थे।

: ३८ :

रामप्रकाश का तमाम जमीन पर कब्जा हो गया। उसके रास्ते के काँटे ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत सरावे से बिदा हो गये। अब उसने अपना सीधा रुख बाबू अग्निदत्त की तरफ किया। उनसे जो कुछ भी रुपया वह ऐंठ सकता था, ऐंठ चुका था। बैल वह लिवा ही चुका था और साल भर की एक मजदूर की मजदूरी भी ले चुका था। खेतों में बीज डलवा कर उसकी भी रकम उसने बाबू अग्निदत्त से वसूल कर ली थी। अब तो फसल के अनाज में से बाबू अग्निदत्त का हिस्सा देने की बात बाकी रह गई थी और किसी का लेकर देने की बात रामप्रकाश के उसूल के खिलाफ थी। यह उसूल उसे विरासत में अपने पिता शक्तिसिंह से मिला था। बड़े ही गर्व के साथ मूछों पर ताव देकर वह कहा करते थे :

लेकर दिया, कमा कर खाया।
बिरथा मानव-जन्म गँवाया।

रामप्रकाश अपने पिताजी के उसी उसूल पर पाबन्द रहना चाहता था।

बाबू अग्निदत्त की चार हजार की डिग्री का रुपया अकेले रामप्रकाश को ही भरना पड़ा था। उसके आधे रुपये की वह ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत पर नालिश कर चुका था और इस नालिश का खर्चा भी बाबू अग्निदत्त ने दिया था। यह एक नया मुकदमा रामप्रकाश का ध्यानव्रत और ज्ञानव्रत के साथ चालू हो गया था।

मतलब यह था कि उसकी अब कोई गर्ज बाबू अग्निदत्त के हाथों में

अटकी हुई नहीं रही थी । एक दुश्मन को वह परास्त कर चुका था और अब उसका रुख दूसरे दुश्मन, यानी बाबू अग्निदत्त की तरफ मुखातिब हो चुका था ।

इसी बीच चन्द रिश्तेदारों ने बीच में पड़कर फिर दुबारा से फैसले की चर्चा चलाई और सोचा कि किसी तरह यह परिवार बरबादी से बच जाय । रिश्तेदारों ने तीनों फरीकों पर जोर दिया और इस फैसले के अन्दर ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के ससुर महोदय भी तशरीफ लाये ।

लेकिन रामप्रकाश अब फैसले के लिए तय्यार नहीं था । सारी जमीन का वह अपने को मालिक समझता था । शुरू में उसने कोशिश की कि फैसला न करने की बात बाबू अग्निदत्त की तरफ से चले और वह ईमानदार ही बना रहे, लेकिन बाबू अग्निदत्त तो पहले से ही फैसले के हक में थे । वह तो जब रामप्रकाश के साथ मिले भी थे तो तब भी उन्होंने फैसले की बात साफ कर ली थी ।

तीनों फरीकों ने अपने-अपने तीन पंच मुकर्रिर कर दिये । जब तीनों पंचों ने फैसला कर लिया और तहसील में कुरे दाखिल होने का दिन आया तो रामप्रकाश ने अपने पंच को तहसील में नहीं जाने दिया और फैसले की बातचीत वहीं पर समाप्त हो गई ।

इस फैसले की बात ने गाँव-बिरादरी और रिश्तेदारों के सामने बेई-मान की बेईमानी को खोल कर रख दिया ।

बाबू अग्निदत्त और रामप्रकाश की शामलात खेती हुई थी । फसल का अनाज खलिहान में पहुंच गया था । बाबू अग्निदत्त तमाम दोपहरी पैरों में बैठे रहे, लेकिन शाम को पैरी गाह कर जो अनाज का ढ़ेर लगा वह गाड़ी में भरवाकर धर्मप्रकाश ने अपने घर भिजवा दिया और कह दिया, "भाई साहब यही कह गये हैं । कल वह आजायेंगे, जैसा कहेंगे हो जायगा ।"

आज फिर उन लोगों की दूसरी फौजदारी होने की खबर थी । लेकिन

राजू भी आज अकसमात सरावे में पहुंच गया था। वह पैरी में से बाबू अग्निदत्त को साथ ले कर चुपचाप अपने घर चला गया। किसी भी प्रकार की कोई रुकावट उसने धर्मप्रकाश के अनाज ढ़ोने में डालनी पसंद नहीं की और अपने पिताजी को समझा दिया, "आप इन्हें जो करते हैं करने दीजिये। इनका पोतपूरा इस अनाज को घरमें भरने से भी नहीं होगा। आप देखेंगे कि एक दिन इनकी बेईमानी निश्चित रूप से इनके सामने आयगी ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत की दशाएँ आप देख ही चुके हैं। एक दिन आप इन्हें फिर देख लेना अपने सामने गिड़गिड़ाते हुए।"

रामप्रकाश आज सरावे में मौजूद नहीं था। दूसरे दिन सुबह-ही-सुबह वह कस्बे में आ गया। राजू अपने पिताजी के साथ जाकर कुए पर उससे मिला और पूछा, "क्या इसी काम के लिए आपने खेती कराई थी ?"

"धर्मप्रकाश ने बेवक़ूफी की है। तू फिकर न कर राजू! यह सब ठीक हो जायगा।" रामप्रकाश ने गर्दन नीची किये हुए कहा।

"फिक्र मैं इन नाचीज चीजों की नहीं किया करता भाई साहब! आप जानें और आपका काम जाने। मुझे तो न पहिले ही खेती करनी थी और न आज ही मैं खेती करना चाहता हूँ। आपके कहने से यह सब कुछ किया था। आपने यह चंद टकों का अनाज अपने घर में भर लिया, तो वह भी मेरा ही घर है।

वेद प्रकाश के बच्चे मेरे अपने ही बच्चे हैं। अच्छा अब मैं जाता हूँ। आप जैसा ठीक समझें करें, अब पिता जी भी आपके पास इसके लिए नहीं आयँगे।" और इतना कह कर राजू अपने पिताजी के साथ वहाँ से लौट आया।

लेकिन रामप्रकाश की गर्दन ऊपर को न उठ सकी। वह गर्दन नीची किये अपनी बेईमानी के भार से दबा चुपचाप बैठा रह गया

श्रौर वास्तव में श्राज उसे बेईमान उसके छोटे भाई धर्मप्रकाश ने बनाया था।

बाबू अग्निदत्त समझ गये कि रामप्रकाश के दिमाग में भी वही फितूर आ चुका है जो एक दिन ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के दिमागों में आ गया था। जब तक यह फितूर इसके दिमाग में रहेगा, तब तक इससे बातें करना बेसूद है। इसका दिमाग भी फेल हो चुका है।

बाबू अग्निदत्त के दोनों बैल रामप्रकाश के पास कुए पर दिन में चले जाते थे और रात को वे उन्हीं के घर पर बंधने के लिए आजाते थे। राजू ने दूसरे ही दिन दो आदमी भेज कर रातों-रात अपने बैलों को सरावे से बाहर भेज दिया। रामप्रकाश अपना असली रूप प्रकट कर चुका था और अब उसे अधिक समझना उनके लिए बाकी नहीं रह गया था।

बाबू अग्निदत्त के बलों का सरावे से जाना था कि कस्बे में फिर से नई कानाफूंसियाँ चलनी शुरू हो गईं। यह तो सरावे भर में हवा फैल ही गई कि अब बाबू अग्निदत्त और रामप्रकाश के आपसी ताल्लुकात खत्म हो गये और अगर अब रामप्रकाश पर कोई मुसीबत आई, तो बाबू अग्निदत्त उसका साथ देने वाले नहीं हैं।

ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत की तमाम जमीन उनके हाथों से छिन चुकी थी, इसका मलाल उनके दिलों में कम नहीं था। बाबू अग्निदत्त और राम प्रकाश के जेल चले जाने पर वे लोग एक बार फिर तमाम जमीन में अपना हल घुमाने का स्वप्न देख रहे थे। लेकिन उनका यह स्वप्न जजी अदालत ने पूरा नहीं होने दिया।

बाबू अग्निदत्त और रामप्रकाश के साफ छूट जाने का धक्का ज्ञानव्रत ध्यानव्रत और हरकली को इतना जबरदस्त लगा कि चार दिन तक ये लोग उस हवेली की दीवारों से बाहर नहीं निकले।

ज्ञानव्रत को तो अब कस्बे में मुँह दिखलाते भी शर्म आती थी। आखिर वह क्या मुंह लेकर जाय कस्बे में। उसके चेहरे पर मुर्दनी सी

छा गई थी और जीवन में निराशा का घोर अंधकार। उसका मस्तिष्क कुछ भी काम नहीं कर सकता था इस समय।

इसी शशोपंज में वह बैठा था कि जीवन का आगामी क्या कार्य-क्रम निर्धारित करे। इतने में कालूमल नें कमरे में प्रवेश करते हुए कहा, "अरे भाई साहब! आपने तो घर से निकलना ही छोड़ दिया। आखिर क्या हो गया जो वे लोग छूट गये। एक बार सजाएं तो आपने करा ही दीं। यह क्या कम चोट दी है आपने उन लोगों को?"

लेकिन ज्ञानव्रत को इस फुसफुसाहट से तसल्ली न थी। वह गम्भी-रता पूर्वक बोला, "यह सब ठीक है भय्या कालूमल! लेकिन तमाम जमीन के तो मालिक रामप्रकाश और चचा बनकर बैठ ही गये। सजा भी नहीं हुई और जमीन भी हाथ आ गई।"

"लो एक मजेदार बात सुनाता हूँ तुम्हें।" जरा सुधर कर ज्ञानव्रत की पाँयत पर बैठते हुए कालूमल बोला।

"अरे यहाँ न बैठिये भय्या कालूमल! इस पर बैठिये।" पास को मूढ़ा सरकाते हुए ज्ञानव्रत बोला, और उत्सुकता से पूछा, "क्या कोई खास बात सामने आई है?"

"खास ही नहीं, बहुत खास। यानी तख्ता ही उल्टा जा सकता है अब। सब रंग ही बदल गया है मामले का।" कालूमल ने बतलाया।

"जरा सुनूँ भी तो, क्या बात है वह?"

"बाबू अग्निदत्त और रामप्रकाश की आपस में तनातनी हो गई है। कल रामप्रकाश ने बाबू अग्निदत्त का अनाज नहीं बाँटा और आज बाबू अग्निदत्त ने अपने बैलों को सरावे से कहीं बाहर भेज दिया।"

"बहुत खूब! कालूमल जी बहुत खूब! यह तो आपने लाख रुपये की बात बतलाई। इसका मतलब यह हुआ कि अब दोनों में पूरी-पूरी नाचाकी हो गई।" ज्ञानव्रत बोला।

"बहुत पूरी। बल्कि यों कहना चाहिये कि दोनों की बोल-चाल भी

बन्द हो गई । अब रामप्रकाश के किसी भी मामले में बाबू अग्निदत्त एक कौड़ी खर्च करने वाले नहीं हैं ।" कालूमल बोला ।

"तुम्हारी यह बात तो मैं मान गया भय्या कालूमल ! लेकिन अब हमें करना क्या चाहिए ? जरा यह भी तो सुझाओ ! तुम सच समझो कि इधर इन परेशानियों ने दिमाग बिलकुल फेल कर दिया है मेरा ।" सरलता पूर्वक ज्ञानव्रत ने अपने दिली हमदर्द कालूमल से कहा ।

कालूमल की आत्मा अन्दर-ही-अन्दर प्रसन्न हो गई । उन्होंने ज्ञानव्रत का इतना जबरदस्त विश्वास प्राप्त कर लिया था कि अब ज्ञानव्रत आँख मींचकर उनकी सलाह पर काम करने लगा था ।

कालूमल ने न जाने कहाँ-कहाँ के रिश्ते निकालकर ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत की स्त्रियों से भी बातें करनी शुरू कर दी थीं । वह ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत, उनकी स्त्रियाँ, हरकली, हरकली की माता जी सभी के मनों में बस गया था और सभी का विश्वास उसने पा लिया था ।

ज्ञानव्रत के मकान के सामने एक ब्राह्मणों का घर था । उसमें एक बेवा रहती थी । उसके पास पंद्रह सौ रुपया था, जो उसने अमानत के बतौर ध्यानव्रत को अपने सम्बन्धियों द्वारा लूटे-खसोटे जाने के भय से, दे दिया था । यह रुपया बेचारे ध्यानव्रत के मुकद्दमे में खर्च हो गया । वह मजबूर था इस समय उसे लौटाने में और उसका ही क्या, वह बेचारा रुपया किसी का भी नहीं लौटा पा रहा था । उसके घर की हालत बराबर गिरती जा रही थी । उसके बड़े साले से भी आजकल उसकी इसीलिए नहीं पटती थी कि उसके साले के दिल में यह दर्द था कि उसके पिताजी अपना रुपया, जो उनका लड़का होने के नाते उसे मिलना चाहिए था, इन पर खर्च करते चले जा रहे थे ।

कालूमल को इन पंद्रह सौ रुपये का इल्म था और कस्बे में बहुत से लोग जानते थे, लेकिन कोई लिखत-पढ़त नहीं थी उसकी । और फिर उस बेवा बेचारी की तरफ से खड़ा होने वाला भी कोई नहीं था ।

उस बेवा का रुपया तो ध्यानव्रत हज्म कर चुका था, लेकिन अभी दस

पाँच बीघे जमीन उसके पास और मौजूद थी। उस जमीन पर भय्या कालू-मल का दाँत जमा हुआ था। लेकिन यह जमीन उसके हाथ में ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत को परेशानियों में डालकर ही आ सकती थी, वैसे नहीं। क्योंकि उस जमीन पर दाँत ध्यानव्रत का भी था और कुछ लोगों ने तो यह भी अफवाह उड़ाई हुई थी कि उस बेवा के ध्यानव्रत से नाजायज सम्बन्ध भी हैं। नहीं तो भला वह पंद्रह सौ रुपये की रकम उठाकर कैसे इन महाशय के हवाले कर देती।

कालूमल जी बहुत गम्भीर मुद्रा बनाकर बोले, "भाई साहब ! यह कुछ कर गुजरने का वक्त है। आप लोग अगर हिम्मत करें तो मैं रास्ता बतलाता हूँ।"

"तुम रास्ता बतलाओ भय्या कालूमल ! मैं उस पर चलने को तय्यार हूँ।" ज्ञानव्रत एक किंकर्तव्य विमूढ़ पागल की तरह बोला।

"तो कल सवेरे के झुटपुटे में बस रामप्रकाश को संगवालो। तुम और ध्यानव्रत क्या अकेले रामप्रकाश को नहीं निबटा सकते ? सोते को ही दबालो बस ! खाट से उठने न पाये। अगर कोई बाहर का आदमी आया तो हम लोग देख लेंगे। मार के पीछे फिर पुकार-ही-पुकार होती फिरती है। रामप्रकाश का काँटा निकल जाने पर धर्मप्रकाश को तो ऐसे समझो जैसे नाखून का मैल।"

बात ज्ञानव्रत की अक्ल में बैठगई। घर में कोई भी ज्ञानव्रत की अक्ल में आई हुई बात से उसे हिला-डुला नहीं सकता था। उनकी स्त्रियाँ और उल्टा प्रोत्साहन ही देती थीं उनको और उनके पौरुष को ललकारती थीं।

हरकली बहिन ने तो कभी अपने वीर भाइयों को कम हिम्मती दिख-लाने का आशीर्वाद दिया ही नहीं था। उसने तो हमेशा ही रण पर चढ़ने को जाते हुए उनके माथों पर टीके किये थे और आज तो वे अपने बड़े भाई को सोते हुए खटिया पर धरदवाने की घात में लाठियाँ और बल्लम लेकर जा रहे थे। ऐसी दशा में तो उनकी वीर देवियों ने भी उनके माथे पर तिलक किये और भीगी हल्दी पर चार-चार चावल चिपकाये।

तमाम जमीन पर कब्जा करने की आग ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के कलेजों पर धधक रही थी। कस्बे में ऊँची गर्दन करके निकल नहीं सकते थे, इस शरमिंदगी से वह कोई महान् पराक्रम कस्बे के सामने पेश करके ही उभर सकते थे। इस समय उसी पराक्रम के लिए वे जा रहे थे।

रामप्रकाश की कुए की झोंपड़ी की आवाज जहाँ-जहाँ तक पहुंच सकती थी वहाँ तक कालूमल ने अपने साथियों को फैला दिया था और मजबूती के साथ ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत को उसने आगे बढ़ने का आश्वासन दिया।

ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने रामप्रकाश को सोते में दबा लिया और एक साथ दो लाठियों की चोट उसके दोनों घुटनों पर पड़ीं। फिर एक बल्लम उसकी जाँघ में घुसकर पार हो गया और इसी तरह उसके दोनों हाथों को भी इस तरह छेत दिया गया जैसे सन के पेड़ को उसका बक्कल उतारने के लिए छेता जाता है।

वह लाख चीखा-चिल्लाया लेकिन वहाँ कोई भी उसका सगा-साथी नहीं था। ये लोग तब वहाँ से चले, जब समझ लिया कि अब वह बच नहीं सकता। चलते समय ये लोग उसकी बन्दूक भी उठाकर अपने साथ ले गये।

तमाम कस्बे में शोर मच गया। रामप्रकाश को बहुत देर में होश आया। उसका सारा शरीर टूट चुका था। हाथों और पैरों को हिलाने की उसमें ताकत नहीं थी। पुलिस में रिपोर्ट दर्ज हुई और रामप्रकाश ने इस गंभीर हादसे की बौखलाहट में ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के साथ बाबू अग्निदत्त पर भी अपना शुबहा जाहिर कर दिया।

रामप्रकाश को मेरठ हस्पताल में ले जाया गया और वहाँ उसे देखने के लिए सभी लोग गये। बाबू अग्निदत्त का हजार दिल चाहा कि वह रामप्रकाश को जाकर देख आयें लेकिन उन्हें शर्म आई वहाँ जाने में। जिस रामप्रकाश को देखने के लिए वह हजार झगड़ों और मुकदमेबाजियों के बावजूद भी सहारनपुर गये थे, उसे देखने के लिए सरावे और मेरठ में

भी वह न जा सके। उन्हें दुःख था इस बात का कि रामप्रकाश ने उन पर ऐसे घृणित काम में योग देने का संदेह किया।

बाबू अग्निदत्त के दिल के दर्द को वह ही अनुभव कर सकते थे। रामप्रकाश ने उन्हें पहचानने में जबरदस्त भूल की। रुपये-पैसे या जमीन के लिए बाबू अग्निदत्त अपने भतीजे को मारने की सलाह कभी दे हाँ नहीं सकते थे। कोई भी गलत काम करते उनका दिल काँपता था और फिर इस किस्म का गलत काम तो वह कर ही नहीं सकते थे जिसका मार-पीट से ताल्लुक होता। फिर रामप्रकाश ने एक दिन उन्हें ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के चंगुल से बचाया था, इसलिए उनके दिल के किसी कोने में आज भी अपने इस भतीजे के लिए स्थान बाकी था।

रामप्रकाश को देखने के लिए जाने वालों में ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के ससुर महोदय भी थे, जो वहाँ उसके पास बैठकर आँखों से आँसू बरसाते हुए रोकर बोले, "ये खान्दान की बरबादी के लक्षण हैं रामप्रकाश ! मुझे तो रोना आता है यह देखकर कि इतना तालीमयाफ्ता खानदान है और इस तरह बरबाद हो रहा है।"

सुनकर रामप्रकाश अपनी उस हालत में भी बोला, "ठीक है मौसाजी ! आप लोगों की शिक्षा में ये लोग जो कुछ भी कर गुजरें वह कम ही है।" इससे अधिक बोलना उसने पसंद नहीं किया और आँखें बन्द करके एक तरफ को करवट ले-ली। वह इन महाशय का मुँह देखना भी पसंद नहीं करता था।

ज्ञानव्रत के ससुर महोदय को यह सुनकर भी लज्जा नहीं आई और वह जब हस्तपताल से निकले तो बाहर के दरवाजे पर अपने एक आदमी के पूछने पर खिलखिलाकर हँसते हुए बोले, "ठीक ही किया है ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने। इसका दिमाग भी आसमान पर चढ़ गया था। मैं तो कहता हूँ जरा सी कसर रह गई। वरना तो जहाँ इतना किया था, वहाँ एक-दो हाथ और मारकर काम ही तमाम कर देना चाहिए था। फिर

न बाँस ही रहता और न बाँसुरी ही बजती। सारा झंझट वहीं खत्म हो जाता।"

"कह तो आप बिल्कुल ठीक रहे हैं मुंशी जी!" उस आदमी ने कहा।

"अदालत की बातें तो सब बन-बना जातीं बाद में। सबूत दे दिया जाता कि शराबी गुण्डा था। गुण्डे लोग पास में आकर चौकड़ी जमाते थे। दूसरों के खेतों को कटवाना और उनके ढोरों को खुलवाना ही इसका पेशा था। छोटे-मोटे डाकुओं को भी वक्तन-फवक्तन यह अपनी बन्दूक देकर मदद कर दिया करता था। उन्हीं लोगों की कुछ जिद-बहस में इसकी यह दशा हुई है।" ज्ञानव्रत के ससुर अपनी तजुरबेकार मूंछों को ऐंठते हुए बोले।

"बात तो आपने बहुत पते की सोची मुंशी जी! ऐसी बातें तो कोई बैरिस्टर ही सुझा सकता है।" वह आदमी आश्चर्य प्रकट करता हुआ बोला।

"अरे! यह उम्र इन्हीं तजुरबों में तो खोई है।" जरा गर्व के साथ मुंशी जी बोले। मुंशी चतुरसिंह के ये समधी महोदय भी मिडिल स्कूल के हेडमास्टर होने के कारण आम लोगों में मुंशी जी के नाम से ही सम्बोधित किये जाते थे।

पुलिस हादसे की तहकीकात को गाँव में पहुंची। ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत तो उसी रात को लापता हो चुके थे। पुलिस दारोगा ने रामप्रकाश की रिपोर्ट के आधार पर बाबू अग्निदत्त के मकान की भी तालाशी ली, लेकिन वहाँ मिलना-जुलना क्या था? बाबू अग्निदत्त के खिलाफ पुलिस-दारोगा ने कोई रिपोर्ट नहीं की।

तीसरे दिन ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने अपनी जमानतों का प्रबन्ध करके, अपने को मेरठ में मजिस्ट्रेट के सामने पेश कर दिया और जमानतों पर छूटकर सीधे सरावे में आये। इस समय उनके सीनों में विजय का सा उभार था।

रामप्रकाश गाँव से जा चुका था। धर्मप्रकाश को इनके सामने पड़ते पसीना छूटता था। ये लोग अब फिर कानों से भी ऊँची लाठियाँ लेकर कस्बे में घूमने लगे और आम आदमियों से मिलने पर कहते, "भाई हम लोगों का खून भी तो आखिर पानी नहीं हो गया है। रामप्रकाश ने जब अपनी गुण्डई में कोई कसर नहीं छोड़ी तो आखिर हम ही क्या करते ? गाँव में सबके सामने हम खुले तौर पर ऐलान करते हैं कि हमने रामप्रकाश को मारा है। लेकिन अदालत के सामने हम यह कभी मँजूर नही करेंगे।"

"बिलकुल ठीक है तुम्हारा रास्ता।" उनके साथी कालूमल ने उनकी कमर थपथपाते हुए कहा।

"जब सीधी ऊँगली से घी न निकले तो तिरछी ऊँगली डालनी ही पड़ती है।" ज्ञानव्रत बोला—"हमने काफी सब्र से काम लिया। लेकिन जब पानी सिर से गुजरने लगा तो फिर हम ही क्या करते ?"

पुलिस ने केस को आगे बढ़ाया और अदालत ने ज्ञानव्रत तथा ध्यान-व्रत को दो-दो वर्ष की सख्त कैद की सजाएँ दीं। लाख कोशिशें कीं लेकिन कोई कारगर न हो सकी। दोनों भाइयों को अदालत ने जेल भेज दिया।

हाई कोर्ट में अपील ज्ञानव्रत की फुआ के लड़के ने जाकर की, जिसकी शादी उसके ससुर ने अपनी भाँजी से की थी और अपील का खर्चा उनके ससुर महोदय ने बड़ी ही खींच तान के पश्चात् दिया क्योंकि उन दिनों उनकी अपनी हालत भी ठीक नहीं चल रही थी। आँखों से दिखलाई देना बन्द हो चुका था और आमदनी का कोई जरिया इस समय उनके अपने पास नहीं था।

हाईकोर्ट की अपील के बहाने दोनों भाइयों की तीन-तीन महीने जेल में रहने के पश्चात् जमानतें हो गईं और दोनों जेल से छूटकर बाहर निकल आये। ज्ञानव्रत जेल से आने के बाद सरावे में दाखिल नहीं हुआ। उसे शर्म आती थी अब सरावे के उन लोगों के सामने निकलते जिनके

सामने उसने कभी रौब के साथ अपनी छितरी-छितरी मूछों के बालों को मरोड़ी दी थी ।

लेकिन ध्यानव्रत के पास गाँव में आने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं था ।

: ३६ :

बाबू अग्निदत्त को जब से रामप्रकाश ने धोखा दिया और तमाम अनाज उठाकर अपने घर में भर लिया, तब से उन्होंने अपनी बैठक के अलावा इधर-उधर जाना बिलकुल बन्द कर दिया। अब वह अपने ही चबूतरे पर घूमते हैं और अपने घर के अन्दर ही रहते हैं। वह और उन की स्त्री दो ही प्राणी हैं। उनका लड़का राजू अपने बाल बच्चों के साथ शहर में रहता है। गाँव में वह आता ही नहीं।

महीने में एक बार वह अपने लड़के से मिलने जाते हैं और कभी-कभी उनकी स्त्री भी साथ में चली जाती है। दूध-घी के लिए एक भैंस का पूरा दूध वह लेते हैं और उसी को जमा-बिलोकर अपना खर्च चला लेते हैं। साथ में चार-पाँच सेर घर का घी भी महीने में वह अपने बेटे और बेटे के बाल-बच्चों के लिए शहर ले जाते हैं और अपना महीने भर का खर्चा वहीं से ले आते हैं।

उनके अपने रहन-सहन में कोई फर्क नहीं आया। जैसा वह पहले खाते थे वैसा ही खाते हैं, जैसा पहनते थे वैसा ही पहिनते हैं और आनंद के साथ रहते हैं।

रामप्रकाश का जाल अपने ढंग का निराला ही है। किसी के काबू में आ जाने पर बख्शना तो वह जानता ही नहीं। जमीन तमाम घर की उसके पास है, लेकिन फस्ल में तीस-चालीस मन से कभी ज्यादा अनाज उसके यहाँ पैदा नहीं होता। हर साल वह नया साझी खेती में करता है और वर्ष के अन्त में वह साझी माथा पटक कर उसे बेईमान कहता हुआ उससे अलग हो जाता है। वर्ष के प्रारम्भ में जिस मुलाजिम को व

नौकरी पर रखता है उसका पूरा वेतन देना उसने सीखा ही नहीं और इसी लिए अब गाँव के मुलाजिमों ने उसके पास काम करना बन्द कर दिया है।

रामप्रकाश का एक साथी था, जिसने बाबू अग्निदत्त के सामने अनाज की गाड़ीं खलिहान से भरवाकर रामप्रकाश के घर पहुंचाई थी। उस पर शादी का उल्लू उसने चढ़ाया और बोला, "तुम इतना कमाते हो। आखिर इसका क्या बनेगा ? शादी क्यों नहीं कर लेते हो तुम ?"

"करना तो चाहता हूं लेकिन कोई अपनी लड़की दे भी तो मुझे ?' उसने दीन भाव से कहा। और शादी की कल्पना करके उसका सूखा शरीर भी सरस हो उठा।

"अरे लड़की की क्या बात है। मेरा दारोगाई के जमाने का एक वाकिफ है मेरठ में। पहाड़ी है। उसकी औरत की बहिन से तुम्हारी शादी कराये देता हूं। बारह सौ रुपया खर्च होगा इसमें। सो तुम्हारे जैसे कमाने वाले के लिए वह बाँये हाथ का खेल है।"

राजी कर लिया उसे और बारह सौ रुपयों में से पाँच सौ रुपया उस पहाड़ी को देकर एक पहाड़ी लड़की अपने इस साथी महोदय के गले में फंसा दी।

इस प्रकार सात सौ रुपये रामप्रकाश बीच में ही जीम गया। आज-कल यह एक जरिया था कमाई का रामप्रकाश के पास।

एक आटा पीसने की चक्की रामप्रकाश ने लगाई हुई थी और इनके अलावा इकत्तीस रुपया माहवार उसके पास पेंशन का आता था। सो ये सब मिलकर काफी था, उसके खर्चे के लिए। लेकिन इसमें अलल्ले-तलल्ले नहीं उड़ सकते थे। अलल्ले-तलल्लों के लिए वह शादी-विवाह वाला जरिया पकड़ा गया था। और उसी में से पुलिस के सिपाही और दीवान जी की दावतें भी वह करता था, यार लोगों को कभी-कभी कोटोजम के पराँठे भी वह इसी आमदनी में से खिलाता था और कभी-कभी अगर

कहीं रिश्वत देने की भी जरूरत होती थी तो तब भी ऐसा ही ज़रिया खोजता था।

बाबू अग्निदत्त ने दीवानी का मुकदमा जीत कर जब पीछे तकसीम दायर की थी तो जमींदारी समाप्त होने के कानून पर एसेम्बली में बहस चल रही थी और जमीनों की तकसीमें कानूनन रोक दी गई थीं।

इसीलिए बाबू अग्निदत्त का तकसीम का मुकदमा इल्तवा में चला गया था। लेकिन उन्होंने एक होशियारी की थी कि अपनी जमीन की सीर और खुदकाश्त उन्होंने ठीक करा ली थी और यह ठीक उन्होंने केवल खसरे और खतौनी में कराके ही संतोप नहीं किया था वरन् उन सब की नक्लें भी अपने पास ले ली थीं। इन दिनों बस ये नकलें ही उनकी जायदाद थी और इन्हीं के सहारे वह अपनी जायदाद पाने का इरादा रखते थे।

जमींदारी समाप्त होने पर सब लोग भूमिधर बन गये। अब सवाल जमींदारी की मिल्कियत का न रहकर काश्त और कब्जे मात्र का ही रह गया। जमीन अब उसकी थी जिसका कानूनन कब्जा था।

रामप्रकाश ने इस बीच में होशियारी से पटवारी के साथ मिलकर अधिकांश जमीन में अपनी काश्त लिखा ली थी और यह काम पटवारी ने चार सौ रुपये के सौदे में आसानी से कर दिया था। पुश्त-दर-पुश्त की खुद-काश्त और सीर पर उसने एक सेकिंड में कलम फेर दी।

यह पटवारी महोदय बाबू अग्निदत्त के भी अपने ही आदमी थे। वह बाबूजी के पास इस ताल-मेल में गये भी थे कि उनका कुछ दाल-दलिया हो सके। सिर्फ तीन सौ रुपये में ही वह उनका भाग्य चमत्कृत कर सकते थे। लेकिन बाबू अग्निदत्त ने साफ इन्कार कर दिया और बोले, "पटवारी जी! बड़े शर्म की बात है कि आप मुझसे भी इस किस्म की बातें करते हैं। आपके ससुर से हमारे क्या सम्बन्ध हैं, शायद यह आप नहीं जानते!"

"सब जानता हूँ बाबूजी ! लेकिन यह तो हमारी रोजी का सवाल है। ससुर साहेब क्या आकर मुझे रोजी दे जायेंगे ?"

"तो आप जैसा उचित समझें वैसा ही करें। मैं रिश्वत का एक पैसा भी किसी को खिलाने के हक में नहीं हूं और न एक कौड़ी दूंगा ही।"

पटवारी जी वहाँ से फुनफुनाते हुए अपना सा मुँह लेकर रामप्रकाश के पास जाकर बोले, "आज बाबूजी को मेरी बातों से बहुत निराशा हुई दारोगा जी ! मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया कि मैं दारोगा जी को वचन दे चुका हूँ, अब तो मुझे कागजात उन्हीं की मर्जी के मुआफिक बनाने पड़ेंगे। उन्होंने लाख हमारे ससुर का हवाला दिया, लेकिन मैं जो बात आपसे एक बार कह चुका, सो कह चुका, बात वही अटल रहेगी।"

"आदमी की तो एक ही बात होती है पटवारी जी !" रामप्रकाश मूढ़े से उठकर घूमता हुआ बोला और फिर धर्मप्रकाश की तरफ मुखातिब होकर कहा, "अबे देख क्या रहे हो ? पटवारी जी को दूध पिलाओ न !"

"दूध तो अभी-अभी पीकर आ रहा हूँ दारोगा जी !" पटवारी जी बोले।

"अजी पिओगे भी ! एक गिलास दूध क्या हलक में अटकता है ?" रामप्रकाश अपनी तेज नजरों को पटवारी जी पर डालता हुआ बोला। और पटवारी जी ने धर्मप्रकाश के हाथ से दूध का गिलास ले लिया। फिर धीरे-धीरे उसे होठों से लगाया और करीने के साथ पहिले ऊपर के झागों को और फिर दूध को पीना शुरू कर दिया।

आज किसी तरह रामप्रकाश ने दो सौ रुपये इकट्ठा किये और उन्हें पटवारी के हाथों में रखता हुआ बोला, "ये लीजिये पटवारी जी ! और कागजात ठीक करके तहसील में भेज दीजिये। कागजात जाते ही दो सौ रुपया और आपकी भेंट कर दिया जायगा, आप विश्वास रखें।"

और इतना कहकर रामप्रकाश पटवारी जी के पास ही मूढ़े पर बैठ गया।

"अजी विश्वास की क्या बात है भला आप ये भी तभी दे दीजि-येगा। आपकी तो जबान ही सब कुछ है मेरे लिए।" रुपये जेब में रखते हुए पटवारी जी बोले। अन्दर से पटवारी जी हाथ में आई रकम को वापिस देना नहीं चाहते थे लेकिन जाहिरदारी के लिए ये शब्द उन्होंने कह ही डाले।

रामप्रकाश ने वे रुपये वापस क्या लेने थे? पटवारी जी ने खसरे से बाबू अग्निदत्त, ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के नाम काटकर सब जगह राम प्रकाश और धर्मप्रकाश का ही नाम चढ़ा दिया। रामप्रकाश अब समझ बैठा कि वह पूरी जमीन का मालिक बन गया। एक दिन मुंशी चतुरसिंह ने भी तमाम जमीन पर अपना नाम चढ़वाकर पूरी जमीन का मालिक बनने की सोची थी और वही फितूर आज रामप्रकाश के दिमाग पर भी सवार था।

कागजात तहसील में पहुंचने के बाद पटवारियों को सरकार ने बर-खास्त कर दिया। उसके बाद पटवारी जी अपने दो सौ रुपये माँगने रामप्रकाश के पास न जाने कितनी बार आये लेकिन एक गिलास दूध के अलावा उन्हें और कुछ वसूल न हो सका। और वह दूध का गिलास भी आखिर एक गिलास मट्ठे में बदलता गया। एक फूटी कौड़ी भी और वह बेचारा न पा सका। अन्त में उसे यहाँ आना बन्द ही कर देना पड़ा। क्योंकि सरावे तक आने में उसके दो तीन रुपये किराए में खर्च हो जाते थे और एक पूरा दिन बर्बाद हो जाता था।

बाबू अग्निदत्त को रामप्रकाश की इस चालबाजी का पता तब चला जब जमीन का लगान उघाने वाला अमीन उनके पास केवल पाँच रुपये की उघाई के लिये ही आया। वह चुप रहे उसे देखकर और उन्होंने वकील से मशवरा करके तहसीलदार के यहाँ एक दरखास्त डाल दी।

दूसरी तरफ रामप्रकाश ने बाबू अग्निदत्त वाली डिग्री के आधे रुपये

की जो ध्यानव्रत और ज्ञानव्रत पर नालिश की थी, उसमें दो हजार की डिग्री हो गई । उस रुपये में रामप्रकाश ने उनकी वह हवेली, जो इस समय सरावे में उनकी एक मात्र अपने कब्जे की सम्पत्ति रह गई थी, कुर्क करा ली ।

हवेली की दशा इन दिनों काफी खराब हो चुकी थी । ऊपर का वह चौबारा जिसमें बैठकर हरकली और ज्ञानव्रत की हाथ फेंक-फेंक कर स्कीमें बनती थीं, कई दराड़ों के बीच से निकली हुई ईंटों को खिसका कर मानों दाँत दिखला रही थी । जो ईंटें जहाँ से गिर गईं थीं, वे जगह वैसी ही पड़ी थीं । मरम्मत का नाम लेने वाला कोई था ही नहीं ।

ज्ञानव्रत का तो पूरा परिवार ही हापुड़ में रहने लगा था । चार लड़के स्कूलों में पढ़ते थे और एक लड़की भी । ध्यानव्रत की स्त्री भी पढ़ कर अध्यापिका का कार्य करने लगी थी । हरकली पहिले से ही अध्यापन-कार्य कर रही थी । सरावे में हरकली की माता जी, ध्यानव्रत और उसके दो लड़के रहते थे ।

आजकल ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत में भी नाचाकी चल रही थी । ज्ञानव्रत तो अब सरावे में आना ही मूर्खता समझता था । दिल्ली चाँदनी चौक में अपनी बुआ के लड़के की उसी दूकान पर, जहाँ अफ्रीका जाते समय वह कह गया था, "अब सरावे में हमारे वार का ओटने वाला कोई नहीं है । वहाँ की जमीन पर क्या मजाल जो रामप्रकाश, धर्मप्रकाश, बाबू अग्निदत्त और राजू कदम भी रख सकें ।" जाकर कहता था, "क्या रखा है सरावे में ? मेरी तो वहाँ जाने को रूह भी नहीं करती । गाँव के जाहिल लोगों में बसना मुझे कतई पसंद नहीं है । हम लोग गाँव के उन जाहिल लोगों में रह ही नहीं सकते ।"

ज्ञानव्रत आजकल पंचायत का साठ रुपया महावार का सेक्रट्री था और अपने कानूनी दावपेचों का इस्तेमाल अपने इलाके की पंचायत में कर रहा था । ध्यानव्रत सरावे में दो चार खेत, जो उनके पास किसी

खत्री के काश्त की वजह से आगये थे और जिनका खांदानी जायदाद से कोई सरोकार नहीं था, उन्हें बटाई पर बो लेता था।

तहसीलदार के यहाँ बाबू अग्निदत्त ने जो मुकदमा दायर किया, उसमें उन्हें कामयाबी हुई और खांदानी जमीन होने के नाते तीनों फरीकों के नाम तीनतिहाई जमीन पर चढ़ा दिये गये। रामप्रकाश को तहसीलदार ने साफ-साफ कह दिया, "तुम बेईमानी कर रहे हो। जमीन मुश्तर्का है और इस पर तीनों का बराबर-बराबर हक है। तुम तमाम जमीन के मालिक नहीं बन सकते।"

"तो हुजूर मेरा मकान भी तो मुझे दिलवाइये।" रामप्रकाश ने कहा और आज उसकी जबान पर वह बात आ गई जो सरावे में आने पर अपने खांदानी मकान के ऊपर बाबू अग्निदत्त के नाम की प्लेट लटकी हुई देखकर पैदा हुई थी।

"तुम्हारे पास मकान नहीं है तो रहते कहाँ हो?" तहसीलदार ने रामप्रकाश से पूछा।

"हुजूर घेर में रहता हूँ।" रामप्रकाश बोला।

"तो इनके पास घेर नहीं होगा। एक-एक चीज दोनों को मिल गई, यह ठीक है। वरना तुम लोग रोजाना आपस में सिर चीरते। जिस आदमी ने तुम्हारा इस तरह का बटवारा किया था, वह वाकई काबिल आदमी था।"

रामप्रकाश चुप हो गया। उसकी गर्दन नीचे को झुक गई। अब एक भी शब्द उसके मुंह में नहीं आ रहा था।

आज बीस वर्ष से इस परिवार की यह दशा चल रही है। आगे भी कुछ निश्चित पता नहीं कि ऊंट किस करवट बैठेगा। बाबू अग्निदत्त को अभी अपनी जमीन पाने के लिए दीवानी में नया मुकदमा तकसीम का दायर करना है। रामप्रकाश का भी पूरी जमीन का मालिक बनने का ख्वाब टूट गया और लाख बेईमानी करने के बाद भी वह अपने इरादों में कामयाब न हो सका।

हरकली ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत की तो कहानी ही अजीबो-गरीब है। हरकली ने अब ज्ञानव्रत के कुनबे को पालने की ठेकेदारी से स्तीफा दे दिया है। उसके बाल-बच्चे बड़े हो चुके हैं। अब उसने ध्यानव्रत की गृहस्थी का संरक्षण करना शुरू कर दिया है। मुँह में एक दाँत भी नहीं रहा और बालफूंस जैसे सफेद हो चुके हैं। उसके भी रिटायर होने के दिन करीब आ गये है।

सबसे दर्दनाक बात यह हुई कि ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने जो अपील हाईकोर्ट में की थी, वह खारिज हो गई और उनकी सजा बहाल रही। सम्मिलित जायदाद की भट्टी में पूरे परिवार की इज्जत, सम्पत्ति और समय नष्ट हो गया। आपस मे फूट डालने वाले धोखेबाज साथियों और तंग खयालातों वाले कमजोर रिश्तेदारों को अपनी खलिशें निकालने का मौका मिला और चौधरी आभाराम की संतान-दर-संतान पैदा होने वाले उस समाज में सहयोग और सद्भावना के स्थान पर पारस्परिक द्वेष और कलह ने जन्म ले लिया।

सम्मिलित परिवार की इस देने के शिकारों को अन्त में परिवार का लेखक नमस्कार करता है, क्योंकि ये सभी उससे बड़े हैं, महान् हैं।